सभ्यता की कहानी

भाग 1

कक्षा 9 के लिए
इतिहास की पाठ्यपुस्तक

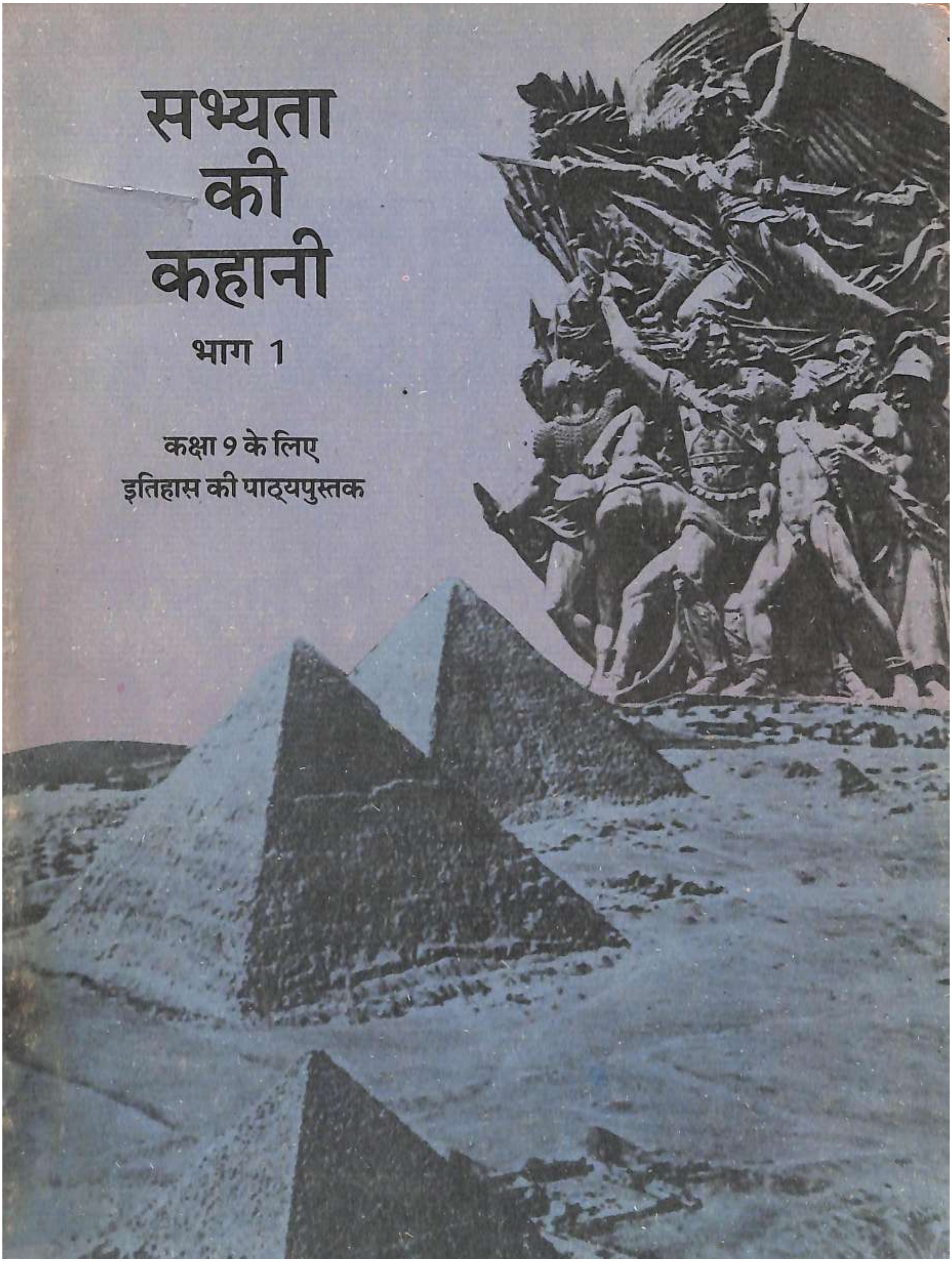

सभ्यता की कहानी

भाग I

नवीं कक्षा के लिए इतिहास की पाठ्यपुस्तक

अर्जुन देव

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

मई 1989 : वैशाख 1911
पुनर्मुद्रण
मार्च 1990 : फाल्गुन 1911
P.D. 185T — DPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1989

सर्वाधिकार सुरक्षित

□ प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकार्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।

□ इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय, या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।

□ इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

प्रकाशन सहयोग

सी० एन० राव : **अध्यक्ष प्रकाशन विभाग**

प्रभाकर द्विवेदी : **मुख्य सम्पादक**
दिनेश सक्सेना : **सम्पादक**
शर्मा दत्त : **सहायक सम्पादक**

यू. प्रभाकर राव : **मुख्य उत्पादन अधिकारी**
सुरेन्द्र कान्त शर्मा : **उत्पादन अधिकारी**
चन्द्र प्रकाश टंडन : **कला अधिकारी**
शिव कुमार : **सहायक उत्पादन अधिकारी**
कर्ण चढ्ढा : **वरिष्ठ कलाकार**
मो. समीउल्लाह **उत्पादन सहायक**

आवरण

शान्तो दत्त तथा चंद्र प्रकाश टंडन

मूल्य : 12 रु० 50 पैसे

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित तथा क्विक प्रिंट्स C-145 नरायणा फेस-1 द्वारा फोटो कम्पोज होकर इंडियन प्रिंटिंग वर्क्स, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के सफल क्रियान्वयन के लिए शिक्षण तथ्यों और शिक्षण विधि का पुनर्गठन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने इस दिशा में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम का खाका प्रस्तुत किया है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न विषयों में पाठ्यक्रम निर्देशिका तथा कई विषयों के लिए विस्तृत पाठ्यक्रम भी तैयार किए गए हैं। नई पाठ्य पुस्तकों तथा अन्य शिक्षण सामग्री को एक सुनिश्चित समयानुसार प्रकाशित किया जा रहा है।

कक्षा 6 और उसके आगे सामाजिक विज्ञान के एक पृथक विषय के रूप में इतिहास पढ़ाया जाता है। उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों के पाँच वर्षों (कक्षा 6 से 10) के दौरान विद्यार्थी को विद्यालयी स्तर के अनुकूल पुरातन काल से आज तक के भारत के इतिहास और मानव सभ्यताओं के विकास से क्रमबद्ध रूप से परिचित कराया गया है। इन स्तरों पर इतिहास पढ़ाने का मुख्य उद्देश्य है छात्रों में राष्ट्रीय और संपूर्ण मानव विरासत को समझने की दृष्टि विकसित करना। इस विस्तृत ढाँचे के अंतर्गत उच्च प्राथमिक स्तर पर भारत के इतिहास को तथा माध्यमिक स्तर पर मानव सभ्यता के इतिहास को प्रस्तुत किया गया है।

कक्षा नौ और दस के वर्तमान पाठ्य विषय के अंतर्गत विश्व के इतिहास का एक व्यापक सर्वेक्षण आ जाता है, जिसका मुख्य केन्द्र है मानव सभ्यताओं के विकास से मुख्य चरण और वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक विकास। परिवर्तन एवं विकास के पहलुओं का तथा मानव जाति की विरासत में विभिन्न जनगणों एवं संस्कृतियों के योगदान का इसमें विशेष रूप से ध्यान रखा गया है। आधुनिक भारत के इतिहास के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों पर खासतौर से आज़ादी की लड़ाई, जिसके कारण वर्तमान भारत का निर्माण हुआ, पर विशेष प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। राजनीतिक इतिहास के विवरणों को, विशेषकर राजवंशों के इतिहास को, इसमें बहुत कम कर दिया गया है हालांकि राजनीतिक व्यवस्थाओं की विविधताओं और विकास पर कुछ ध्यान दिया गया है। अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं और कई सभ्यताओं व संस्कृतियों की कहानी को इसमें नहीं लिया जा सका क्योंकि हमारे सामने अपरिहार्य रूप से पढ़ाने के घंटों की कमी है। फिर भी इस सीमा के बावजूद यह कोशिश की गई है कि मानव इतिहास के मुख्य पाठ्य विषय को उसकी एकता व विविधता, परिवर्तन व सातत्य के पक्षों के साथ समझाया जा सके। आशा की जाती है कि पुस्तकों के इन भागों के द्वारा विद्यार्थियों में अपने चारों ओर की दुनिया को गहराई से समझने में मदद मिलेगी और उनमें ऐसे विचारों और

प्रवृत्तियों की सृष्टि हो सकेगी जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विकास के लिए अनिवार्य हैं। साथ ही वे यह भी जान सकेंगे कि मानव का यह संसार एक है और इसे तोड़ा या बांधा नहीं जा सकता।

कक्षा नौ और दस के पाठ्य विषय को दो भागों में प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रस्तुत भाग प्रागैतिहासिक काल से लगभग उन्नीसवीं शताब्दी तक के संपूर्ण काल को अपने कलेवर में समेटता है।

परिषद् प्रो. अर्जुन देव के प्रति आभार प्रकट करती है, जिन्होंने पुस्तक के इस भाग को तैयार किया। साथ ही उनके सहयोगियों विशेष रूप से श्रीमती इंदिरा अर्जुन देव के प्रति भी आभारी हैं, जिन्होंने विभिन्न स्तरों पर इस पुस्तक को तैयार करने और अंतिम रूप देने में सहायता प्रदान की। इस पुस्तक के पुराने संस्करण की कुछ विषय विशेषज्ञों की सहायता से कलकत्ता के सामाजिक विज्ञान अध्ययन केन्द्र में आयोजित कार्यशाला में समीक्षा की गई। हम विषय विशेषज्ञों की उनकी सहायता के लिए तथा केन्द्र को न केवल गोष्ठी के लिए स्थान उपलब्ध कराने हेतु आभारी हैं बल्कि विश्व इतिहास के विभिन्न क्षेत्रों पर अपने केन्द्र से विशेषज्ञ उपलब्ध कराने के लिए भी आभारी हैं। डॉ. कमरुद्दीन ने प्रश्न-अभ्यासों के पुनरावलोकन में और श्री आर.पी. पाठक ने पांडुलिपियों को अंतिम रूप देने में सहायता की है। परिषद् इन सबके प्रति आभारी है।

परिषद् उन कई संस्थाओं, एजेंसियों एवं व्यक्तियों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करती है, जिनके द्वारा दिये गए चित्रों का पुस्तक के इस भाग में प्रयोग किया गया है।

परिषद् इस पाठ्य पुस्तक के संबंध में पाठकों द्वारा की गई टिप्पणी और दिए गए सुझावों का स्वागत करेगी।

पी.एल. मल्होत्रा

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

कृतज्ञता ज्ञापन

इस पुस्तक की रचना में अनेक व्यक्तियों एवं संस्थाओं से सहायता प्राप्त हुई है। वे सब हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। हम विशेषकर तत्कालीन समिति के अध्यक्ष स्वर्गीय प्रोफेसर विमल घोष और प्रो. सतीश चन्द्र के प्रति आभार प्रकट करते हैं, जिनके कुशल निर्देशन में इस पुस्तक के प्रारंभिक संस्करण तैयार किए गए थे। प्राचीन इरान और कोलंबस-पूर्व अमरीका से संबद्ध सामग्री के लिए भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण के श्री बृजमोहन पाण्डे और उपनिवेश पूर्व अफ्रीका से संबद्ध सामग्री के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के डॉ. अनिरुद्ध गुप्त के प्रति आभार प्रकट करते हैं। हम स्वर्गीय डॉ. शिवकुमार सैनी के प्रति साथ ही प्रो. जी.एल. आद्या, प्रो. एस.एच. खान और डॉ. कमरुद्दीन के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रारंभिक संस्करण के भागों को तैयार करने में सहायता की। पुस्तक में बनाए गए मानचित्रों के लिए हम कुमारी निर्मल बजाज, श्री एस.एस.सार, श्री ए.के. घोष, श्री जस्सू राम और कुमारी रंजना वाजपेयी के प्रति तथा चित्रों के लिए श्री सी.के. वाजपेयी, श्री के.सी. वाग, श्री बी. अशोक तथा श्री जी.के. विरमानी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण तथा अनेक देशों के भारत में स्थित दूतावासों के प्रति, खासतौर से अमेरिकन केन्द्र के प्रति और फ्रांस दूतावास के प्रति कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अनेक चित्रों को उपलब्ध कराने में सहायता की। श्रीमती इंदिरा अर्जुन देव विशेष रूप से आभार की पात्रा हैं, जिन्होंने हर स्तर पर और सभी पहलुओं पर इस पुस्तक को तैयार करने और अंतिम रूप प्रदान करने में सहायता की।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

विषय-सूची

1.	प्राक् ऐतिहासिक काल में जीवन	1
2.	कांस्य युग की सभ्यताएं	21
3.	प्राचीन लौहयुगीन सभ्यताएं (लगभग 1200 ई.पू. 600 ई.)	44
4.	अमरीका और अफ्रीका की प्राचीन सभ्यताएं	94
5.	मध्यकालीन विश्व	116
6.	आधुनिक युग का आरंभ	147
7.	पूँजीवाद और औद्योगिक क्रांति	179
8.	क्रांतिकारी और राष्ट्रवादी आंदोलन	193

मुख पृष्ठ के बारे में

मुख पृष्ठ पर बाईं ओर मिस्र के पिरामिडों को दिखाया गया है जो मानव सभ्यता के सबसे भव्य अवशेषों में गिने जाते हैं। दाहिनी ओर पेरिस में आर्च आफ ट्रायम्फ पर फ्रांस्वा रूदे द्वारा बनाया गया उभार-शिल्प है जिसे "1972 के स्वैच्छिक सेनानियों का प्रस्थान" अथवा "मारसेज़" कहते हैं। उभार-शिल्प में स्वैच्छिक सेनानियों को फ्रांस की क्रान्ति और गणतन्त्र के विरुद्ध विदेशी हस्तक्षेप का मुकाबला करने के लिए कूच करते हुए दिखाया गया है। ऊपरी हिस्से में युद्ध की देवी फ्रांसीसी क्रान्ति गान मारसेज़ गाते हुए स्वैच्छिक सेनानियों को प्रेरित कर रही है। पृष्ठ प्रच्छद पर बाईं ओर सारनाथ से प्राप्त महात्मा बुद्ध की प्रतिमा है और दाहिनी ओर मार्च 1848 में बर्लिन में हुई क्रान्ति का एक दृश्य दिखाया गया है।

अध्याय 1

प्राक् ऐतिहासिक काल में जीवन

इस अध्याय में हम मानव के धरती पर आने से लेकर उस समय तक की कहानी पढ़ेंगे जब उसने घटनाओं का लिखित विवरण रखना आरंभ किया। मानव की प्रगति की कहानी के उस भाग को '**इतिहास**' कहते हैं जिसके लिए लिखित विवरण मिलते हैं। किन्तु लिखना सीखने के पहले भी मानव इस धरती पर लाखों वर्ष रह चुका था। यह लंबा सुदूर अतीत, जब मनुष्य ने घटनाओं का कोई लिखित विवरण नहीं रखा, '**प्राक् इतिहास**' कहलाता है। उसे हम बहुधा प्रागैतिहासिक काल भी कहते हैं।

पिछली शताब्दी में विद्वानों ने उन स्थानों की खुदाई आरंभ की जहां प्रागैतिहासिक मनुष्य रहते थे। उस समय तक प्रागैतिहासिक मानव के संबंध में हमारी जानकारी नहीं के बराबर थी। इस खुदाई से पुराने औज़ार, मिट्टी के बर्तन, रहने के स्थान तथा प्राचीन मनुष्यों और जानवरों की हड्डियां प्रकाश में आई हैं। इन चीजों से मिली जानकारियों को एक साथ जोड़कर विद्वानों ने एक विवरण तैयार किया है। इस विवरण से मालूम होता है कि प्रागैतिहासिक काल में क्या घटनाएं घटीं और मनुष्य कैसे रहते थे। अठारहवीं शताब्दी तक यूरोप के विद्वानों की भी यह धारणा थी कि मनुष्य की सृष्टि 4004 ई० पू० में यानी केवल छः हजार वर्ष पहले हुई थी। अब इस धारणा में विश्वास करना असंभव है।

मानव की कहानी आज से लगभग तीस लाख वर्ष पूर्व से प्रारंभ होती है। इसी समय के आसपास पेड़ों पर रहने वाले वानरों से आदि मानव विकसित हुआ। वह धरती पर अपने दोनों पैरों पर खड़े होकर चलना सीखने लगा। बहुत धीरे-धीरे उसका दिमाग आकार में बढ़ा और उसका गुणात्मक विकास भी हुआ। फिर भी, अब से सिर्फ तीस-चालीस हजार वर्ष पहले ही होमो सेपियंस (Homo sapiens) या 'ज्ञानी मानव' इस धरती पर प्रकट हो सके। आजकल के सभी मनुष्य इसी होमो सेपियंस जाति के ही हैं।

अपने विकास-काल में मनुष्य ने अपने साथी मनुष्यों के साथ मिलकर रहना तथा प्रकृति में पाए जाने वाले फलों तथा शिकारों की खोज में एक साथ जाना सीखा। उसे पत्थर के औजार बनाना, कपड़े के रूप में जानवरों की खाल का इस्तेमाल करना तथा रहने के लिए घर बनाना सीखने में लाखों वर्ष लग गए। उसने आग जलाना भी सीखा। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि उसने बोलना सीख लिया किन्तु इसके बावजूद वह शिकार कर, मछली मारकर तथा प्रकृति में पाए जाने वाले भोजन को इकट्ठा करके ही जिन्दा रहता था। आदि मानव के विकास के इस काल को **पुरा पाषाण युग** (Paleolithic Age) कहा जाता है।

मानव-प्रगति की रफ्तार लगभग 8000 ई० पू० से तेज हुई। दूसरे शब्दों में लगभग 10,000 वर्ष से ही मनुष्य तेजी से विकास करने लगा है। उस समय उसने अनेक प्रकार के बढ़िया औजार बनाने आरंभ कर दिए। इस काल को **मध्य पाषाण युग** (Mesolithic Age) कहा जाता है। उस समय मानव ने एशिया और बाद में संसार के अन्य भागों में अपने भोजन उत्पन्न करने की कला सीखी। यही कृषि की शुरूआत थी। **भोजन इकट्ठा करने वाले से मनुष्य भोजन उत्पन्न करने वाला** बन गया। फसलों को उगाने से मनुष्य के जीवन में ऐसे बड़े परिवर्तन हुए कि एक नया युग ही आरंभ हो गया। इस नए युग को **नव पाषाण युग** (Neolithic Age) कहा जाता है।

होमो सेपियंस के प्रकट होने से लेकर अब तक के 30,000 वर्षों में मनुष्य के शरीर की बाहरी बनावट में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। किन्तु उसके विकास में एक अन्य प्रकार का परिवर्तन है जो आज तक कभी बंद नहीं हुआ है। यह है इसकी संस्कृति में परिवर्तन। 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग निम्नलिखित प्रकार की चीजों का वर्णन करने के लिए किया जाता है – जैसे मानव किस प्रकार अपना जीवन-निर्वाह करता है, कैसे मकान में रहता है, किस तरह के कौशल का प्रयोग करता है, कौन-सी वस्तुओं का उत्पादन करता है, उसके पास कितना ज्ञान है, वह अपने साथी मनुष्यों के साथ कैसा व्यवहार करता है, उसकी धारणाएं क्या हैं, उसके पास फुर्सत का समय कितना होता है और वह उस समय का इस्तेमाल किस प्रकार करता है।

मानव कभी अपने रहने के ढंग से संतुष्ट नहीं रहा है। उसने उसे सुधारने के लिए हमेशा संघर्ष किया है। यह संघर्ष लंबा और कष्टदायक रहा है परन्तु मनुष्य उसमें हमेशा सफल रहा है। अपनी जीविका कमाने का सुगम तथा बेहतर तरीका प्राप्त करने, अपने साथी मनुष्यों के साथ सहयोग के बेहतर तरीके निकालने, नया ज्ञान ढूंढने तथा कला और साहित्य में अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए वह आगे बढ़ा है। संक्षेप में हम यों कह सकते हैं कि मानव संस्कृति प्रगति करती है। जनसमुदायों की संस्कृतियों को उनका काफी विकास होने पर हम बहुधा सभ्यताएं कहते हैं।

मानव-संस्कृति का विकास युगों से होता रहा है किन्तु प्रगति की रफ्तार सभी युगों और संसार के सभी भागों में एक सी नहीं रही है। इसलिए जब हम पढ़ते हैं कि एक खास युग में काफी प्रगति हुई तो हमें यह कतई नहीं समझ लेना चाहिए कि सभी संस्कृतियों ने उतनी ही प्रगति की। हमें यह भी नहीं समझ लेना चाहिए कि किसी संस्कृति ने हमेशा एक ही रफ्तार से प्रगति की है। फिर भी कोई भी संस्कृति दूसरों से बिना प्रभावित हुए नहीं रही है। हमारे जमाने में विकास की रफ्तार मानव जीवन के किसी भी विगत काल से अधिक तेज है। साथ ही भूमंडल के एक भाग की घटनाएं हर दूसरे भाग को अब बहुत तेजी से प्रभावित करती हैं।

जब हम इस पुस्तक के अन्य अध्याय पढ़ेंगे तो हम देखेंगे कि किस प्रकार एक संस्कृति ने दूसरी संस्कृतियों पर अपना प्रभाव डाला और किस प्रकार वह संस्कृति स्वयं दूसरी संस्कृतियों से प्रभावित हुई। हम यह भी देखेंगे कि एक दृष्टि से इस पुस्तक का हर अध्याय मानव प्रगति या प्रगति के लिए मनुष्य के संघर्ष की कहानी का कोई न कोई हिस्सा है। प्रागैतिहासिक मानव का जीवन इस कहानी का केवल पहला अध्याय है।

पुरातत्व और प्राक्-इतिहास

पुरातत्व क्या है?

चिर अतीत में रहने वाले हमारे पूर्वजों के दैनिक जीवन और उनके व्यवसायों पर रोशनी डालने के लिए टीलों और खंडहरों के रूप में पुराने स्थानों की खुदाई को जिन विद्वानों ने एक विज्ञान का रूप दिया है, उन्हें **पुरातत्वविद्** कहा जाता है। **पुरातत्व** पुरातत्वविदों की देन है। इसने हमें लाखों वर्षों की मानव-प्रगति से परिचित कराया है। उत्खनन से अनेक वस्तुएं प्रकाश में आई हैं। इनमें औजार और हथियार, स्मारक और अवशेष, प्राचीन जनगणों की कलाकृतियां और शिल्प, रहने के मकान, पूजा करने के मंदिर और उनके जीवनयापन का माहौल शामिल हैं। संक्षेप में, पुरातत्वविदों ने इतिहासकारों को एक संपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास के लिए सामग्रियां दी हैं। इस प्रकार का इतिहास पहले कभी नहीं लिखा जा सकता था।

कई बार अतीत की महान संस्कृतियों की खोजें संयोगवश हो गई हैं। उदाहरण के लिए, 1856 ई० में जेम्स और विलियम बर्टन नाम के दो भाई कराची से लाहौर तक रेल लाइन बिछाने में लगे थे। उन्होंने पास के टीलों से अपनी लाइन के लिए ईंटें लेने के प्रयत्न किए। ईंटों के लिए खोदने से दो प्राचीन नगरों का पता लग गया। ये नगर थे पश्चिम पंजाब में हड़प्पा और सिंध में मोहनजोदड़ो। मगर इसके कोई 60 वर्ष बाद जाकर राखाल दास बनर्जी के परिश्रम से इन 5,000 वर्ष पुराने शहरों के बारे में तथ्य सामने आए। राखाल दास बनर्जी ने सर जॉन मार्शल और ननीगोपाल मजूमदार की देखरेख में काम किया। इस प्रकार हम भारत में मोहनजोदड़ो व हड़प्पा और पश्चिम एशिया में सुमेर, बाबुल और सीरिया की सभ्यताओं के बारे में जानकारी के लिए पुरातत्वविदों के ऋणी हैं। उत्खननों से पहले किसी ने भी इस बात के बारे में अनुमान तक नहीं लगाया था कि भूमध्यसागरीय क्रीट नामक टापू में कभी किसी महत्वपूर्ण सभ्यता का विकास हुआ था। पुरातत्व विज्ञान से ही प्राचीन मिस्र के संपूर्ण इतिहास, यहां तक कि दैनिक जीवन की बिल्कुल छोटी-छोटी बातों के बारे में भी,

मालूम हुआ है। पुरातत्व विज्ञान ने हमें उस मानव के जीवन को समझने में समर्थ बनाया है जो हजारों वर्ष पहले इस धरती पर रहता था। उस समय उसके रहने का कोई निश्चित ठौर-ठिकाना नहीं था, वह पत्थर के केवल अपरिष्कृत औजारों का इस्तेमाल करता था, और अपने साथी मनुष्यों के साथ अत्यंत मामूली ढंग से सहयोग करता था।

पुरातत्व की कार्य-प्रणाली

समय बीतने के साथ ही वे अनेक वस्तुएं अब खराब या नष्ट हो गई हैं, जिनसे हमें प्राचीन मानव की संस्कृतियों को समझने में सहायता मिलती। मगर कतिपय कारक इन चीज़ों को सुरक्षित रखने में सहायता देते हैं जो अन्यथा थोड़े समय में नष्ट हो जातीं। उदाहरण के लिए मिस्र की शुष्क जलवायु में विशाल पिरामिडों के अंदर लकड़ी के फर्नीचर और यहां तक कि घास की चटाइयां तथा बारीक कपड़े भी पूरी तरह ठीक-ठाक मिले हैं। मरु भूमि के एक अनाज के गोदाम में गेहूं और जौ के दाने ऊपर छिलके और बालियों सहित सर्वथा अच्छी हालत में मिले हैं। ज्वालामुखी फूटने के कारण रोम का प्राचीन नगर पांपेई नीचे दब गया मगर एक नानबाई की दुकान में रोटी सुरक्षित रही। अत्यधिक सर्दी भी चीजों को सुरक्षित रखती है। साइबेरिया में बर्फ से भरे एक गड्ढे में एक प्रागैतिहासिक मैमथ बिल्कुल ठीक-ठाक अवस्था में पाया गया।

किसी एक ही स्थान पर मानव के संपूर्ण अस्थिपंजर, औजार, बर्तन और अन्य शिल्प-उपकरण एक साथ विरले ही पाए जाते हैं। आमतौर से जबड़े या पैर की हड्डी या कुछ दांत मिल जाते हैं। पुरातत्वविद् मिट्टी के बर्तन बड़ी मात्रा में खोद निकालता है मगर वे टुकड़े-टुकड़े होते हैं। प्रागैतिहासिक काल के मनुष्य और उसके जीवन का एक चित्र प्रस्तुत करने के लिए पुरातत्वविद् पाई गई वस्तुओं के टुकड़ों तथा उन परतों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करता है जहां उन्हें वह पाता है। पुनर्रचना के इस काम में वह भूवैज्ञानिक, प्राणिशास्त्री और अन्य वैज्ञानिकों की सहायता लेता है।

पुरातत्वविद् अपनी गेंती और कुदाल की सहायता से बड़ी सावधानी से खुदाई करता है। जब वह कोई चीज पाता है तो वह उसे तुरन्त नहीं उठाता। कोई वस्तु जो सैकड़ों वर्षों से धरती के नीचे दबी रही है थोड़ी भी असावधानी से छूने पर टुकड़े-टुकड़े हो सकती है और उसकी कहानी सदा के लिए खो सकती है। पुरातत्वविद् बिना उस वस्तु को हिलाए चाकू और कूंची से उसके ऊपर तथा इर्द-गिर्द से मिट्टी हटाता है। इराक में एक बार ऐसा हुआ कि उर नामक जगह पर एक प्राचीन रानी का मकबरा खोदते समय सोने की एक घुंडी मिली। जब उसे सावधानी से हटाया गया तब नीचे ज़मीन में एक छेद दिखाई पड़ा। इससे यह अनुमान लगाया गया कि उस घुंडी के नीचे लकड़ी की कोई वस्तु रही होगी जो नष्ट होकर धूल बन गई है और केवल उसके बीच का छेद रह गया है। पुरातत्वविदों ने इस छेद में प्लास्टर ऑफ पेरिस डाला। नतीजा यह हुआ कि वीणा की प्लास्टर से बनी पूरी आकृति तैयार हो गई। उसमें जहां-तहां सोने की कीलें जड़ी हुई थीं जिन्होंने कभी रानी की बहुमूल्य वीणा को सोने की घुंडी की तरह सजाया था।

पुरातत्व सामग्रियों का काल-निर्धारण

पुरातत्वविद् जिन वस्तुओं को ढूंढ निकालते हैं उनकी तिथि निर्धारित करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाते हैं। अगर ऐसे सिक्के या अभिलेख मिलते हैं जिन पर किसी राजा का नाम होता है, तो उनके साथ मिलने वाली अन्य सामग्रियों की तिथि मोटे तौर पर निर्धारित की जा सकती है। अगर स्थल स्तरित हो (यदि वह जगह ऐसी हो जहां मनुष्य लगातार कई शताब्दियों तक रहे हों तो वहां पर पृथ्वी की विभिन्न परतों पर विभिन्न समयों के पुरातत्व अवशेष मिल जाते हैं) तो तिथि-निर्धारण आसान होता है। इन स्थलों की निचली परतों में पायी जाने वाली चीजें ऊपरी परतों में पायी जाने वाली वस्तुओं से पहले के काल की हैं। स्तरित स्थान एक पुस्तक के समान पढ़े जा सकते हैं। पुरातत्वविद् बहुधा हजारों वर्षों पीछे की बस्ती की नींव तक की जानकारी पा सकते हैं।

भौतिकी ने यह मालूम करने में मदद दी है कि कोई वस्तु कितनी पुरानी है। सभी सजीव वस्तुओं में एक प्रकार का रेडियो धर्मी (Radio active) कार्बन होता है जिसे कार्बन-14 कहते हैं। भौतिकी के अध्ययन से तुम जानते हो कि रेडियो धर्मी पदार्थ वे होते हैं जिनमें से एक निश्चित दर से बहुत छोटे-छोटे कण निकलते हैं। जब मनुष्य, पशु और पौधे जिन्दा होते हैं तब वे जिस मात्रा में वायुमंडल से कार्बन-14 लेते हैं उसी मात्रा में रेडियो धर्मिता के कारण उसे खो देते हैं। जब कोई जीवित चीज मर जाती है तब वह वायुमंडल से नया कार्बन-14 नहीं लेती यद्यपि वह उसे एक

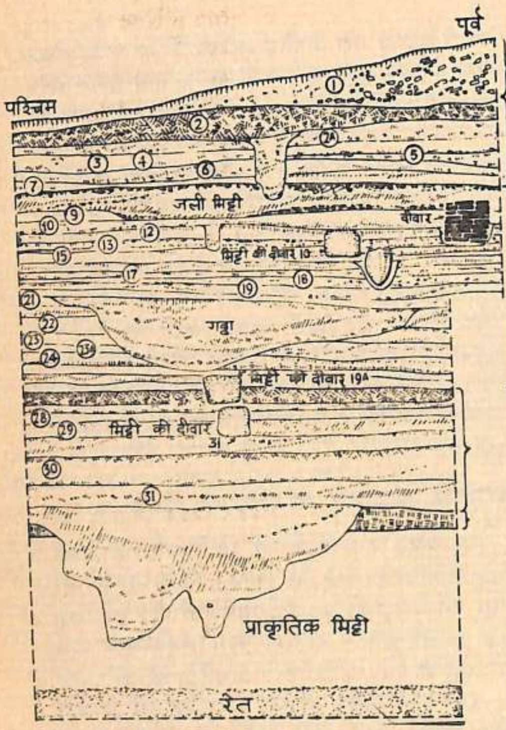

हस्तिनापुर के एक स्तरित स्थान का अनुप्रस्थ दृश्य

निश्चित दर से खोती रहती है। किसी भी वस्तु में निहित कार्बन-14 की मात्रा का पता लगा कर भौतिकशास्त्री हमें यह बतला सकते हैं कि मोटे तौर पर वह वस्तु कितनी पुरानी है। किसी वस्तु की तिथि को निर्धारित करने की इस प्रणाली को 'कार्बन-14 तिथि-निर्धारण' कहते हैं।

मानव-विज्ञान का योगदान

अतीत को समझने में पुरातत्वविदों को मानव-विज्ञान (Anthropology) से सहायता मिलती है। मानव-विज्ञान मानव की शारीरिक विशेषताओं, उसकी संस्कृति, उसके रीति-रिवाजों, व्यवहार करने के ढंग और दूसरे मानवों के साथ उसके संबंधों का अध्ययन है। पुरातत्वविद् वस्तुओं को खोद निकालता है। इन वस्तुओं का विश्लेषण करना और इन्हें समझना होता है, जिससे लोगों के जीवन का चित्र तैयार हो सके। यहां पर मानव-विज्ञान सहायक होता है। मानव-विज्ञान का विद्वान अस्थि पंजरों की सहायता से प्रारंभिक मानव की शारीरिक विशेषताओं को समझने और किसी समाज की संस्कृति को शिल्प-उपकरणों, रहने के मकानों, स्मारकों और चित्रों के आधार पर समझने में सहायता करता है।

मानव-विज्ञानविदों और अन्य लोगों ने आज के आदिम समाजों के अध्ययन द्वारा प्रागैतिहासिक समाजों को समझने में सहायता दी है। पुरातत्वविदों और मानव-विज्ञानविदों के सहयोग से इतिहासकार इस तरह प्रागैतिहासिक काल से ऐतिहासिक काल तक मानव समाजों के विकास की रूप-रेखा प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ है।

प्रथ्वी पर जीवन का प्रारंभ

पृथ्वी मानव का निवास स्थान

मानवीय रीतिरिवाजों और आदतों के विकास पर शारीरिक गुणों और जलवायु का सदा ही गहरा प्रभाव पड़ा है। अभी पृथ्वी की आयु लगभग 4 अरब 50 करोड़ वर्ष होने का हिसाब लगाया गया है। अपने जीवन के प्रारंभिक काल में पृथ्वी बहुत अस्थिर थी। पृथ्वी के अंदर की शक्तियां सतह पर चलने वाली हवा, पड़ने वाली वर्षा तथा बर्फ के साथ मिलकर उसकी पपड़ी के आकार को बदलती रहीं तथा पहाड़ों और महासागरों का निर्माण करती रहीं। पृथ्वी के हिलने के कारण कभी-कभी पुराने समुद्रों के धरातल ऊपर उठ आए और पहाड़ों के शिखर बन गए। इस प्रक्रिया का एक उदाहरण एवरेस्ट पर्वत है जहां अब भी बर्फ की गहरी सतह के नीचे उन रीढ़-विहीन जंतुओं के जीवाश्म (फॉसिल) मिल सकते हैं जो कभी किसी प्राचीन समुद्र की तलहटी में रहते थे। पृथ्वी के धरातल के परिवर्तनों के कारण जलवायु में परिवर्तन हुए। जलवायु के परिवर्तन ने जीवन के विकास और वितरण पर भारी प्रभाव डाला।

पृथ्वी के भूवैज्ञानिक काल

पृथ्वी के करोड़ों वर्षों के अस्तित्व में बनी चट्टानों की परतों का अध्ययन करके भूवैज्ञानिक पृथ्वी का इतिहास जानने का प्रयास करता है। चट्टानों की पहली बनी परतें स्वाभाविक रूप से अधिक नीचे और पीछे बनी परतें ऊपर मिलती हैं। इस दीर्घ भूवैज्ञानिक काल का विभाजन पांच युगों में किया जाता है, प्रत्येक युग का नाम जीवन के उसके

भू-गर्भ विज्ञानीय युग, प्रत्येक युग का काल और उसकी अवधि और तत्कालीन जीव-जंतु

अत्यंत विशिष्ट रूपों के अनुसार किया गया है।

साथ लगी सचित्र तालिका को देखो जो सरल रूप में भूवैज्ञानिक युगों और उनके अत्यंत विशिष्ट जीवन-रूपों को दिखलाती है। भूवैज्ञानिक कालों के बारे में बात करते समय हम दशकों या शताब्दियों की नहीं बल्कि लाखों करोड़ों वर्षों की बात करते हैं। अंतिम भूवैज्ञानिक युग **सिनोजोइक** (Caenozoic) में हम रह रहे हैं। यह सब से छोटा है। यह संपूर्ण भूवैज्ञानिक काल के पचासवें हिस्से से भी छोटा है। तो भी यह युग 7½ करोड़ वर्षों से अधिक का है। भूवैज्ञानिक काल की तुलना में मानवीय सभ्यता का संपूर्ण काल अत्यंत छोटा है। अगर हम कल्पना करें कि पृथ्वी के इतिहास के 4 अरब 50 करोड़ वर्षों का प्रतिनिधित्व 100 किलोमीटर लंबी कोई सड़क करती है और हम उस सड़क पर चल रहे हैं तो हमें अपनी आधी यात्रा के दौरान न कोई जीवन मिलेगा और न ही कोई वनस्पति दिखाई पड़ेगी। 88 किलोमीटर चल लेने के पश्चात् ही हमें सादे रीढ़विहीन जंतु, जैसे कीड़े और जेलीफिश (Jelly Fish) समुद्र में दिखलाई देंगे। 93वें किलोमीटर पर कुछ जीव समुद्र छोड़कर पृथ्वी पर रहते दिखलाई देंगे, परन्तु स्तनपायी जीव 98वें किलोमीटर से पहले दिखलाई नहीं पडेंगे। मानव के शारीरिक विकास का कुल समय हमारी यात्रा के अंतिम बीस मीटरों से अधिक नहीं होगा। लिखित इतिहास और सभ्यता का समय शायद ही अंतिम लंबे डग के आधे से अधिक होगा।

सरल जीवन से जटिल जीवन की ओर

प्राकृतिक विज्ञानों की विभिन्न शाखाओं खासकर भूविज्ञान, प्राणि विज्ञान और जीवाश्म विज्ञान (Paleontology) में बढ़ते हुए ज्ञान ने इस बात के लिए संदेह की कोई गुंजायश नहीं छोड़ी है कि पृथ्वी और अन्य सब जीवन-रूप परिवर्तित और विकसित होते रहे हैं। दूसरे शब्दों में, उनमें निरंतर, **क्रमिक विकास**, यानी परिवर्तन के द्वारा विकास होता रहा है।

वैज्ञानिक और इतिहासकार दोनों ही क्रमिक विकास का अध्ययन करते हैं, वैज्ञानिक की दिलचस्पी सांघटनिक या जैविक विकास में होती है जबकि इतिहासकार सांस्कृतिक विकास का अध्ययन करता है। इस प्रक्रिया के कारण वह ज़ीवन जो करोड़ों वर्ष पहले समुद्र में एक कोशिका वाले रूपों में आरंभ हुआ, विकसित होकर अधिकाधिक जटिल कोशिकाओं वाले जीवों के रूप में आ गया।

निम्न पशुओं और क्रमिक विकास की प्रक्रिया के उच्चतम परिणाम—मनुष्य—की शारीरिक बनावट और क्रिया प्रणाली में अनेक समानताएं हैं। मनुष्य स्तनपायी और रीढ़धारी, दोनों ही प्रकार का जीव है, और इस प्रकार स्तनपायी जीवों और रीढ़धारी जीवों के पूर्वज उसके भी पूर्वज हैं। तुम विज्ञान के अपने अध्ययन से जानते हो कि विकास की सुव्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत करने, तथा इस व्याख्या के समर्थन में काफी बड़ी मात्रा में सबूत इकट्ठा करने का श्रेय चार्ल्स डार्विन को है। सख्त चट्टानों में विकास की क्रमिक अवस्थाओं को दिखलाने वाले जीवाश्मों (फॉसिलों) के ढूंढ निकाले जाने से अब डार्विन के निष्कर्षों की पुष्टि हो गई है और उन्हें विकसित कर लिया गया है। किन्तु अब भी यह सब सामग्री पूर्णतया इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए पर्याप्त नहीं है कि मनुष्य जिस रूप में अभी है उस रूप में वह कैसे आया।

मानव का जैव विकास

हिम युग (Ice Age)

अभिनूतन काल (Pleistocene Period) में बड़े परिवर्तन हुए हैं। इस काल में पहाड़ों का निर्माण बड़े पैमानों पर हुआ। जब यह काल प्रारम्भ हुआ तो महाद्वीपों और महासागरों का वर्तमान रूप बन चुका था। जलवायु भी उस समय लगभग वैसी ही थी जैसी कि अभी है किन्तु धीरे-धीरे जलवायु अधिक ठण्डी होती गई। अब से लगभग छ: लाख वर्ष पूर्व से दस हजार वर्ष पूर्व तक के काल में एशिया, यूरोप और उत्तरी अमरीका के उत्तरी भागों की जलवायु बारी-बारी से बहुत ठंडी और गर्म होती रही। ठंडी जलवायु के कालों में उन प्रदेशों पर, जो अब समशीतोष्ण कटिबंध में हैं, उत्तरी ध्रुव का हिम आवरण दक्षिण की ओर बर्फ की एक लंबी चादर की तरह फैल जाता था। हिमालय में हिमनदी बिल्कुल तलहटी तक पहुंच गई।

'हिम युग' शब्द वास्तव में भ्रामक है, क्योंकि कोई एक लगातार हिम युग नहीं था बल्कि चार बिल्कुल भिन्न हिम काल हैं। प्रत्येक दो हिम कालों के बीच मंद या थोड़ा गरम अंतर्हिम काल आया। इस प्रकार चार हिम कालों को एक दूसरे से तीन अंतर्हिम कालों ने अलग किया। इन अंतर्हिम कालों के दौरान आदि मानव ने भारी प्रगति की।

हिम युग के दौरान जलवायु संबंधी भारी परिवर्तनों का स्वाभाविक रूप से तत्कालीन पौधों और पशुओं पर काफी प्रभाव पड़ा। जब अधिक सर्दी का दौर आता तो वे दक्षिणी प्रदेशों में आ जाते और जब अधिक गर्मी पड़ती तो वे उत्तरी प्रदेशों में आकर रहने लगते। जो पशु एक विशेष प्रकार के पौधे खाते थे वे उन पौधों की खोज में दूसरी जगहों में जाते थे या अपने को नए भोजन के अनुकूल बना लेते थे। कभी-कभी भूमि या समुद्र के अवरोधों के कारण पशु एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा पाते थे और पशुओं की अनेक जातियां जो अपने को परिवर्तित जलवायु तथा नए आहार के अनुकूल नहीं बना पाती थीं, मर जाती थीं। अन्य जातियां विकास की प्रक्रिया से होकर गुजरीं तथा उनका विकास नई जातियों के रूप में हुआ जो नए जलवायु

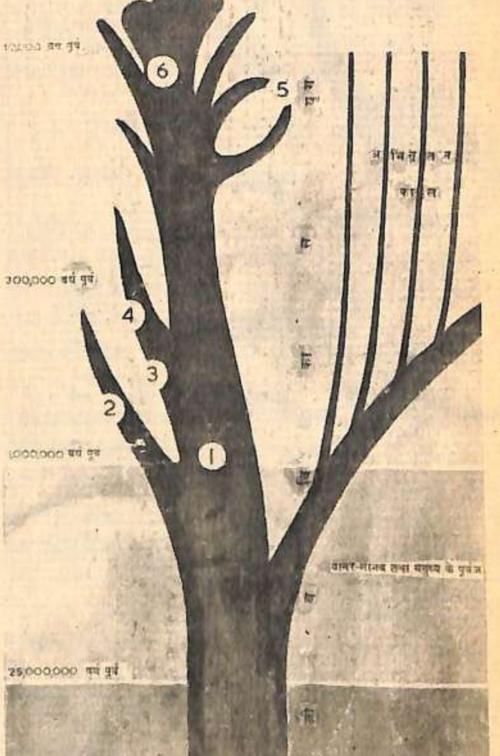

प्रागैतिहासिक मानव की जातियों का वंश वृक्ष। (1) आस्ट्रेलोपिथिकस, (2) जिंजानथ्रोपस, (3) पिथिकांथ्रोपस (जावा मानव), (4) सिनांथ्रोपस (पीकिंड मानव), (5) निअंडरथल मानव, (6) क्रो-मैग्नान मानव

में सफल हो सकीं। जलवायु के इन बड़े परिवर्तनों के बीच भी जीवित रह पाने वालों में कुछ विकसित प्राइमेट थे। इन्हीं में मानव भी था। मानव उन स्तनपायी जीवों की जाति का था जिन्हें प्राइमेट (Primates) कहते हैं। इस वर्गीकरण में केवल मानव ही नहीं बल्कि सभी जीवित वानर, लैम्बूर और छछूंदर भी शामिल हैं।

रामापिथिकस

मनुष्य का सीधा खड़ा होना

पेड़ों पर रहने वाले वानर जो गोरिल्ला, चिंपैंजी और मानव तीनों के पूर्वज थे, शायद एक करोड़ वर्ष पहले रहते थे। इन वानरों में से कुछ (हम नहीं जानते कि कब और कैसे) पेड़ों से नीचे आए और उन्होंने धीरे-धीरे खड़ा होना तथा फिर पिछले पैरों से चलना सीखा। यह मानव के विकास में सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। खड़े होकर ये जानवर सभी दिशाओं में काफी दूर तक देख सकते थे और अपने घातक दुश्मनों, बड़े-बड़े जानवरों से अपनी रक्षा कर सकते थे। इस प्रकार वे नई जीवन-पद्धति विकसित करने के मार्ग पर चल पड़े।

जमीन पर रहने से शारीरिक परिवर्तन हुए। वानरों के प्रतिदिन पेड़ों पर चढ़ने से उनकी कलाई की हड्डियों का विकास हुआ और उन्हें हाथों से वस्तुओं को पकड़ने का अभ्यास हुआ। खड़े होने पर उसके आगे के अंग वस्तुओं को पकड़ने तथा मज़बूत डंडों को हथियारों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र थे। कालक्रम से हाथों में लचीली उंगलियों तथा नमनीय अंगूठों का विकास हुआ। इस नए विकास ने वानर-मानव को एक शिल्पी बना दिया। अब वह चीजों को पकड़ कर अपनी आंखों के पास लाने में समर्थ हो गया। साथ ही साथ शरीर के अंदर के अवयवों में भी खड़े होने की स्थिति के अनुकूल कई परिवर्तन हुए। उसका

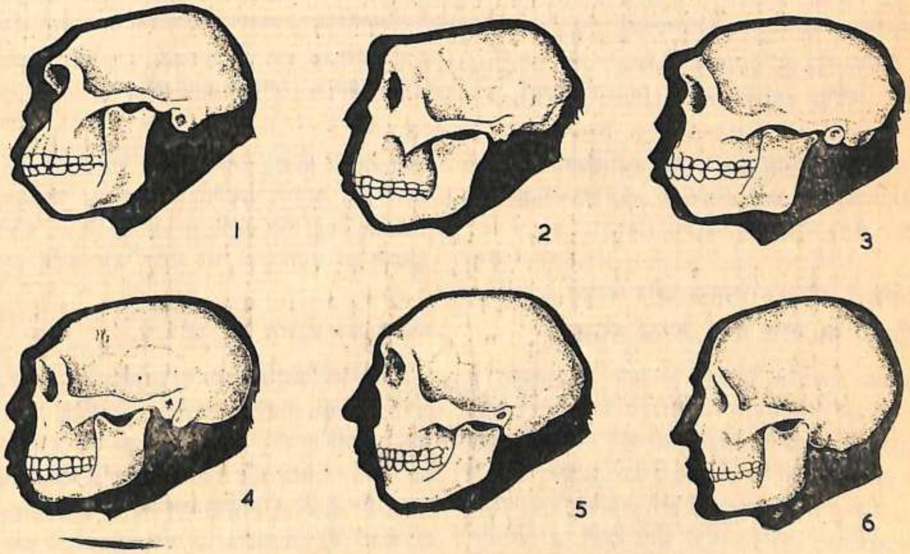

प्रागैतिहासिक मानव की विभिन्न जातियों के रेखाचित्र। (1) आस्ट्रेलोपिथिकस. (2) जिंजानथ्रोपस, (3) पिथिकथ्रोपस एरेक्टस (जावा मानव), (4) सिनांथ्रोपस (पीकिङ मानव), (5) निअंडरथल मानव, (6) क्रो-मैग्नान मानव

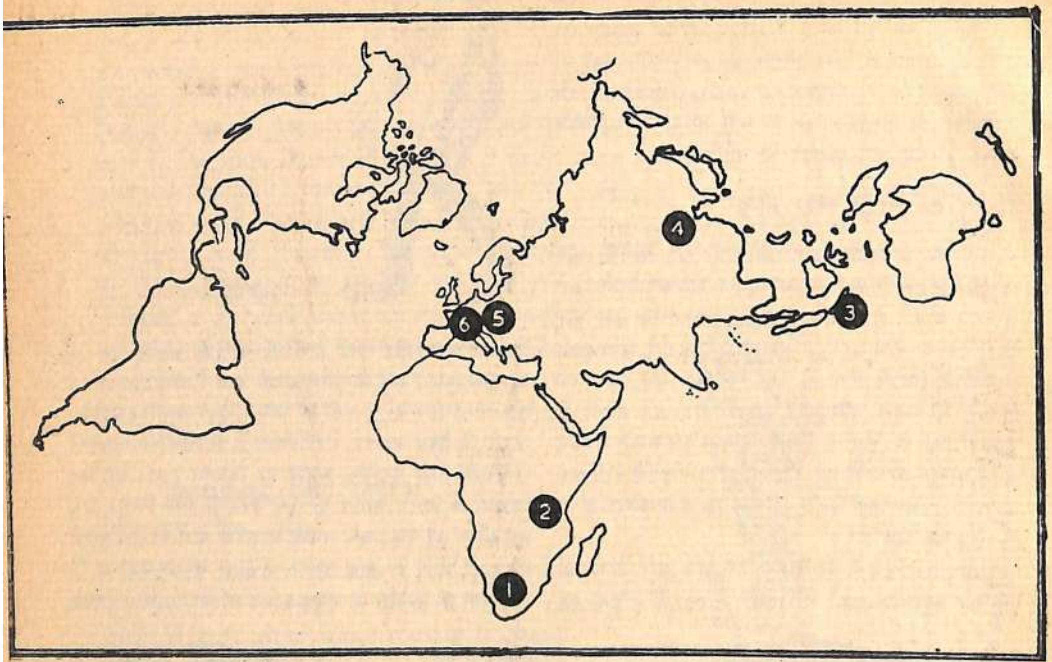

वे स्थान जहां आदि मानव के अवशेष पाए गए हैं। (1) आस्ट्रेलोपिथिकस, (2) जिंजानथ्रोस, (3) पिथिकांथ्रोपस जावा मानव, (4) सिनांथ्रोपस (पीकिङ मानव), (5) निअंडरथल मानव, (6) क्रोमैग्नान मानव

मस्तिष्क विकसित हुआ और उसने उसे औजार बनाने तथा अंततोगत्वा उसे अन्य पशुओं से ऊपर उठने में बुद्धि का प्रयोग करने में सहायता दी।

मानव ने औजार बनाना और अपने साथियों के साथ कार्य करना सीखा

केवल शारीरिक विकास ही मानव के विकास के सारतत्व की स्पष्ट रूप से व्याख्या नहीं कर सकता। मानव अपने साथी मनुष्यों के साथ मिलकर और अपने द्वारा बनाए गए औज़ारों से जो काम करता है वह उसे पशु-जगत में विशिष्ट बना देता है। उसने औजारों के रूप में पहले पत्थर के टुकड़ों तथा आसपास पड़ी अन्य चीज़ों का इस्तेमाल किया। प्राकृतिक औजारों के प्रयोग ने मानव के पुरखों को अंततोगत्वा वस्तुओं को अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने और बाद में, भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए अलग-अलग औजार बनाने के लिए प्रेरित किया हो। इस प्रकार अब उन्होंने प्राकृतिक वस्तुओं को उपकरणों में परिवर्तित किया तथा प्रकृति द्वारा प्रस्तुत की गई जीवन की दशाओं को सुधारने के लिए पहला बड़ा कदम उठाया।

मानव की बोलने की शक्ति

मानव की प्रत्येक पीढ़ी पहले की पीढ़ियों का ज्ञान विरासत के रूप में प्राप्त करती है। प्रत्येक पीढ़ी उसमें नया ज्ञान जोड़ती है और अगली पीढ़ी को देती है। ज्ञान के निरंतर संचय तथा संचार से ही मनुष्य सांस्कृतिक प्रगति करता है। बोलने की क्षमता मानव की अजीब विशेषता है जो संचार की इस प्रक्रिया को अपेक्षाकृत संभव बना देती है।

बोलने की शक्ति मूलतः उच्चतर बुद्धि पर निर्भर होती है। जिससे अभिव्यक्ति के लिए विचार उत्पन्न होते हैं।

ऐसी ऊंची बुद्धि केवल मानव प्राणियों के ही पास है।

औजार-निर्माण भी बुद्धि से संबद्ध है। इस प्रकार यह एक विशिष्ट मानवीय क्रिया है। पुरातत्वविद् जब यह निर्धारित करते हैं कि उन्होंने जिन प्राइमेट के जीवाश्म खोद निकाले हैं वे सचमुच वानर नहीं मनुष्य थे तब वे देखते हैं कि क्या उन्होंने औजार बनाए थे। मानव के सांस्कृतिक विकास की अवस्था की सबसे उत्तम सूचक उसकी शारीरिक बनावट नहीं बल्कि उसके शिल्प-उपकरण हैं।

प्रागैतिहासिक मानवों की जातियां

हाल की खोज़ों ने इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ा है कि मानव जैसे प्राणी अथवा आदिम होमिनिड्स (Hominids) सबसे पहले अफ्रीका में **अभिनूतन काल** (Pleistocene epoch) के प्रारंभ में प्रकट हुए। वे सब खत्म हो गए हैं। दुर्भाग्यवश पुरा पाषाण काल के मानव के कोई अस्थिपंजर भारत में नहीं मिले हैं यद्यपि उन वानरों के जीवाश्म जिनसे मानव और वर्तमान वानरों का अंततोगत्वा विकास हुआ शिवालिक की पहाड़ियों में मिले हैं। इनमें से सबसे सविख्यात वानर 80 लाख वर्षों से भी पहले थे। उन्हें **रामापिथिकस** (Ramapithecus) नाम दिया गया है। मानचित्र में वे स्थान दिखलाए गए हैं जहां आदि मानव के अवशेष पाए गए हैं।

सबसे पहला वानर-मानव जो सीधा चलता था और होमिनिड् से मिलता-जुलता था मध्य अफ्रीका में पाया गया। उसे **आस्ट्रेलोपिथिकस** (Australopithecus) कहा गया। निश्चित रूप से यह मालूम है कि आस्ट्रेलोपिथिकस की एक उपजाति **जिंजानथ्रोपस** (Zinjanthropus) औजार बनाती थी। लगता है कि ये प्राणी 5 लाख साल पहले रहते थे। सर्वप्रथम वे अन्य पशुओं की तरह नंगे और बाहर खुले में रहते थे तथा बेर, गिरीदार फल, कंदमूल और कीड़े-मकोड़े खाते थे।

एशिया में आदि होमिनिड् प्राणियों के अवशेष जावा में मिले हैं। वहां एक नदी की रेती से एक खोपड़ी का ऊपरी भाग, दांत और जांघ की एक हड्डी मिली है। अध्ययन के बाद कहा गया कि ये हड्डियां एक ऐसे होमिनिड् की हैं जो सीधा होकर चल सकता था। इसलिए उसे **पिथिकांथ्रोपस एरेक्टस** (Pithecanthropus Erectus) यानी सीधा खड़ा वानर-मानव कहा गया। अनेक वर्षों के बाद इसी प्रकार के जीवों के चालीस जीवाश्म पीकिङ के निकट एक गुफा में मिले। **पीकिङ मानव** (Peking Man) जिसे **सिनांथ्रोपस** (Sinanthroupus) नाम से भी जाना जाता है, **जावा-मानव** (Java Man) की अपेक्षा कुछ विकसित चचेरा भाई सिद्ध हुआ। ऐसा लगता है कि पिथिकांथ्रोपस दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक भागों में 5 लाख और 2 लाख वर्षों के बीच रहते थे। यूरोप में पिथिकांथ्रोपस नस्ल का प्रतिनिधित्व करने वाला जीवाश्म जर्मनी में हाइडलबर्ग के निकट पाया गया।

सिनांथ्रोपस के शारीरिक रूपरंग तथा रहने के ढंग के बारे में उसके अस्थिपंजरों और उसके रहने की गुफाओं के अध्ययन से काफी कुछ मालूम हुआ। वह आग जलाना जानता था। चीन पर जापान के आक्रमण के दौरान सिनांथ्रोपस के अस्थिपंजर अवशेष खो गये, या चोरी हो गये। सौभाग्य से, इन अवशेषों के चित्र और ढाँचे बचे हुए तथा अध्ययन के लिए उपलब्ध हैं। वैसे, मूल अवशेषों की खोज जारी है।

निअंडरथल मानव (Neanderthal Man) नाम इस कारण पड़ा कि उसकी हड्डियां सबसे पहले जर्मनी में निअंडर की घाटी में मिलीं। वह मध्य पुरा पाषाण काल का प्रतिनिधित्व करता है। अब से लगभग एक लाख साठ हजार वर्ष हुए वह हिम युग के चौथे हिमकाल में बर्फ की गुफाओं में रहता था, किन्तु अब से चालीस हजार वर्ष पूर्व वह सहसा खत्म हो गया। निअंडरथल-मानव मृतकों का आदर करता था और शवों को पूजा की सामग्रियों सहित कब्र में दफनाता था। किसी न किसी तरह के धर्म और पुनर्जन्म में भी, लगता है कि, उसका विश्वास था।

लगता है कि निअंडरथल-मानव के बाद होमो सेपियंस जाति का क्रो-मैग्नान मानव (Cro-Magnon Man) आया। **ग्रिमाल्डी मानव** (Grimaldi Man) भी हुआ। यह मानव भी होमो सेपियंस जाति का था।

पुरा पाषाण युग

पुरा पाषाण युग के मानव के औजार

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया उस समय प्रारंभ हुई जब हमारे उपमानव पूर्वजों में खुरदरे औजार बनाने का कौशल आ गया। ये औजार बहुधा ऐसे पत्थर के टुकड़ों से मिलते-जुलते थे, जो प्राकृतिक क्रियाओं से औजार जैसी शक्ल के बन या गढ़ गए थे। बहुत से प्राकृतिक कारणों से पत्थरों की पपड़ी उतर जाती है। प्राकृतिक रूप से पपड़ी उतरते देखकर ही शायद

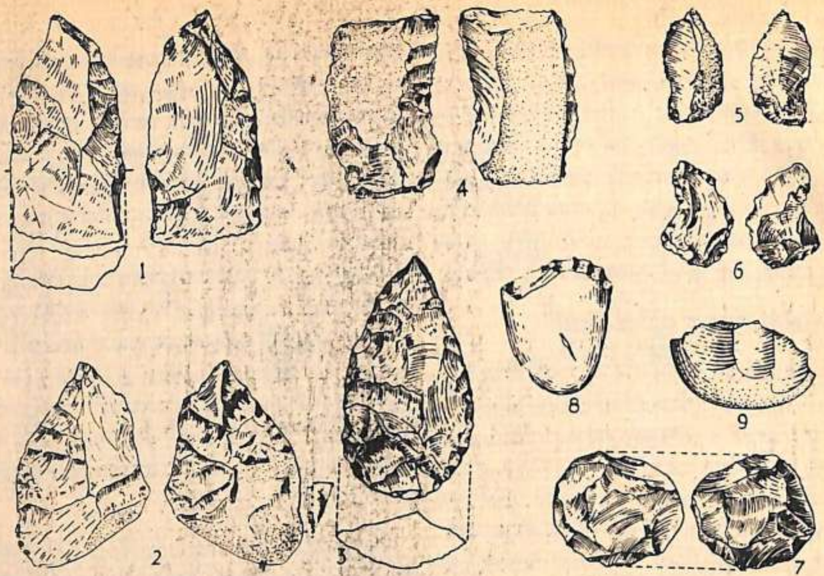

पुरा पाषाण युगीन मानव के पत्थर के औज़ार

मनुष्य को यह प्रेरणा मिली हो कि वह भी विभिन्न कार्यों के लिए पत्थर को गढ़कर औजार बना सकता है। अभिनूतन युग के औजार बनाने वाले ने धीरे-धीरे सीख लिया कि पत्थर या चट्टान के किसी टुकड़े को कैसे पकड़ा जाए और किस कोण पर और कितनी जोर से चोट मारी जाए कि अभीष्ट स्थान से ठीक आधार के पत्थर के टुकड़े टूट सकें। पुरा पाषाण युग का मानव केवल खुरदरे औजार काम में लाता था और अपना भोजन इधर-उधर से इकट्ठा करता था।

पुरा पाषाण युग के औजार तीन मुख्य भागों में आते हैं: कुठार, गंड़ासे और रुखानी या शल्कल औजार (Flake Implements)।

लगता है कि कुठार मुट्ठी में पकड़ा जाता था। इससे किसी वस्तु को काटा जाता था या इसे किसी वस्तु को कुचलने के लिए काम में लाया जाता था। पत्थर के टुकड़े के सख्त मध्य भाग से पपड़ी उतार कर कुठार बनाया जाता था। गंड़ासे संभवत: मांस काटने के लिए काम में लाए जाते थे। वे भारी पत्थर की एक ओर तेज नोक बनाकर तैयार किए जाते थे। रुखानी या शल्कल औजार कुठारों और गंड़ासों की अपेक्षा

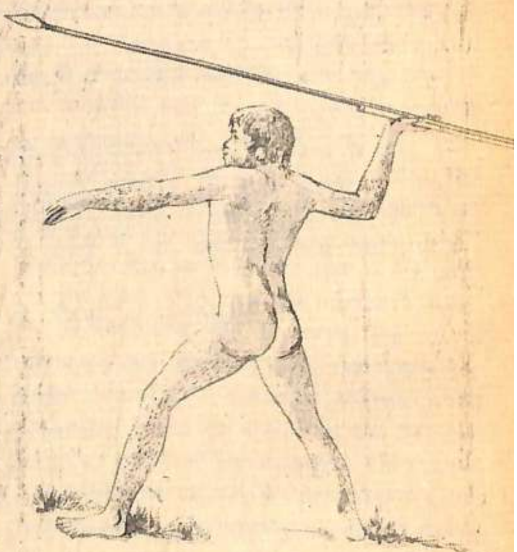

भाला फेंकने वाला

छोटे और पतले होते थे, मगर उनके किनारे अधिक पैने होते थे।

पुरा पाषाण युग के औजार यूरोप, अफ्रीका और एशिया अनेक स्थानों पर पाए गए हैं। उनका आकार सभी जगह एक सा था और वे एक ही ढंग से बनाए जाते थे।

बाद में बहुत से अन्य औजार हड्डी और हाथी दांत के बनाए गए। औजार बनाने के लिए भी कुछ औजार बनाए गए। ज्ञान की वृद्धि के साथ यांत्रिक युक्तियों का आविष्कार हुआ जैसे हथियारों के रूप में धनुष तथा भाला फेंकने का अस्त्र। वे घातक अस्त्र शत्रु से लड़ने के लिए बाहुबल से कहीं अधिक शक्तिशाली थे। धनुष और भाला फेंकने वाले अस्त्र से दूर की वस्तु पर अधिक ठीक निशाना लगाना संभव हो गया। शिकारी इनकी सहायता से पशुओं के झुंड को उत्तेजित किए बिना चुपके से लगातार कई तीर अथवा कई भाले काफी दूर फेंक सकता था। बारूद के अस्त्रों का आविष्कार होने से पहले धनुष ही सबसे उपयोगी हथियार था।

सामुदायिक जीवन का प्रारंभ

उत्तर-पुरा पाषाण युग में मनुष्य का मुख्य व्यवसाय शिकार करना और फल इकट्ठा करना था। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि इस काल में मानव ने खेती करना प्रारंभ कर दिया था या वह पशु भी पालने लगा था। सामाजिक संगठन अर्थात् मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों के बारे में भी हमें विस्तार से कुछ मालूम नहीं है। परन्तु यह विश्वास है कि इस युग में मानव भोजन-सामग्री ढूंढने के कार्य में साथी मानवों के साथ सहयोग करना सीख गया था। शारीरिक दृष्टि से मनुष्य एक बहुत ही दुर्बल प्राणी है। बहुत पहले ही उसे यह ज्ञात हो गया था कि जब तक वह दूसरों से मिल जुलकर नहीं रहेगा या मिलकर काम नहीं करेगा, वह जिन्दा नहीं रह सकता। वह समूह में रहता था और सारा समूह भोजन प्राप्त करने और अपनी रक्षा के लिए मिल जुलकर काम करता था। ऐसे समुदाय में किसी के लिए भी बिना काम किए, या अन्य लोगों के श्रम पर जिन्दा रहना संभव नहीं था। निःसंदेह, जो काम नहीं कर सकते थे (जैसे बच्चे और बूढ़े) उनकी देखभाल की जाती थी। समुदाय का आकार इलाके में उपलब्ध फलों की मात्रा तथा शिकार किए जाने वाले जानवरों की संख्या पर निर्भर होता था।

ये समुदाय या कुल एक ही जगह पर बहुत दिनों तक बसे हुए नहीं रह पाते थे। उन्हें ऋतुओं के बदलने पर पशुओं के साथ ही अपने रहने का स्थान भी बदलना पड़ता था। किन्तु कभी-कभी किसी स्थान पर शिकार के लिए पशु काफी संख्या में मिलते तो वे लोग वहीं खालों के तंबुओं में या गुफाओं में लंबे समय तक रह जाते।

पुरा पाषाण कालीन मानव में संभवतः स्वामित्व या निजी संपत्ति की भावना नहीं विकसित हुई थी। शायद उस समय पुरुषों और स्त्रियों का दर्जा समान था और सामाजिक असमानताओं का जन्म नहीं हुआ था।

पुरा पाषाण कालीन कला

क्रो-मैग्नान मानव ने पहले अपनी गुफाओं की दीवारों पर रेखाएं खींच कर भद्दे चित्र बनाए। फिर कुछ हजार वर्षों में विशेषकर पुरा पाषाण काल के अंतिम चरण में वह एक सफल कलाकार हो गया। उसने चित्रकारी, नक्काशी, और

प्रागैतिहासिक मानव द्वारा गुफाओं में की गई चित्रकारी

मूर्ति कला में बहुत उन्नति की। फ्रांस, स्पेन और इटली में इस प्रकार की कला से सुसज्जित बहुत सी गुफाएं मिलती हैं। कुछ गुफाओं की दीवारों और भीतरी छतों पर बहुरंगी चित्र हैं जो 'चित्र वीथीयों' के समान लगते हैं। इन चित्रों और नक्काशियों में भागते हुए जंगली सांड, घोड़े, रीछ, बारहसिंगे और मैमथों के झुंड तथा शिकार के बड़े दिलचस्प दृश्य दिखलाए गए हैं। मनुष्य और पशुओं की आकृतियां भी हड्डियों और हाथी दांत पर खुदी मिली हैं। इस प्रकार पुरा पाषाण कालीन कला में बहुत उन्नति हुई और आज भी लोग इसकी बहुत प्रशंसा करते हैं।

ये चित्र अधिकतर ऐसी गुफाओं के भीतर मिले हैं जहां सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंचता है। इनमें इतना अंधेरा है कि ये चित्र मशाल या आग की रोशनी में बनाए गए होंगे। यदि ये चित्र आनंद के लिए बनाए गए होते तो इतने अंधकार में और इतने तंग स्थानों में चित्रित नहीं किए जाते। वस्तुतः ये गुफाएं जिनकी दीवारों पर ये चित्र हैं बिल्कुल मंदिर जैसी लगती हैं।

इससे कुछ विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि ये चित्र जादू करने के उद्देश्य से बनाए गए थे। शिकार करना पुरा पाषाण कालीन मानव का दैनिक कार्य था। उसका भोजन मुख्य रूप से शिकार की सफलता पर निर्भर था। कई चित्रों में ऐसे पशुओं को मरते हुए दिखलाया गया है जिनके शरीर भाले से छिदे हुए हैं। चित्रों से वह संभवतः उन पशुओं को अपने वश में करने के लिए सामर्थ्य प्राप्त करता होगा जो उसे खुले मैदान में मिलते होंगे।

आजकल भी आदिम जनगणों में जो रीति-रिवाज प्रचलित हैं, उनसे इस विचार की पुष्टि होती है। ये जनगण जन्म, मृत्यु और बालिग होने तथा विवाह के मौकों पर जो संस्कार करते हैं, चट्टानों पर नक्काशी करना या चित्र बनाना उन्हीं का आवश्यक अंग होता है। शिकार संबंधी संस्कारों में वे चेहरे लगाकर नाचते हैं जिससे कि वे उन पशुओं को मार सकें, जिन्हें खोजना या मारना वे कठिन समझते हैं।

कला का उद्देश्य कुछ भी रहा हो, इसके अभ्यास से पुरा पाषाण कालीन मानव में सौंदर्य बोध का विकास हुआ। उसने अपने निजी सामानों को सजाया तथा अपने औजारों पर नक्काशी की। उसने हाथी-दांत, हड्डियों, पत्थरों और सीपियों से बने हार, कर्णफूल और दस्तबंद से अपने शरीर को सजाया।

भारत में अनेक स्थानों पर पहाड़ियों की चट्टानों में बने निवास स्थानों में अनेक चित्र मिले हैं। इनमें से अनेक चित्रों की तिथियां निश्चित करना कठिन है तथापि मध्यप्रदेश के भीमबेटका के चित्र पाषाण युग के समझे जाते हैं।

नव पाषाण युग

संक्रांति की अवस्था

मानव ने मध्य पाषाण युग में काफी उन्नति की जो पुरा पाषाण युग को नव पाषाण युग से अलग करती है। इस युग में हिम नदियां छोटी हो रही थीं और जो क्षेत्र पहले बर्फ से ढके हुए थे वहां धीरे-धीरे घने जंगल उग आए। बड़े पशु तो वहां से चले गए किन्तु मनुष्य ने कुत्ते को पालतू बना लिया। कुत्ता उसे शिकार में सहायता देने लगा। मध्य पाषाण युग की विशेषता छोटे औजारों का इस्तेमाल थी। इन छोटे औजारों को लघु अश्म (Microliths) कहते हैं।

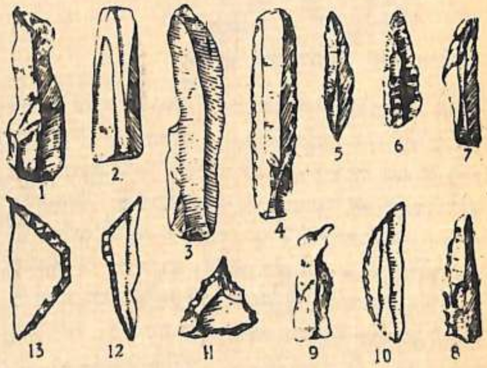

लघु अश्म

इनमें से कुछ का इस्तेमाल भाले के अग्रभाग और कुछ का तीरों के अग्रभाग के रूप में होने लगा। मध्य पाषाण युग के मनुष्य बर्फ पर चलने के लिए बिना पहिए की स्लेज गाड़ी का इस्तेमाल करते थे। कुछ क्षेत्रों में उगने वाली जंगली अनाज की फसल को वे काट लेते थे। यह भी संभव है कि मध्य पाषाण युग में फिलिस्तीनी लोग कुछ हद तक खेती भी करते रहे हों।

कृषि का आरंभ

भोजन इकट्ठा करने से अनाज उत्पादन में परिवर्तन एकाएक नहीं हो गया। यह परिवर्तन धीरे-धीरे मध्य

पाषाण युग के लोगों के प्रयोगों से हुआ। हम जानते हैं कि पौधे बीज से उगते हैं किन्तु उस युग के मानव की यह बात उतनी स्पष्ट नहीं थी। उसने हर वर्ष अपने चारों ओर पौधों को स्वाभाविक रूप से उगते हुए देखा। वह यह समझता था कि ऐसा होना स्वाभाविक है और प्रति वर्ष पके हुए अनाज को काट लेता था। उसे इस बात का ज्ञान नहीं था कि अनाज को उगाया भी जा सकता है। जब एक स्थान पर भूमि की उर्वरता समाप्त हो जाती अथवा वहां बहुत कम या नहीं के बराबर उत्पादन होता तब वह नए स्थान पर चला जाता जहां अनाज उगता था।

शायद कभी किसी व्यक्ति ने देखा होगा कि अनाज का दाना खलिहान से बुहारने पर गोबर के ढेर पर जा पड़ा और कुछ दिनों बाद उसमें अंकुर निकल आया और बाद में अनाज के दाने उस पौधे पर निकल आए। बीज से पौधा कैसे उगा यह जानने के लिए सूक्ष्म अवलोकन की आवश्यकता थी। जिस मनुष्य ने बीज से पहले-पहल पौधे उगाने की कोशिश की उसे पहला महान वैज्ञानिक माना जा सकता है। मानव ने भोजन के लिए अन्न प्राप्त करने का विश्वसनीय ढंग निकाल लिया।

कृषि के विकास के आरंभिक दिनों में मानव हर वर्ष उसी खेत को तब तक बोता था जब तक उसकी उर्वरता समाप्त नहीं हो जाती थी। खाद देकर जमीन की उर्वरता बढ़ाने के बारे में उसे कोई ज्ञान नहीं था। उन क्षेत्रों में अधिक स्थायी बस्तियां बनीं जहां प्रकृति प्रति वर्ष बाढ़ की उपजाऊ मिट्टी से या गले हुए पदार्थों से धरती को उर्वर बना देती थी।

इस बात को दिखलाने के प्रमाण हैं कि सबसे पहले कृषि-कार्य थाइलैंड और अरब तथा ईरान के मरुस्थलों की सीमाओं पर ऐसी घाटियों में प्रारंभ हुआ जहां पानी की कमी नहीं थी और जिन्हें धन्वाकार उपजाऊ प्रदेश (Fertile Crescent) कहते हैं। धन्वाकार उपजाऊ प्रदेश भेड़ों, बकरियों, सुअरों तथा मवेशियों का मूल स्थान है। वहां गेहूं और जौं जंगली घास की भांति उगते थे। पश्चिमी एशिया में फिलिस्तीन में भी मानव ने मध्य पाषाण युग की संस्कृति का बहुत विकास किया था। फिलिस्तीन के जेरिको के स्तरित उत्खनन में पुरा पाषाण काल के अवशेषों के ऊपर तीन संस्कृतियों की परतें मिली हैं। वे बसे हुए ग्राम-जीवन के बाद के विकास को दिखलाती हैं। जेरिको में अच्छे ढंग से बनी झोंपड़ियां थीं। यहां गांव के चारों ओर शत्रुओं से बचाव के लिए ईंट और पत्थर की दीवारें थीं। यह बस्ती जिसकी जनसंख्या लगभग 3000 थी, 7000 ई० पू० के आसपास विकसित हुई। वहां अनके पशुओं की जो हड्डियां मिली हैं उनसे अनुमान लगाया गया है कि वहां के लोग बहुत से पशुओं, खासकर बकरियों को पालते थे। लगता है कि कुत्ते के बाद बकरी ही पाली गई।

जेरिको के समान ही उसी काल के अनेक खेतिहर गांवों के खण्डहर उत्तरी सीरिया, ईरान और इराक में मिले हैं। इन खोजों से यह स्पष्ट है कि पशु-पालन और कृषि बहुत जल्दी फिलिस्तीन से इन देशों में फैल गई। वहीं से लगभग 5000 ई० पू० में ये दोनों व्यवसाय मिस्र में नील नदी की घाटी में पहुंचे। शिकार और भोजन इकट्ठा करने की स्थिति से कृषि एवं पशु पालन तक का परिवर्तन भारत में बाद में हुआ।

बस्तियों का विकास

विद्वानों का मत है कि जब मानव ने कृषि के आविष्कार को पूरी तरह अपना लिया तभी से नव पाषाण युग का प्रारंभ हुआ। इस युग में जीवन इतना अधिक बदल गया कि इस युग को 'नव पाषाण युगीन क्रांति' कहा जाता है। जब उसने कृषि करना प्रारंभ किया तो उसे तुरंत पता लग गया कि केवल बीज बोना पर्याप्त नहीं है। बढ़ते हुए पौधों की देखभाल करना भी आवश्यक है। मनुष्य को अब यह आवश्यकता भी नहीं रही कि वह उन स्थानों की खोज करे और वहां जाए जहां शिकार के लिए पशु बहुतायत से मिल सकें। अब वह बहुत से पशु अपने पास रख सकता था, जिनको जब आवश्यकता हो भोजन के लिए मार सकता था।

इस प्रकार कृषि के द्वारा व्यवस्थित जीवन का प्रारंभ हुआ। लोगों ने मिट्टी के घरों तथा लकड़ी के खंभों और घास-फूस के छप्पर से बने मकानों में रहना आरंभ कर दिया। बस्तियां आमतौर से उनके खेतों के नजदीक थीं। बाद में ये ही बस्तियां विकसित होकर गांव बन गई और उन्हीं में से कुछ ऐसे छोटे आरक्षित नगर बन गए। व्यवस्थित जीवन के फलस्वरूप ही संगठित सामाजिक जीवन का विकास हुआ है।

नव पाषाण युगीन संस्कृति जो एशिया में प्रारंभ हुई काफी बाद में यूरोप में फैल गई। स्विटजरलैण्ड की झीलों के पास बने मकानों के अध्ययन से यूरोप के सांस्कृतिक विकास के बारे में बहुत कुछ पता चला है। इन झीलों के तट पर पानी के निकट मकान बनाए जाते थे और जब पानी की सतह ऊंची हो जाती थी तब इन मकानों को चबूतरों पर

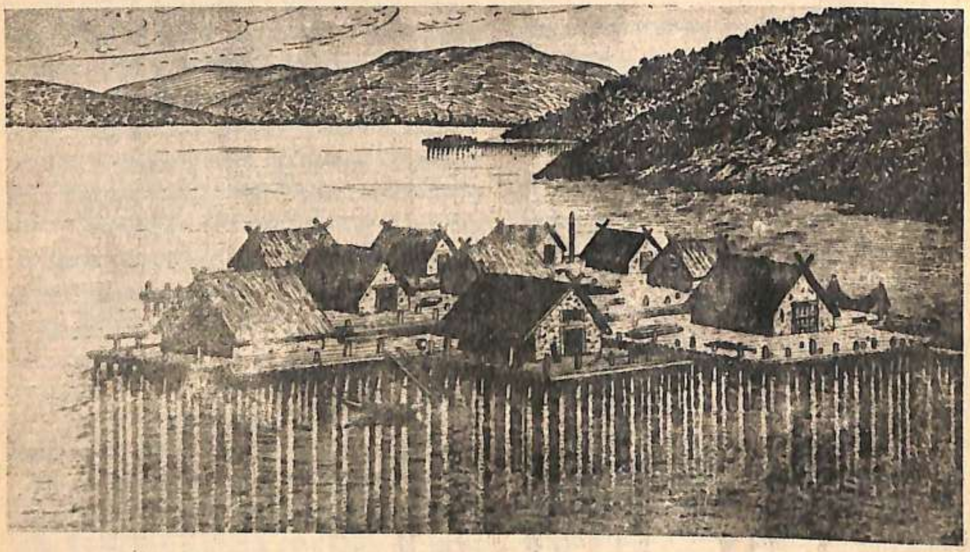

स्विटज़रलैंड की झीलों के निवासियों के मकान

ऊंचा उठाया जाता था। इन मकानों के अवशेषों को पूरी तरह सुरक्षित रखा गया है। ये अवशेष उनके निवासियों के जीवन का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं।

मिश्रित कृषि का विकास

पशु पालन का प्रारंभ कैसे हुआ, यह ज्ञात नहीं है। शायद पानी के उन निकटवर्ती क्षेत्रों में जहां मनुष्य रहते थे वहां बड़ी संख्या में पशु भी रहते होंगे। ऐसे स्थानों पर मनुष्यों ने पशुओं की आदतों का भी अध्ययन किया होगा जिससे उनके लिए पशुपालन सरल हो गया होगा। खेती करने वाले मनुष्यों के लिए पशुपालन वैसे भी सरल था। दाने अलग करने के बाद अनाज की भुस्सी पशुओं को खिलाकर इनका पेट भर सकते थे। कुछ भी हो, भेड़, बकरियां, सूअर, मवेशी और बाद में घोड़े और गधे पाले गए और उन्हें बाड़ों में रखा गया। इस प्रकार लोगों ने भूमि तथा पशुओं से भोजन प्राप्त किया। बाड़ों में पशुओं का अधिक नजदीक से पर्यवेक्षण किया जा सकता था। बछड़ों और बकरी के बच्चों को मां का दूध पीते देखकर मनुष्य को यह विचार ज़रूर आया होगा कि वह मांस के अतिरिक्त गायों और बकरियों का दूध अपने भोजन के लिए ले सकता है। इस ढंग को जिसमें खेती के साथ-साथ पशु पाले जाते हैं। 'मिश्रित कृषि' कहा जाता है। इस समय पशुओं का मुख्य उपयोग दूध और मांस प्राप्त करने के लिए होता था, वे अभी माल ढोने या हल जोतने के काम में नहीं लाए जाते थे।

कृषि के विकास के कारण विविध परिवर्तन हुए। जो भोजन तुरंत इस्तेमाल में नहीं आता था उसको सुरक्षित रखना आवश्यक हो गया। फसल काटने के पश्चात् तुरंत सारा अनाज खर्च नहीं हो सकता था, उसे अगली फसल तक चलाना था और उसमें से बोने के लिए कुछ बीज बचाकर रखने की आवश्यकता थी। इसीलिए सबसे प्राचीन नव पाषाण कालीन बस्तियों में भी अनाज रखने की खत्तियां पाई गई हैं। इसी तरह पशुओं को भी बिना सोचे-विचारे नहीं मारा जाता था। जवान गायों को दूध देने और पशुओं की संख्या बढ़ाने के लिए न मारा जाना ही ठीक समझा गया। बढ़ता हुआ अधिशेष अनाज खराब मौसम के समय और फसल खराब होने पर काम आता था, और इससे बढ़ती हुई जनसंख्या का भी जीवन-निर्वाह होता था। खेतिहर अर्थव्यवस्था में अनाज के पर्याप्त भण्डार तथा उसकी बढ़ती हुई उपलब्धि के कारण ही जनसंख्या में वृद्धि

हुई। गांव बड़े होते गए और उनमें से कुछ नगर बन गए।

चिकने पत्थर के औजार

नव पाषाण काल के औजारों की अपेक्षाकृत अधिक उपयोगिता और कुशल बनावट ही उन्हें पुरा पाषाण कालीन औजारों से अलग कर देती है। नव पाषाण काल का एक महत्वपूर्ण औजार पत्थर की एक चिकनी कुल्हाड़ी (Celt) थी। वह कुल्हाड़ी बढ़िया दानेदार पत्थर के टुकड़े से बनी होती थी। उसके एक सिरे को गढ़ा जाता था और चिकना बनाया जाता था जिससे कि काटने वाला किनारा तेज हो जाए। डंडे के एक सिरे में लगाकर उसको कुल्हाड़ी के रूप में काम में लाया जा सकता था। उससे जंगल साफ किए जाते और उसे एक कुदाल की भांति जमीन गोड़ने के काम में लाया जाता था। उसकी सहायता से मनुष्य लकड़ी काटने और उसे मनचाहा रूप देने में समर्थ हुआ जिसके फलस्वरूप बढ़ईगीरी का विकास हुआ। इस प्रकार बढ़ईगीरी का जो ज्ञान प्राप्त हुआ बाद में उसका प्रयोग हल, पहिए, तख्तों की नावें और लकड़ी के मकान बनाने में किया गया।

नव पाषाण काल का दूसरा महत्वपूर्ण औजार हंसिया था। लकड़ी के हत्थे में पत्थर के पतले टुकड़ों के फलक लगाकर यह औजार बनाया जाता था। इसका इस्तेमाल फसल को काटने और इकट्ठा करने में किया जाता था। लड़ाई और शिकार के हथियारों में काफी उन्नति हुई। इस काल में भी धनुष और बाण काम में लाए जाते थे, किन्तु बाणों की नोकें अब पहले की अपेक्षा अधिक पैनी बनाई जाने लगीं। कुछ स्थानों पर मनुष्य गुलेल जैसे एक नए हथियार का इस्तेमाल करने लगे। नव पाषाण कालीन मानव सुई तथा कांटेदार बर्छी जैसे औजार हड्डी तथा सींगों से बनाने लगा।

मिट्टी के बर्तनों का आविष्कार

भोजन को रखने तथा पकाने के लिए बर्तनों की आवश्यकता हुई जिनमें अनाज तथा द्रव पदार्थ रखे जा सकें

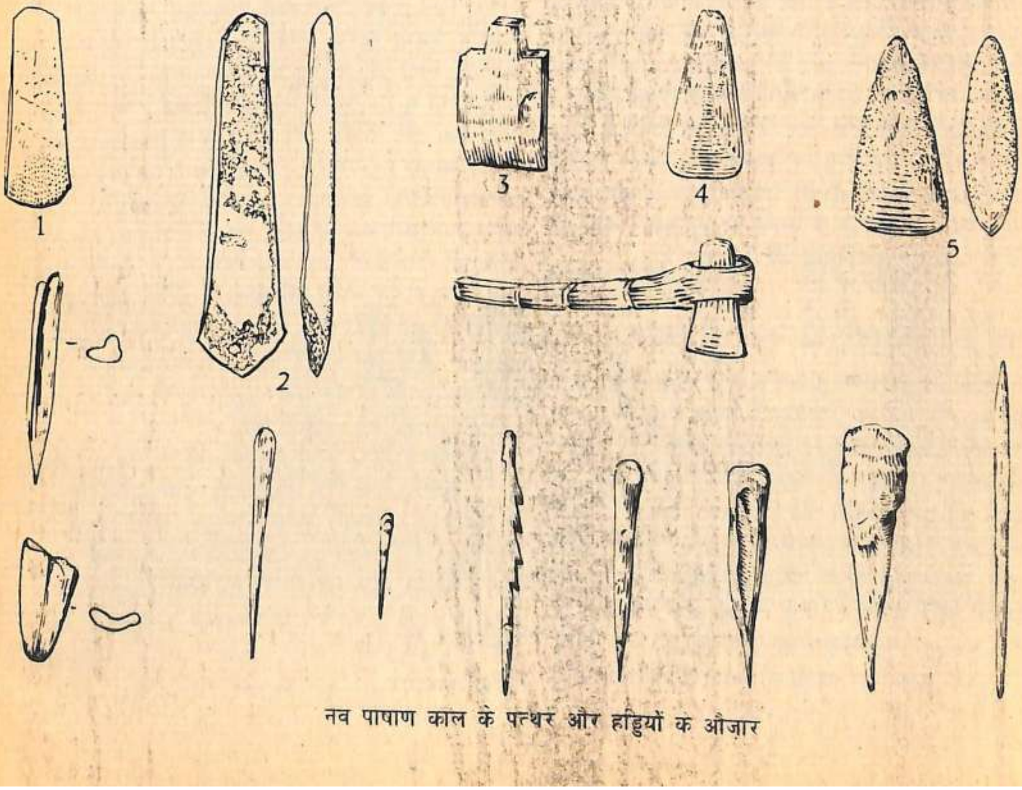

नव पाषाण काल के पत्थर और हड्डियों के औज़ार

और जो आग पर भी चढ़ाए जा सकें। नव पाषाण काल के प्रारंभ में सींकों और टहनियों से बनी टोकरियों फल तथा सूखी वस्तुओं को रखने के काम आती थीं। द्रव पदार्थ रखने के लिए उन्हें मिट्टी से पोत दिया जाता था। यह संभव है कि कभी ऐसी कोई टोकरी संयोगवश आग में गिर गई हो और यह परिणाम हुआ हो कि टोकरी के तिनके जल गए हों और मिट्टी की तह आग में पक कर एक तश्तरी की भांति रह गई हो। पकी मिट्टी की इस तश्तरी पर पानी का कोई असर नहीं पाया गया। पकी मिट्टी न तो पानी में घुल सकती थी और न ही पानी में घुल कर खत्म हो सकती थी। संभवतः इसी प्रकार मनुष्य ने बर्तन बनाना और पकाना सीख लिया। मनुष्य एक सृष्टा हो गया। वह मिट्टी को पत्थर में बदल सकता था।

नव पाषाण कालीन मानव गोल पट्टियों और रेशों की रस्सियां बनाना जानते थे। उन्होंने कुंडली वाले गोल मिट्टी के बर्तन बनाना सरलता से सीख लिया। वे मिट्टी में रेत, पिसी हुई सीपी और कुटा हुआ भूसा अच्छी प्रकार मिलाकर उसकी लंबी रस्सी-सी बना लेते थे, जैसा कि वे टोकरी बनाने के लिए करते थे। तब वे इन रस्सियों की कुंडलियां बनाकर एक के ऊपर दूसरी रखकर उन्हें चिपका लेते थे। जो किनारे निकले रह जाते थे उन्हें गीले हाथ और कंकड़ों से चिकना कर लेते थे। उन लोगों ने जल्दी ही अपने मिट्टी के बर्तनों को बहुत तेज आग में जिसका तापमान 600^0 सेंटीग्रेड से अधिक होता था, पकाना सीख लिया। इससे वे बर्तन सख्त हो जाते थे और उन पर पानी का कोई असर नहीं पड़ता था। मिट्टी के बर्तनों का आविष्कार सभी नव पाषाण कालीन संस्कृतियों की विशेषता है।

कातने तथा बुनने की कला का प्रारंभ

पश्चिमी एशिया में नव पाषाण काल के सबसे प्राचीन गांवों के जो अवशेष मिले हैं उनसे हमें कपड़ा-उद्योग के आरंभ की कहानी मालूम होती है। इस काल में खाल और पत्तों से बने घाघरों के स्थान पर मनुष्य सन, रुई और ऊन के बने हुए कपड़े पहनने लगे। 3000 ई० पू० के कुछ ही समय बाद सिंधु-घाटी में रुई उगाई जाने लगी थी। इसी समय के आस-पास इराक में ऊन का इस्तेमाल होता था। परन्तु कपड़ा तैयार करने से पहले कातने और बुनने की दो प्रक्रियाओं का आविष्कार तथा दोनों का एक साथ प्रयोग आवश्यक था। कातने के लिए तकली, तकुआ और बुनने के लिए करघे जैसी पेचीदा मशीन के आविष्कार मानव बुद्धि की महान सफलताएं हैं।

सामुदायिक जीवन में सुधार

व्यवस्थित जीवन और खेती-बाड़ी ने मनुष्य को अवकाश का समय दिया। उसे हर समय भोजन-प्राप्ति की ही चिन्ता नहीं लगी रहती थी। खाली समय में वह पत्थर के औजार, कुदाल या बर्तन बना सकता था। कुछ लोग जिन्हें अपना भोजन उत्पन्न करने की ज़रूरत नहीं थी अपने को हमेशा, दूसरे कार्यों में लगा सकते थे। इसके फलस्वरूप श्रम का विभाजन हुआ। श्रम-विभाजन के कारण विभिन्न समूहों के लिए विशेषीकरण करना संभव हो सका। दूसरे शब्दों में, वे एक काम में लगकर उस काम के करने की तकनीक को दूसरों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझ सके।

व्यवस्थित सामुदायिक जीवन के लिए नियमों की आवश्यकता थी जिनसे समुदाय के सदस्यों के आचरण को नियमित किया जा सके। यह जानना संभव नहीं है कि ये नियम किस प्रकार लागू किए गए। यह लगता है कि समुदाय संबंधी निर्णय लोगों द्वारा सामूहिक रूप से या वयोवृद्ध लोगों की परिषद् द्वारा लिए गए। यह चलन जनजातियों में है। उस समय संभवतः कोई राजा नहीं थे और न ही कोई सरकार थी। बहुत संभव है कि नेतृत्व के गुण के आधार पर सरदारों का चुनाव होता रहा हो। मगर वे सरदार अपना पद अपने पुत्रों को नहीं दे सकते थे। उन सरदारों को कोई विशेषाधिकार नहीं थे। पुरातत्व संबंधी उत्खननों में कोई ऐसे अवशेष नहीं निकले हैं, जिनसे यह बात प्रकट हो कि समुदाय के कुछ सदस्यों का स्तर दूसरे सदस्यों की अपेक्षा ऊंचा था। इस बात की पुष्टि आधुनिक काल की अनेक जनजातियों के जीवन के अध्ययन से भी होती है। इस तरह लगता है कि नव पाषाण काल में भी सामाजिक विषमताएं नहीं उत्पन्न हुई थीं।

ऐसा लगता है कि खेती की जमीन सारे समुदाय की संपत्ति समझी जाती थी। समुदाय अलग-अलग परिवारों को जमीन के टुकड़े खेती करने के लिए दे देता था या सारा समुदाय सम्मिलित खेतों पर काम करता था। यह संभव है कि धीरे-धीरे अलग-अलग परिवार अलग-अलग भूमि खण्डों के स्वामी हो गए और जमीन सारे समुदाय की संपत्ति नहीं रही। जमीन की ही भांति मकान, बर्तन और आभूषण भी अलग-अलग परिवारों की संपत्ति रहे होंगे।

नव पाषाण कालीन लोगों के धार्मिक विश्वास

मृत व्यक्तियों को दफनाने के ढंग से नव पाषाण कालीन लोगों के धार्मिक विश्वासों के विषय में कुछ ज्ञात होता है। मृत व्यक्तियों को हथियार, मिट्टी के बर्तन तथा खाने-पीने की चीजों के साथ कब्रों में दफनाया जाता था। विश्वास किया जाता था कि मरने के बाद भी इन व्यक्तियों को इन वस्तुओं की ज़रूरत पड़ेगी। पुरा पाषाण काल की भी ऐसी कब्रें मिली हैं। संभवतः नव पाषाण काल में कब्रों का महत्व पहले की अपेक्षा कुछ अधिक हो गया। धरती से अब सारे समुदाय को भोजन मिलता था। उस काल के लोगों की धारणा थी कि जिन मृत पूर्वजों के शव जमीन के नीचे गड़े हैं, उनकी आत्माएं फसलों के बढ़ने में सहायता देती हैं।

इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि इन लोगों का कुल-चिन्हों (Totems) में विश्वास था। कोई जाति या साथ-साथ रहने वाले परिवारों का कोई समूह यदि किसी पशु या पौधे की आकृति को अपनी जाति या समूह का चिन्ह मान लेता है तो उस जाति या समूह का कुल-चिन्ह कहा जाता है। प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि पशुओं और मनुष्यों के पूर्वज एक ही थे और पशु भी मनुष्यों के मित्र या रिश्तेदार थे, क्योंकि वे उसे भोजन देते थे। जब मनुष्यों ने खेती करना आरंभ कर दिया तब भी उनका जीवन पूरी तरह सुरक्षित नहीं था। उन्हें हमेशा इस बात का डर लगा रहता था कि कोई महान विपत्ति फसलों, पालतू पशुओं या शिकार के पशुओं को नष्ट न कर दे। असुरक्षा की इन स्थितियों और प्रकृति की प्रक्रिया को समझने में मानव की असमर्थता के कारण इस धारणा का जन्म हुआ कि समुदाय का कल्याण किसी पशु विशेष के कल्याण के साथ बंधा हुआ है, या उसके ऊपर पूर्णतया निर्भर है। इस प्रकार की धारणाएं पेड़ों और पौधों के बारे में भी बन गईं। मनुष्यों ने अपने पूर्वजों और रक्षकों के प्रतीक कुछ पशुओं को अपने कुल-चिन्ह मान लिए।

प्रत्येक जनजाति का अपना कुल-चिन्ह होता था। वह अपने कुल-चिन्ह से मैत्रीपूर्ण व्यवहार करती थी, और इसके सदस्य अपने कुल-चिन्ह से कृपा बनाए रखने के लिए प्रार्थना करते थे। इस काल के मनुष्यों का विश्वास था कि सूर्य, चंद्रमा, तारे और प्रकृति की अन्य शक्तियां कुछ असाधारण सामर्थ्य रखती हैं। इसलिए उस काल का मानव उनकी पूजा करके उन्हें प्रसन्न करने की कोशिश करता था। कालक्रम से इस पूजा ने विस्तृत कर्मकाण्ड का रूप धारण कर लिया क्योंकि जादू और धार्मिक विश्वासों ने समुदाय के सदस्यों को एक दूसरे से बांध दिया। ये तथा अन्य धारणाएं मानव की इस भावना को व्यक्त करती थीं कि वह जिन वस्तुओं को समझने या जिनकी व्याख्या करने में असमर्थ था, उनके सामने वह पूर्णतया असहाय था।

संसार के अनेक भागों में कई नव पाषाण कालीन बस्तियों में मिट्टी की बनी स्त्रियों की छोटी मूर्तियां मिली हैं। जिन्हें 'मातृदेवी' कहा जाता है। जब मनुष्य जमीन पर खेती

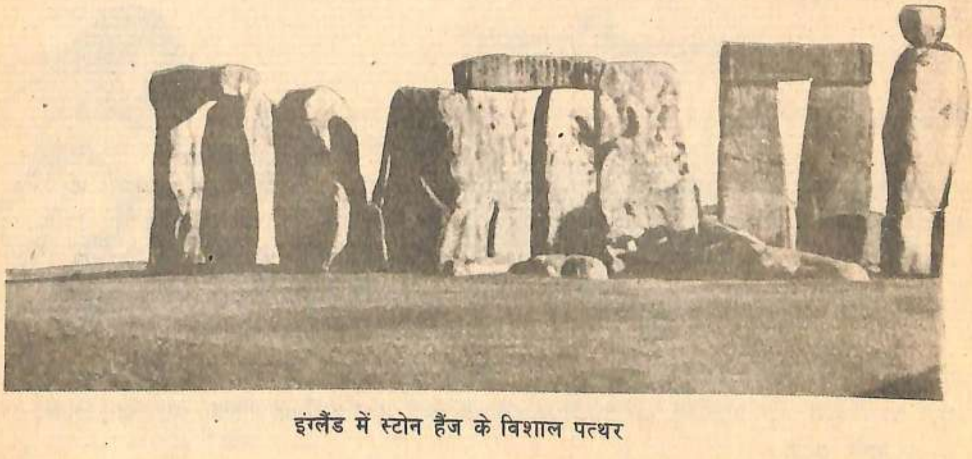

इंग्लैंड में स्टोन हैंज के विशाल पत्थर

करने लगा तब पृथ्वी 'माता' हो गई, और छोटी मूर्तियों की वह इस विश्वास से पूजा करने लगा कि ज़मीन की उर्वरता में वृद्धि होगी। पुरा पाषाण काल की गुफाओं की कला की तरह नव पाषाण कालीन संगीत और कला भी मानव की आशाओं और आशंकाओं से सम्बद्ध थी।

नव पाषाण युग के समुदायों की और बाद के कालों में कुछ समुदायों की कब्रगाहों में बड़े-बड़े पत्थर लगा दिए जाते थे। उन पत्थरों को '**महा-पाषाण**' (Megaliths) कहते हैं। ऐसी कुछ कब्रगाहें पश्चिमी यूरोप और दक्षिण भारत में मिली हैं। इनमें से कुछ अकेले खड़े बड़े-बड़े पत्थर प्रतीत होते हैं। अन्य महा-पाषाण कुछ ऊंचे पत्थरों या गोल पत्थरों पर रखे मेज के समान प्रतीत होते हैं। इन मेज़नुमा इमारतों के नीचे ऐसे कमरे हैं जिनमें शव रखे जाते थे। ये महा-पाषाण कुछ देशों में कर्क संक्रांति के समय जब सूर्य की उष्णता सबसे तीव्र होती है, सूर्य की पूजा करने के लिए देव मंदिर की तरह काम में लाए जाते थे। इंग्लैण्ड में इसी प्रकार की इमारत प्रसिद्ध स्टोनहैंज है। यहां बड़े पत्थरों को जोड़कर अर्धवृत बनाया गया था। इसके कुछ भाग के ऊपर अर्धवृत्ताकार डाट लगाकर एक द्वार बनाया गया था।

पहिए का आविष्कार

शायद इसी काल के आसपास मनुष्य ने पहिए का आविष्कार किया जिसके परिणामस्वरूप एक प्राविधिक (Technological) क्रांति हो गई। हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि पहिए के बिना हमारा काम चल सकता है। इस आविष्कार के उपयोगी बनने से पहले इसके विकास में अनेक चरण रहे होंगे। अंतिम परिणाम उन्नत बढ़ईगीरी का फल रहा होगा। यह धातुओं की खोज और प्रयोग द्वारा ही संभव हो पाया।

ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य ने सबसे पहले पहिए का प्रयोग मिट्टी के बर्तन बनाने में किया। कुम्हार के चाक ने मिट्टी के बर्तन बनाने की कला को एक शिल्प का रूप दे दिया। इसके बाद पहिए का प्रयोग शायद गाड़ी खींचने के लिए किया गया होगा क्योंकि मनुष्य बिना पहिए की स्लेज गाड़ियों का प्रयोग तो पहले से ही जानता था। पेड़ों के बड़े गोल तने भारी वस्तुओं को ले जाने के लिए धकेल कर काम में लाए जाते थे। पहिए वाली गाड़ी के द्वारा सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना बहुत सरल हो गया। जल्द ही ऐसी गाड़ी को खींचने के लिए **पशु** काम में लाये जाने लगे। कताई में पहिए का इस्तेमाल बहुत पहले से ही होने लगा था।

सुदूर अतीत से लेकर व्यवस्थित जीवन के विकास तक की मानव की कहानी प्रगति की कहानी है। प्रारम्भ में प्रगति की रफ्तार धीमी थी मगर नव पाषाण युग में यह अपेक्षाकृत तेज हो गई। पुरा पाषाण युग में मानव की मुख्य समस्या थी अपने को जीवित रखना। पशुओं की भांति मनुष्य का सारा समय और प्रयत्न इसी समस्या को हल करने में लग जाता था। किन्तु पशुओं के विपरीत मनुष्य

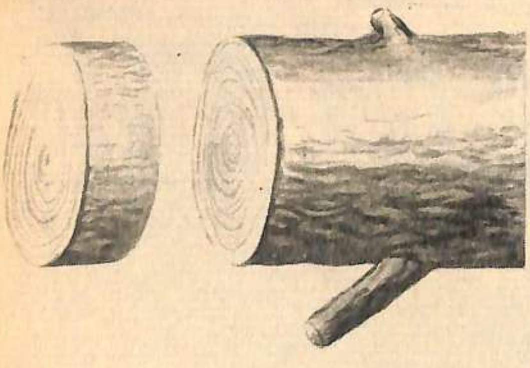

पहिए का विकास और उपयोग। (a) लकड़ी के कुंदे से काटा हुआ प्रारंभिक पहिया, (b) पहिए (चाक) पर मिट्टी के बर्तन बनाना

बातचीत कर सकता था और औजार बना सकता था। इस प्रकार उसने अपने पर्यावरण को नियंत्रित करने के अपने संघर्ष में पहले कदम उठाए।

नव पाषाण युग के आरंभ होने पर 8000 ई० पू० के लगभग मानव-प्रगति की रफ्तार तेज हो गई। मानव अन्न उत्पन्न करने लगा। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह प्रकृति को बदल सकता था। सभ्यता के विकास के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए अनेक आविष्कार हुए। मनुष्य अनाज उगाकर अपना भोजन उत्पन्न करने लगा। उसने पशुओं को पालतू बनाया, आंवा में पके मिट्टी के बर्तन बनाए, कपड़ा तैयार किया और चिकने पत्थर के औज़ार बनाने की तकनीक का विकास किया। इन सबसे महत्वपूर्ण चीज यह है कि उसने पहिए का आविष्कार किया। इन सबके परिणामस्वरूप वह एक संगठित समुदाय में व्यवस्थित जीवन बीताने लगा। सहकारी जीवन के कारण अब मनुष्य को अधिक अवकाश मिलने लगा और उसे अपना ज्ञान बढ़ाने का अधिक अवसर मिला।

नव पाषाण कालीन क्रांति का प्रारंभ पश्चिम और दक्षिण-पूर्व एशिया में हुआ। वहां से उसका पूर्व और पश्चिम के अन्य देशों में प्रसार हुआ। मेसोपोटामिया, मिस्र, भारत और चीन में सभ्यताओं के उदय का आधार भी नव पाषाण कालीन ग्रामीण समुदाय बना।

अभ्यास

जानने योग्य तथ्य

1. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बतलाओ :

   प्रागैतिहासिक काल, कार्बन-14 की तिथि निर्धारण विधि, पुरा पाषाण काल, मध्य पाषाण काल, नव पाषाण काल, भूवैज्ञानिक युग, होमिनिड्, लघु अश्म, कुल-चिन्ह (टोटम), महा पाषाण, होमो सेपियंस, मानव-विकास, संस्कृति।
2. पुरातत्वविद्, मानव विज्ञान वेत्ता, भूवैज्ञानिक, जीवशास्त्री के क्या कार्य है? इन वैज्ञानिकों में से प्रत्येक इतिहासकार को मानव-प्रगति की रफ्तार के बारे में तथ्य इकट्ठा करने में किस प्रकार सहायता देता है?
3. मनुष्य की उन विशेषताओं को बतलाओ जो उसे अन्य पशुओं से अलग करती हैं?
4. पाषाण युग के मानव के आविष्कारों और खोजों का संक्षेप में वर्णन करो।
5. मानव के औजारों और उत्पादनों की दृष्टि से पाषाण युग के पुरा पाषाण काल तथा नव पाषाण काल के बीच क्या अंतर हैं?

करने के लिए कार्य

1. अपनी कक्षा के कमरे की दीवार पर समय-सूचक रेखा बनाने के लिए उपयुक्त पैमाना निर्धारित करो और इस रेखा पर निम्नलिखित घटनाओं का समय दिखलाओ:

   पृथ्वी का प्रारंभ, पृथ्वी पर जीवन का आरंभ, स्तनपायी पशुओं का प्रारंभ, मानव का उदय, लिखित इतिहास का प्रारंभ, अग्नि का आविष्कार, व्यवस्थित जीवन का प्रारंभ। पूर्ण की हुई समय-सूचक रेखा को आधार मानकर मानव-प्रगति का विवेचन करो।
2. यूरोप तथा एशिया के सम्मिलित मानचित्र में उन स्थानों को दिखलाओ जहां पाषाण युग की सभ्यताओं के अवशेष मिले हैं और जिनका इस अध्याय में वर्णन किया गया है।
3. किसी संग्रहालय में जाकर उन सामग्रियों (जैसे औजार, बर्तन, रेखाचित्र) का अध्ययन करो जिनसे पाषाण युगीन संस्कृति को समझने में सहायता मिलती है। जिन वस्तुओं को देखो, उनकी सूची तैयार करो और प्रत्येक के विषय में एक या दो वाक्य लिखो।

4. निम्नलिखित क्षेत्रों में मनुष्य के संभावित विकास की अवस्थाएं दिखलाने के लिए रेखाचित्र बनाओ : (i) औजारों में सुधार (ii) पहिए का विकास।

सोचने और विचार-विमर्श के लिए

1. आदि मानव के जीवन में परिवर्तनों के कारणों का अध्ययन करके हम अपने वर्तमान जीवन के परिवर्तनों के विषय में क्या सीख सकते हैं?
2. क्या तुम्हारे विचार से प्रागैतिहासिक काल की अपेक्षा अब मनुष्य के जीवन में परिवर्तन अधिक तेज गति से हो रहा है? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए तर्क दो।
3. आहार-संग्रह से अन्नोत्पादन तक और शिकार करने से पशुपालन की अवस्था तक जो परिवर्तन हुए, उनका मानव-प्रगति में इतना महत्व क्यों हैं?
4. मनुष्य के वर्तमान दैनिक जीवन में से यदि हम अग्नि और पहिए का प्रयोग निकाल दें तो उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
5. क्या आजकल संसार के किसी भी भाग में मनुष्य के लिए ठीक उसी प्रकार जीवन बिताना संभव है जिस प्रकार पाषाण युग का मानव रहता था? यदि हां तो क्यों, यदि नहीं तो क्यों नहीं?

अध्याय 2

कांस्य युग की सभ्यताएं

मनुष्य ने नव पाषाण युग के दौरान खेतीबाड़ी आरंभ की। वह अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पहले की अपेक्षा अधिक कुशल औजार बनाने लगा। वह कमोबेश व्यवस्थित जीवन बिताने लगा। इस तरह उसने नव पाषाण युग के दौरान प्रगति-पथ पर एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाया। पिछले हजारों वर्षों के संचित ज्ञान और कौशल तथा अनेक नए आविष्कारों के कारण 4000 ई० पू० के लगभग मानव प्रगति के एक नए चरण, सभ्यता के चरण में प्रवेश करने में समर्थ हो गया। सभ्यता के चरण में प्रवेश करने वाले समाज की महत्वपूर्ण विशेषता होती है नगरों का उदय। नगरों के उदय के साथ ही जीवन के हर पहलू में कई दूरगामी परिवर्तन होते हैं जिनके कारण इस घटना को मानव इतिहास में क्रांति—**'शहरी क्रांति** का नाम दिया जाता है। प्रारंभिक सभ्यताओं का उदय 4000 ई०पू० के आसपास यानी आज से 6000 वर्ष पहले दुनिया के कुछ भागों में होने लगा था। पुरातत्वविदों ने पिछले 200 वर्षों के दौरान अपने कार्यों से इन प्रारंभिक सभ्यताओं के दिलचस्प विवरण दिए हैं।

यह ध्यान देने की बात है कि अनेक प्रारंभिक सभ्यताओं का उदय कतिपय नदी घाटियों में हुआ। ऐसा इसलिए हुआ कि इन क्षेत्रों में स्थितियां सभ्यता के विकास के अनुकूल थीं। इन क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में उपजाऊ जमीन थी जिस पर आसानी से खेती की जा सकती थी। खेतीबाड़ी के लिए आवश्यक पानी वहां विपुल मात्रा में उपलब्ध था। बाढ़ों के कारण हर साल जमीन की उर्वरता बढ़ जाती थी। किसान अपने निर्वाह की आवश्यकता से अधिक खाद्य सामग्रियां उत्पन्न कर पाता था। लोगों को पानी के समुचित उपयोग के लिए एक साथ मिलकर काम करना पड़ता था। बाढ़ के पानी की निकासी, बांधों का निर्माण और नहरें बनाना—ऐसे कार्य थे जिनके लिए सहकारिता और उन्नत संगठन की जरूरत थी।

कालक्रम से मनुष्य ने नदी का एक अन्य इस्तेमाल ढूंढ निकाला। नदी 'प्रकृति की सड़क' है। मनुष्य ने नाव बनाना तथा नाव के द्वारा अपने को तथा बोझ को नदी के रास्ते ले जाना सीखा।

व्यवस्थित जीवन का मतलब था कि घर-द्वार तथा चूल्हे-चौकी को घुमंतू हमलावरों से बचाया जाए। अब लोगों को अपनी सारी शक्तियां भोजन उत्पन्न करने में नहीं लगानी पड़ती थीं। कुछ लोगों ने अपने को गणित, इंजिनियरिंग, धातु विज्ञान तथा ज्ञान की अन्य शाखाओं के व्यवस्थित अध्ययन और विकास में लगाया। मनुष्य द्वारा कच्चे मालों को ढूंढने और अन्य लोगों के साथ वस्तुओं के विनिमय के लिए संपर्क में आने पर व्यापार विकसित हुआ। अवकाश मिलने से वास्तुकला और मूर्तिकला, संगीत और नृत्य विकसित हुए।

धातुओं का प्रयोग—तांबा और कांसा

धातुओं की खोज और प्रयोग का मानव जाति के इतिहास में काफी महत्व है। उनके कारण ही सभ्यता की ओर संक्रमण आरंभ हुआ। धातुओं से मनुष्य को एक ऐसी सामग्री मिल गई जो पत्थर से अधिक टिकाऊ थी और जिसका इस्तेमाल विविध प्रकार के औजारों, उपकरणों और हथियारों को बनाने के लिए किया जा सकता था और इस प्रकार बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती थी। सर्वप्रथम जिस

धातु को ढूंढ़ निकाला गया और जिसका इस्तेमाल औजार बनाने के लिए किया गया वह तांबा थी। काफी अरसे से संसार के कुछ भागों में तांबे के औजारों का इस्तेमाल पत्थर के औजारों के साथ-साथ होता रहा। जिस काल में मनुष्य ने पत्थर तथा तांबे के औजारों का साथ-साथ इस्तेमाल किया उसे ताम्र पाषाणिक काल (Chalcolithic Age) कहते हैं। ताम्र पाषाणिक (Chalcolithic) शब्द ताम्र (Chalco) और पाषाण (litho) शब्दों के योग से बना है।

प्रारंभिक चरणों में मनुष्य को ताम्र अयस्कों के बारे में पता नहीं था जिन्हें खानों से निकाला जाता है। वह केवल प्राकृतिक तांबे का इस्तेमाल करता था जिसे नदियों के तटों से जमा किया जाता था। विश्वास है कि सबसे पहले तांबे का इस्तेमाल लगभग 5000 ई०पू० में हुआ। बाद में मनुष्य ने खानों से अयस्क तांबा बनाना सीखा। इस प्रकार तांबे का इस्तेमाल लगभग 4500 ई०पू० में दक्षिण इराक के सुमेर में आरंभ हुआ। कुछ क्षेत्रों में जहां पहली सभ्यताओं का विकास हुआ, तांबा नहीं था। उन क्षेत्रों के लोगों को दूर देशों में तांबा लाने के लिए जाना पड़ता था। इसके परिणामस्वरूप व्यापार का विकास हुआ जिससे विभिन्न देशों के लोग नजदीक आए।

कालक्रम से लोगों ने तांबे के साथ टीन या जस्ते को मिलाकर कांसा नामक मिश्रित धातु बनाना आरंभ कर दिया। कांसा तांबे से अधिक उपयोगी साबित हुआ। वह तांबे से अधिक सख्त होता है इसलिए मजबूत औजारों, हथियारों तथा उपकरणों को बनाने के लिए अधिक उपयोगी होता है। कांसे के औजारों और हथौड़े के इस्तेमाल से बढ़ईगिरी की उन्नति में सहायता मिली तथा परिणामस्वरूप पहिए का आविष्कार हुआ। प्रथम सभ्यताओं के विकास में कांसे के महत्व के कारण प्रथम सभ्यताओं के काल को कांस्य युग (Bronze Age) भी कहा जाता है तथा इन सभ्यताओं को कांस्य-युगीन सभ्यताएं कहते हैं।

धातुओं की खोज ने पाषाण उपकरणों के बड़े पैमाने पर इस्तेमाल को अंततोगत्वा समाप्त कर दिया यद्यपि पत्थर और धातु दोनों से बने औजारों को काफी अरसे तक इस्तेमाल में पाते हैं। धातुओं के इस्तेमाल से मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विविध प्रकार के औजार गढ़ने में समर्थ हो सका। धातु के औजार से शिल्पकारिता उन्नत हुई जिसके परिणामस्वरूप नए औजारों और नए शिल्पों का विकास हुआ।

धीरे-धीरे धातु विज्ञान यानी अयस्क निकालने और औजारों को बनाने के लिए धातु तैयार करने की व्यवस्थित विधि उन्नत हुई। धातुओं के इस्तेमाल के लिए विशेष कौशल और ज्ञान की जरूरत हुई। तुरंत ही समाज में धातु कार्य में विशेषज्ञता रखने वाले कर्मियों का उदय हुआ।

प्रारंभिक सभ्यताओं की समान विशेषताएं

करीब 2500 ई०पू० के आस-पास भूमध्य सागर और एजियन सागर के इर्द-गिर्द के इलाके, सिंधु घाटी, चीन में ह्वाङ्-हो घाटी, इराक (मैसोपोटामिया) में दजला और फरात की घाटी और मिस्र में नील नदी घाटी सभ्यता के केन्द्र के रूप में सामने आई। इनमें से चार सभ्यताओं का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। मानचित्र में इन सभ्यताओं के क्षेत्रों को ढूंढो। इन सभ्यताओं की कुछ समान विशेषताएं थीं यद्यपि इनमें से हरेक का अपना एक विशिष्ट चरित्र था और उसका मानव-प्रगति में अपना विशेष योगदान रहा।

प्रत्येक सभ्यता ने एक संगठित राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था, वाणिज्य और व्यवसाय, जटिल धार्मिक धारणाएं, लेखन पद्धतियां, कला और विज्ञान तथा गणित का विकास किया। इस अध्याय में तुम प्रत्येक सभ्यता के कुछ इन पहलुओं और उनके विशिष्ट लक्षणों के बारे में पढ़ोगे।

कृषि में सुधार : हर सभ्यता में किसानों को अपनी जरूरत से ज्यादा अनाज उत्पन्न करना होता है। यह नव पाषाण काल में संभव नहीं था। उस समय खेत छोटे होते थे और कुदाल से खेती की जाती थी। हल तथा सिंचाई का इस्तेमाल आरंभ करने के बाद ही बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो सका। लकड़ी का हल इस्तेमाल करने से पहले की अपेक्षा काफी अधिक जमीन में खेती की जा सकी। आरंभ में हल को आदमी खींचता था मगर बाद में उसे पशु खींचने लगा।

सिंचाई की आवश्यकताओं के कारण भी सभ्यता के विकास में मदद मिली। नदियों के किनारे की जमीन से जंगल काट कर खेती के लायक बनाया गया। दलदलों का पानी निकालने के लिए नालियां खोदी गईं। बाढ़ों से बस्तियों को बचाने के लिए बांध बनाए गए। खेतों को नियमित रूप से जरूरत के मुताबिक पानी मिलता रहे, इसलिए बहुत सी नहरें बनाई गईं। इन सब कार्यों के लिए बड़े पैमाने पर सहकारी प्रयत्न की आवश्यकता हुई। एक

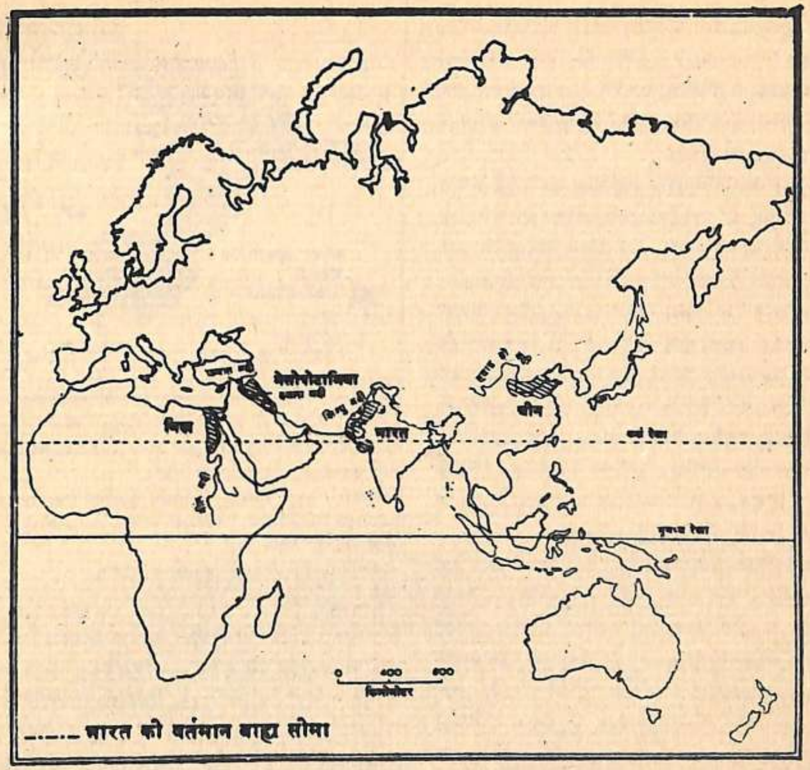

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

कांस्य युगीन सभ्यताएं

छोटा गांव ऐसा नहीं कर सकता था। इन सारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत से समुदायों ने साथ मिलकर एक ऐसी शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का आधिपत्य स्वीकार किया जो सबसे अपना आधिपत्य स्वीकार करा सकती थी। इस प्रकार सिंचाई की आवश्यकता ने बहुत से लोगों को मिल कर नगर में स्थित एक केन्द्रीय सत्ता अथवा सरकार का आधिपत्य स्वीकार करने में सहायता की। जब अन्न का उत्पादन अधिक होने लगा तब बहुत से मनुष्य अपनी आवश्यकता के लिए अन्न-उत्पादन के कार्य से मुक्त हो गए। ये लोग शहरों में जाकर रहने लगे और विभिन्न शिल्पों में कुशल हो गए।

नगर, व्यापार और शासन का उदय

जब नगरों का उदय होता है तब कई दूरगामी परिवर्तन होते हैं। नगर का जीवन गांव के जीवन से बहुत भिन्न होता है। आधुनिक नगरों के निवासियों की तरह ही प्राचीन नगरों के निवासी अपने लिए अनाज का उत्पादन नहीं कर पाते थे। सारा भोजन गांवों में रहने वाले लोग उत्पन्न करते थे। उनके उत्पादन का एक हिस्सा शहरों में लाया जाता था। इसलिए गांव के किसानों को अपनी जरूरत से अधिक भोजन का उत्पादन करना पड़ता था। इस तरह व्यापार विकसित हुआ। लोग दूसरों द्वारा बनायी वस्तुओं की मांग करने लगे जिनके बदले उन्हें कुछ न कुछ देना

पड़ता था। लगता है कि प्रारंभिक काल में वस्तुओं का विनिमय होता था। सभ्यता की उन्नति के साथ ही इन लेन-देनों में किसी न किसी प्रकार की मुद्रा का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार शहरी जीवन के परिणामस्वरूप व्यवहार और मुद्रा का विकास हुआ।

अन्य घटनाएं भी हुईं। चूंकि शहरों के लोगों को अपना भोजन नहीं उत्पन्न करना पड़ता था इसलिए वे दूसरे काम करने के लिए स्वतंत्र थे। धीरे-धीरे जन समूहों ने विभिन्न व्यवसाय अपनाए और कुछ शिल्पों में दक्षता प्राप्त की। जल्द ही दस्तकारों और व्यापारियों, सैनिकों और अफसरों का उदय हुआ जो अपना पूरा ध्यान एक ही व्यवसाय की ओर लगाने लगे। ऐसा करके उन्होंने नए कौशल और नए औजार विकसित किए। साथ ही उन्होंने कुछ को दूसरों की अपेक्षा अच्छी तरह इस्तेमाल करना सीखा। दूसरे शब्दों में, यही विशेषीकरण या श्रम विभाजन का प्रारंभ था। प्रविधि के कारण श्रम विभाजन का जन्म हुआ और श्रम विभाजन ने प्रविधि की प्रगति को प्रोत्साहित किया।

जब शहरों के लोग भिन्न-भिन्न व्यवसायों में लगे तब उनके हित समान नहीं थे। दूसरे शब्दों में, नगर का जीवन जटिल हो गया। सार्वजनिक जीवन के नियमन के लिए एक संगठन का जन्म हुआ। इस संस्था या संगठन की जिम्मेदारी के अन्तर्गत व्यवस्था बनाए रखना, कानून बनाना तथा नगर के मामलों की देख-रेख करना आ गए। उसे यह जिम्मेदारी पूरी करने के लिए जन समूह की आवश्यकता हुई। कालक्रम से समाज में शासकों और राजाओं का उदय हुआ, और जिसे हम आज सरकार कहते हैं उसका आदिम रूप में उदय हुआ।

सरकार जैसे अत्यंत विकसित संगठन को कानून बनाना, हिसाब रखना, झगड़ों के फैसले करना और जनता के साथ संपर्क रखना आदि बहुत से महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए किसी न किसी प्रकार की लिपि का विकास करना पड़ता है। इस अध्याय में जिन चार सभ्यताओं का वर्णन किया गया है, उनकी कोई न कोई लिपि थी। लिपि से ही ऐतिहासिक काल का प्रारंभ होता है।

हड़प्पा संस्कृति

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रथम सभ्यता उत्तर-पश्चिम क्षेत्रों में विकसित हुई। इस सभ्यता के एक प्रमुख स्थल के नाम पर ही इस संस्कृति को हड़प्पा संस्कृति के नाम से जाना

© Government of India Copyright, 1984
Based upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India.
The terrirorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

हड़प्पा की संस्कृति

जाता है। इस को सिन्धु घाटी सभ्यता के नाम से भी पुकारा जाता था क्योंकि इस सभ्यता के जिन कुछ महत्वपूर्ण स्थलों की पहले खुदाई हुई वे सिंधु नदी की घाटी में स्थित हैं।

कांस्य युग की सभ्यताओं में हड़प्पा-संस्कृति सबसे पुरानी नहीं है। इसको यहाँ प्रथम इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि यह भारत की प्रथम ज्ञात सभ्यता है। लगता है कि वह 2500 ई० पू० के लगभग विकसित हुई थी और किसी भी अन्य तत्कालीन सभ्यता की अपेक्षा उसका विस्तार अधिक बड़े क्षेत्र में था। मानचित्र इसकी लगभग सही सीमाओं को दिखलाता है। इस सभ्यता के चिन्ह ब्लूचिस्तान, सिंध, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मिले हैं।

इस सभ्यता के अस्तित्व के बारे में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में पता लगा। इस खोज ने तुरन्त भारत के इतिहास के आरंभ को कम से कम एक हजार वर्ष पीछे कर दिया। सबसे पहले इस सभ्यता के दो प्रमुख स्थल पंजाब में हड़प्पा और सिन्ध में मोहनजोदड़ो में मिले। ये दोनों स्थल अब पाकिस्तान में हैं। ऐसे अनेक स्थलों का पता चला है, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण हैं– पंजाब में रोपड़, राजस्थान में कालीबंगा, गुजरात में लोथल तथा हरियाणा में बनावली।

इस संस्कृति का विकास किस प्रकार हुआ इस संबंध में

विद्वान् एकमत नहीं हैं। प्रमाणों से ज्ञात होता है कि कुछ क्षेत्रों जैसे ब्लूचिस्तान और राजस्थान में प्रारंभिक कृषि प्रधान समुदाय रहते थे। इन्हीं समुदायों से ही यह सभ्यता विकसित हुई होगी। कतिपय विद्वानों का मत है कि कुछ अन्य सभ्यता जैसे मैसोपोटामिया इत्यादि के प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही इसका विकास हुआ।

हड़प्पा संस्कृति के नगर

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नगर सुव्यवस्थित योजना के अनुसार बनाए गए थे और यहां की आबादी काफी सघन थी। उनकी सड़कें सीधी और चौड़ी थीं जो एक दूसरी को समकोण बनाती हुई काटती थीं। मोहनजोदड़ो की मुख्य सड़क 10 मीटर चौड़ी तथा 400 मीटर लंबी थी। वहां के मकान सड़कों के किनारे बने हुए थे और उनके बनाने में पक्की ईंटें लगाई गई थीं। कुछ मकानों में एक से अधिक मंजिलें थीं। प्रत्येक मकान में कुआं और स्नानागार थे। मोहनजोदड़ो में जल-निकासी की व्यवस्था शानदार थी। घरों की नालियों के द्वारा सारा गंदा पानी एक बड़ी नाली में जाकर गिरता था।

मोहनजोदड़ो में एक बड़ा तालाब मिला है। तालाब के चारों ओर छोटे-छोटे कमरे बने हुए थे। पानी तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां बनी थीं। इसे अभी विशाल स्नानागार कहते हैं। हड़प्पा में एक गढ़ मिला है। यह एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित था और इसमें कई ऐसी इमारतें थीं जो अब देखने में सार्वजनिक मालूम होती हैं। अधिकतर शहरों में अन्न के बड़े गोदाम थे। संभवतः देहात से लाया गया अनाज इनमें इकट्ठा किया जाता था। लोथल में एक इमारत मिली है जो कुछ पुरातत्वविदों के अनुसार एक बंदरगाह थी। यह इस

मोहनजोदड़ो के मकानों के अवशेष

मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार

बात की ओर संकेत करता है कि लोथल एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र रहा होगा जहां विदेशी नावें भी आती होंगी।

लोगों का जीवन

हड़प्पा संस्कृति के लोगों के व्यवसायों के विषय में हमें ठीक-ठीक कुछ भी पता नहीं है। अधिकतर जनता खेती करती थी और वह शहर के परकोटों के बाहर रहती थी। वे लोग गेहूं, जौ और मटर की खेती करते थे। कपास की भी खेती की जाती थी और साधारणतया जनता उससे बने कपड़े पहनती थी। भोजन के लिए संभवतः मछलियां भी पकड़ी जाती थीं। कुब्ज और बिना कुब्ज वाले ढोर बकरियां और भैंसे और शायद हाथी भी पाले जाते थे। किंतु ऐसा लगता है कि वहां के निवासी घोड़े का प्रयोग कुछ खास नहीं करते थे।

हड़प्पा में मिले मिट्टी के बर्तन चाक पर बने हुए थे। यह इस बात का द्योतक है कि यह संस्कृति पूर्णतया विकसित थी। मिट्टी के बर्तन के कुछ अच्छे नमूने मिले हैं। इनसे हड़प्पा के कुम्हारों की उच्च कोटि की कलात्मक उपलब्धियां प्रकट होती हैं। रूप और आकार की दृष्टि से

राजस्थान में कालीबंगा के मकानों के अवशेषों का दृश्य

इन बर्तनों की विविधता आश्चर्यजनक है।

हड़प्पा संस्कृति के कई स्थलों पर मिट्टी के अनेक प्रकार के खिलौने मिले हैं। इनमें गाड़ियां मिली हैं जिनमें पहिए लगे हुए हैं और जानवर जुते हुए हैं। बहुत सी चिड़ियां हैं जिनकी टांगें डंडे जैसी लंबी हैं। कुछ मनुष्यों की मूर्तियां ऐसी हैं जिनकी भुजाएं घूम सकती हैं। मिट्टी के कुछ ऐसे सांड मिले हैं जो सिर हिला सकते हैं।

लोग औजारों और बर्तनों के लिए धातुओं का प्रयोग करते थे। विविध रूपों और आकारों के मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल करते थे जिन्हें कुम्हार के चाक पर बनाया जाता था। मोहनजोदड़ो में नर्तकी की कांसे की बनी जो मूर्ति मिली है वह उनके कुशल कारीगर होने का आश्चर्यजनक उदाहरण है। पुरातत्वविदों को ऐसी सैंकड़ों मुहरें मिली हैं जिन पर सांड, गैंडा, चीता और हाथियों की सुंदर आकृतियां खुदी हैं।

हड़प्पा-सस्कृति की विभिन्न वस्तुएं जैसे माला के दाने, एक पिन पर बना स्वर्णिम बंदर और मुहरें मैसोपोटामिया में मिली हैं। ये चीजें सिंधु घाटी की सभ्यता तथा मैसोपोटामिया के बीच सीधे व्यापार की ओर संकेत करती हैं। कौन-सी वस्तुओं का व्यापार होता था या यातायात की ठीक-ठीक क्या व्यवस्था थी यह बतलाने के लिए हमारे पास कोई लिखित प्रमाण नहीं है। स्थल मार्ग की कठिनाइयों से बचने के लिए व्यापार समुद्र के रास्ते होता था। सिंधु घाटी और मैसोपोटामिया के बीच डिलमन, जिसे आजकल बहरीन कहते हैं, वस्तुओं के विनिमय का एक बड़ा केन्द्र था। हमारा अनुमान है कि हड़प्पा के व्यापारी मिट्टी के बर्तन, अनाज, सूती कपड़े, मसाले, पत्थर के बने माला के दाने, मोती और सुर्मा भारत से ले जाते थे और धातु के सामान वहां से भारत ले आते थे। हम कल्पना कर सकते हैं कि ऐसी नावें जो हड़प्पा की मुहरों पर दिखलाई गई हैं अरब सागर के किनारे-किनारे फारस की खाड़ी से होकर जाती थीं।

यह स्पष्ट है कि सिंधु घाटी के लोगों के यहां एक कुशल सरकार थी मगर वर्तमान जानकारी के आधार पर हम उसके बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कह सकते। वहां कोई बड़े महल नहीं मिले हैं इसलिए कुछ विद्वानों का मत है कि इन नगरों में राजा शासन नहीं चलाते थे बल्कि कुछ महत्वपूर्ण नागरिकों का समूह शासन चलाता था। इन लोगों के धर्म के बारे में भी कोई विशेष जानकारी नहीं है। बहुत सी मुहरों पर कुब्ज वाले सांड की आकृति बनी हुई

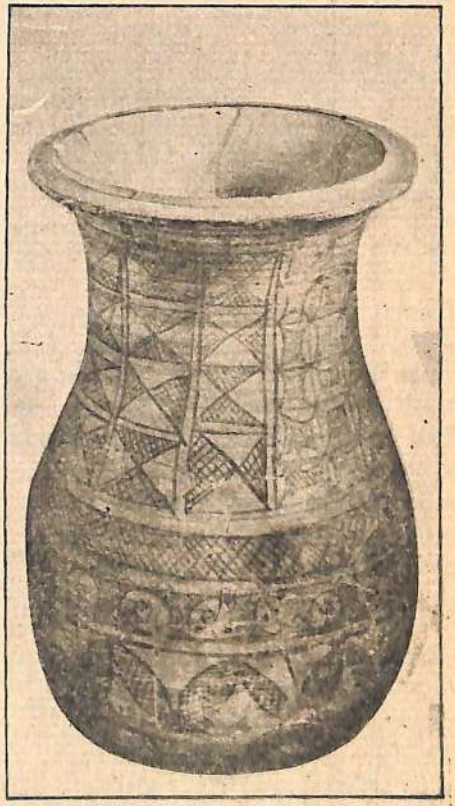

हड़प्पा संस्कृति का मृदभाण्ड

है। संभवतः वे लोग इसे पवित्र समझते थे। कुछ मुहरों पर एक देवता की आकृति बनी है। इसे हिंदू देवता शिव का प्रारंभिक रूप समझा गया है। देवी की छोटी आकृतियां मिली हैं। मोहनजोदड़ों का विशाल स्नानागार शायद धार्मिक स्नान का स्थान रहा हो। शवों को आग में जलाया और जमीन में दफनाया भी जाता था।

हड़प्पा में जो मुहरें मिली हैं वे वहां की संस्कृति के विशिष्ट उत्पादन हैं। उनमें से कुछ चिकनी मिट्टी की चौकोर टिकिया हैं। वे एक ओर उभरी हुई हैं और दूसरी

हड़प्पा संस्कृति की मुहरें

ओर उन पर खुदाई की गई है। काटने के बाद उनको चिकना किया जाता था। उन पर सांड, गैंडा, चीता, हाथी और मगर जैसे जानवरों की आकृतियां बड़ी स्पष्ट और सुंदर बनी हुई हैं। कुछ मुहरों पर अभिलेख भी हैं जिन्हें अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। जानवरों की आकृतियों के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंगों को जिस कौशल से उनमें ढाल कर दिखलाया गया है, उससे कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। ये मुहरें किस काम में लाई जाती थीं, इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता।

हड़प्पा संस्कृति का अंत

लगभग 1500 ई०पू० में हड़प्पा की संस्कृति का अंत हो गया। यह क्यों और कैसे हुआ यह मालूम नहीं है। हड़प्पा की संस्कृति के विनाश के लिए जिम्मेदार ठहराए गए कारणों में बाढ़, संस्कृति का क्रमिक पतन तथा एक नए जनगण—आर्यों—का आगमन है। विद्वानों के बीच इस प्रश्न पर कोई सहमति नहीं है।

हड़प्पा संस्कृति बड़ी ही भव्य रही होगी। आर्यों के आगमन के पश्चात् ये भरे-पूरे नगर सुनसान हो गए और टीले मात्र रह गए, जिनको लगभग 3500 वर्ष बाद खोदा गया। लगभग 1000 वर्ष तक भारत में इतने भव्य नगर नहीं देखे जा सके। भारत के निवासी सुव्यवस्थित योजना के अनुसार शहर बनाना, लगता है कि भूल ही गए। किन्तु हड़प्पा के निवासियों के धार्मिक विश्वासों और रीति रिवाजों के कुछ पहलू हमारे समाज में बाद में भी बने रहे। शिव और मातृदेवी की पूजा और धार्मिक स्नान का कृत्य हड़प्पा की संस्कृति की परंपराओं के बने रहने के प्रमाण हैं।

भारत के बहुत से भागों में, उत्तर पाषाण कालीन दौर ताम्र-पाषाण युग के उदय के पश्चात् आया। इन संस्कृतियों के बहुत से स्थल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं पूर्वी भारत में पाए गए हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश संस्कृतियां हड़प्पा की संस्कृति के बाद की हैं फिर भी हड़प्पा संस्कृति की अपेक्षा ये संस्कृतियां बहुत कम विकसित थीं। इन संस्कृतियों में न तो नगर थे और न ही लिपि-प्रणालियां। लोहे के प्रयोग ने, जिसका आरम्भ भारत में लगभग 1000 ई० पू० हुआ, भारतीय लोगों के जीवन में बहुत परिवर्तन किए तथा इससे भारतीय सभ्यता के विकास में सहायता मिली।

मैसोपोटामिया की सभ्यता

यद्यपि हड़प्पा-संस्कृति हमारे घर के नजदीक है तथापि मैसोपोटामिया की सभ्यता पुरानी है। जीवन के अनके क्षेत्रों में मैसोपोटामिया (आधुनिक इराक) ने मार्ग दर्शन दिया तथा अन्य सभ्यताओं ने उसका अनुकरण किया।

मैसोपोटामिया का अर्थ है नदियों के बीच की भूमि। इस भूमि को दजला और फरात नदियां सींचती हैं। प्राचीन काल में इसके बिल्कुल दक्षिणी भाग को सुमेर कहा जाता था। सुमेर के उत्तर-पूर्वी ओर के भाग को बाबुल (बेबीलोन) और अक्कद कहा जाता था। उत्तर की उच्च भूमि का नाम असीरिया था।

मैसोपोटामिया के निवासियों ने ऐसे तौर-तरीके निकाले जिससे वर्ष भर सिंचाई के लिए पानी मिलता रहे और बाढ़ों पर नियंत्रण रखा जा सके। नदी की तलहटी ऊंची थी। उन्होंने बहुत चौड़ी नहरें बनवाईं। इनमें से कुछ नहरें 25 मीटर तक चौड़ी थीं। इसका यह लाभ था कि जब नदी का पानी तेजी से नहरों में जाता था तब उनके किनारे नहीं टूटते थे। नहरों में नावें भी चलाई जा सकती थीं जिससे परिवहन और सिंचाई, दोनों में सहायता मिली।

मैसोपोटामिया के राज्यों का उत्थान और पतन

3000 ई० पू० के लगभग सुमेर सभ्यता उन्नति के उच्च शिखर पर पहुंच चुकी थी। लगता है कि इस क्षेत्र में जो शहर थे वे प्रारंभ में सिंचाई योजनाओं के नियंत्रण के केन्द्र थे। वे जल्द ही वाणिज्य और उद्योग के केन्द्र बन गए। इनमें सबसे प्रसिद्ध नगर एरेक, एरिडु, लगाश और उर थे। इनमें से हरेक किसी न किसी छोटे राज्य की राजधानी था परन्तु उन सबकी संस्कृतियों का ढांचा एक-सा था। उनके

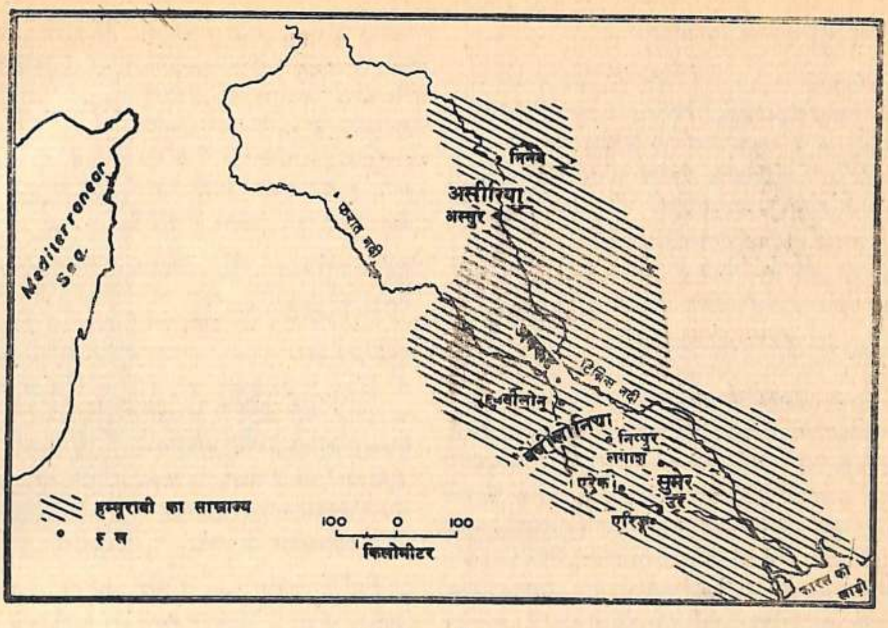

मैसोपोटामिया की सभ्यता

बीच हमेशा लड़ाई चलती रहती थी। 2600 ई० पू० के लगभग उर के राजा अधिक शक्तिशाली हो गए और उनका प्रभाव दूसरे क्षेत्रों में भी फैल गया।

अक्कद राज्य के निवासियों ने सुमेर के निवासियों के बहुत से रीति-रिवाजों को और उनकी संस्कृति को बहुत कुछ अपना लिया था। 2500 ई० पू० के लगभग एक शक्तिशाली राजा ने सुमेर और अक्कद दोनों राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना लिया और उसने अगादे को इस राज्य की राजधानी बनाया। किन्तु लगभग सौ वर्षों के अंदर ही आक्रमणकारियों ने इस राज्य को नष्ट कर दिया। मैसोपोटामिया के इतिहास की दूसरी प्रमुख घटना है बाबुल में एक नए राजवंश का शासन। बाबुल के सबसे बड़े शासक हम्मुराबी ने वर्तमान इराक को एक राज्य के रूप में सूत्रबद्ध कर दिया। 1600 ई० पू० तक यह राज्य भी नष्ट हो गया। इस बार हिटाइट्स नाम के आक्रमणकारियों ने हमला किया। ये आक्रमणकारी एशिया माइनर (जिसे अब तुर्की कहते हैं) से आए। हिटाइट्स लोगों ने पहली बार युद्ध के रथों में घोड़े जोते और लोहे के हथियारों का प्रयोग किया।

मैसोपोटामिया के शहर

उर मैसोपोटामिया के सबसे बड़े शहरों में से था। वहां के उत्खनन से इस नगर का संपूर्ण चित्र हमारे सामने आ गया है। यह तीन मुख्य भागों में बंटा था। 'पवित्र क्षेत्र', टीले के चारों ओर दीवारों से सुरक्षित नगर, तथा दीवारों के बाहर स्थित नगर। प्रत्येक नगर का अपना संरक्षक देवता था। उर नगर का देवता चंद्रमा था जिसे 'नन्नार' कहते थे। देव मंदिर को 'ज़िगुरात' कहते थे जिसका अर्थ है 'स्वर्ग की पहाड़ी'। इसका निर्माण 'पवित्र क्षेत्र' में एक कृत्रिम पहाड़ी पर ईंटों से हुआ था। उर के जिगुरत में तीन मंजिलें थीं और वह 20 मीटर से अधिक ऊंचा था। 'पवित्र क्षेत्र' एक प्रशासनिक केन्द्र भी था। वहां अनेक कार्यालय और भंडारगृह मिले हैं। जिगुरात को मीलों दूर से देखा जा सकता था और शहर के अंदर या इर्द-गिर्द रहने वाले सभी नागरिक ऐसा अनुभव करते थे कि ऊपर जो पहाड़ी है, उस पर देवता का वास है। दीवारों से सुरक्षित नगर में तथा उसके बाहर भी नगरवासियों के रहने के लिए मकान बने हुए थे।

मैसोपोटामिया के सामाजिक वर्ग

मैसोपोटामिया में राजा को पृथ्वी पर देवों का प्रतिनिधि समझा जाता था। महत्व की दृष्टि से समाज में दूसरा स्थान पुरोहितों का था। आम धारणा है कि राजाओं का पद बनने से पूर्व यहां पुरोहित ही शासन चलाते थे। समाज में पुरोहितों के बाद राजकर्मचारियों और लिपिकों का स्थान था। मध्यम वर्ग में व्यापारी, जमींदार, कारीगर और दुकानदार आते थे। समाज में दासों का स्थान निश्चय ही सबसे नीचा था। वे अधिकतर युद्ध बंदी होते थे।

हम्मूराबी की विधि-संहिता

जब जीवन अधिक जटिल हो जाता है तब मनुष्यों के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए कानून बनाने पड़ते हैं, उनमें वृद्धि और संशोधन भी करने पड़ते हैं। हम्मूराबी ने अपनी प्रजा के लिए एक विधि-संहिता बनाई। उसकी संहिता जीवन के सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। यदि एक नागरिक किसी दूसरे नागरिक के प्रति कोई अपराध करता तो वह अपराध सारे राज्य के विरुद्ध समझा जाता था और राज्य अपराधी को दंड देता था। इस संहिता में समाज का विभाजन धनी, निर्धन और दास, तीन वर्गों में किया गया था, और एक ही अपराध के लिए इन तीनों वर्गों का दंड अलग-अलग था। यदि अपराध धनी वर्ग के व्यक्ति के प्रति किया जाता तो अधिक दण्ड दिया जाता और यदि निर्धन वर्ग के व्यक्तियों या दासों के साथ किया जाता तो कम दंड दिया जाता था। जिस शिला पर हम्मूराबी की विधि-संहिता अंकित है उसमें राजा को अपने देवता के सामने सम्मान की मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है और इसके नीचे संहिता दी हुई है।

मैसोपोटामिया के धार्मिक विश्वास तथा रीति-रिवाज

मैसोपोटामिया के निवासी अनेक देवताओं में विश्वास करते थे, किन्तु प्रत्येक नगर का अपना संरक्षक देवता था। भू-लगान उसी के नाम पर वसूल किया जाता था और सरकार के सारे नियमों का पालन उसी के नाम पर कराया जाता था। उसके मंदिर पर बड़ी धनराशि व्यय की जाती थी। ऐसी स्थिति में पुरोहितों को बहुत से अधिकार प्राप्त हो जाना स्वाभाविक ही था।

जैसा कि प्राचीन काल में आम बात थी, लोग मृत्यु के बाद के जीवन में विश्वास रखते थे। इसलिए वे कब्रों में शव के साथ भोजन और दैनिक जीवन की अन्य वस्तुएं भी रखते थे। लगता है कि सुमेर में यह प्रथा बंद कर दी गई

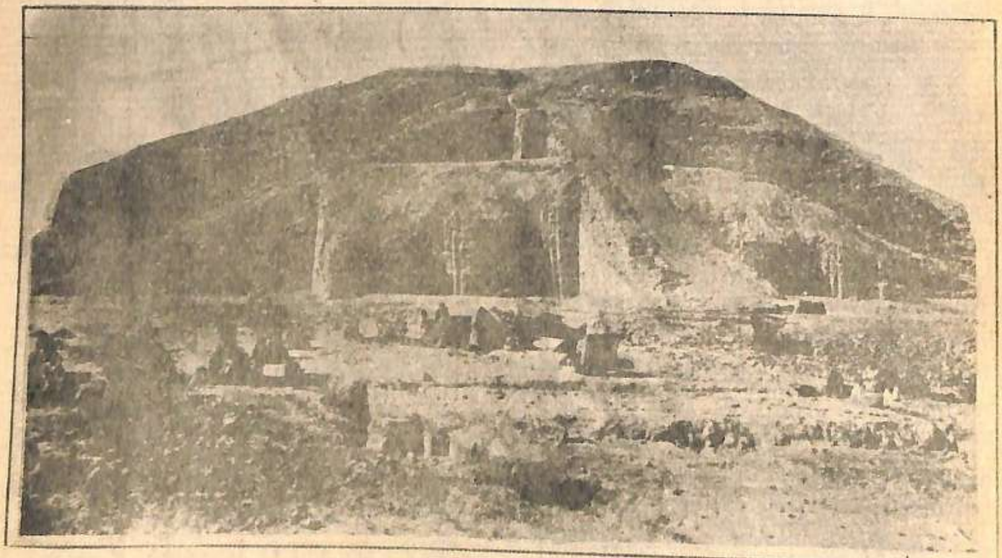

उर में जिगुरात के अवशेष

पत्थर पर उत्कीर्ण हम्मूराबी की विधि संहिता

और शवों को मकानों के पीछे खुले स्थान में गाड़ा जाने लगा। इससे कुछ विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि वहां के निवासी मृत पूर्वजों को परिवारों का रक्षक समझते थे और शायद घर में उनकी पूजा भी की जाती थी।

मैसोपोटामिया में व्यवसाय, कला और शिल्प

मैसोपोटामिया के अधिकतर निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। बड़े पैमाने पर धातुओं के इस्तेमाल के पहले वे पकाई हुई चिकनी मिट्टी की हंसिया काम में लाते थे। इन हंसियों को आंवे में पका कर सख्त बनाया जाता था जिससे ये आसानी से नहीं टूटते थे। खेतों की सिंचाई के लिए हर समय पानी मिल सके इसलिए मनुष्य बाढ़ के पानी को नहरों द्वारा ले जाकर बड़े बड़े जलाशयों में इकट्ठा कर लेते थे। वे हल जोतने के लिए मवेशी काम में लाते थे और उनकी नस्ल सुधारने पर भी ध्यान रखते थे।

मैसोपोटामिया के निवासी आम तौर से भेड़ की खाल के कपड़े पहनते थे। वे सन के पकड़े बनाने के लिए सन की खेती भी करते थे। कपड़ा बनाने का उद्योग एक विशेष वर्ग के कारीगरों के हाथों में था, जिसमें सूत कातने वाले, जुलाहे और रंगरेज सभी शामिल थे।

उर के शाही कब्रिस्तान में धातु की वस्तुओं का एक बड़ा ढेर मिला है। उनमें देवताओं की अनेक मूर्तियां मिली हैं जो पहले देव मंदिरों को सुशोभित करती थीं। इस ढेर में सोने और चांदी के बर्तन, चांदी की वीणाएं, सोने का टोप, लकड़ी का सुंदर पच्चीकारी वाला फर्नीचर, अति सुंदर गले के हार, हाथ के कंगन और अन्य आभूषण मिले हैं। इससे यह स्पष्ट है कि लगभग २००० ई० पू० तक धातु का काम करने वालों ने बड़े ऊंचे स्तर का तकनीकी ज्ञान और कुशलता प्राप्त कर ली थी।

कुम्हार के चाक का प्रयोग संभवतः सबसे पहले मैसोपोटामिया में ही हुआ। जब तक चाक का आविष्कार नहीं हुआ था, मिट्टी के बर्तन हाथ से ही बनाए जाते थे। मैसोपोटामिया के मिट्टी के बर्तन इतने अच्छे नहीं हैं जितने कि हड़प्पा संस्कृति के निवासियों के थे। शीशे के बर्तन भी शायद सबसे पहले मैसोपोटामिया के निवासियों ने ही बनाए।

मैसोपोटामिया का व्यापार तथा वाणिज्य

मैसोपोटामिया के निवासियों की समृद्धि मुख्य रूप से उनके विदेशी व्यापार पर निर्भर थी। उन्हें कच्चा माल विदेशों से मंगाना पड़ता था। इससे वस्तुएं बनाकर वे अपने देश में और विदेशों में भी बेचते थे। कच्चा माल विदेशों से आया करता था। उनमें पत्थर, अच्छे प्रकार की लकड़ी, सोना, चांदी और अन्य धातुएं शामिल थीं। उनके बदले वे अपने देश से अधिशेष अनाज भेजते थे। उनके बदले देश में अन्न का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था।

एक ऐसे देश के लिए जो आंशिक रूप से भी व्यापार और विनिर्मित माल पर निर्भर हो, दो बातें आवश्यक होती हैं। पहली बात यह है कि जो भी वस्तुएं वह बनाए वे सब

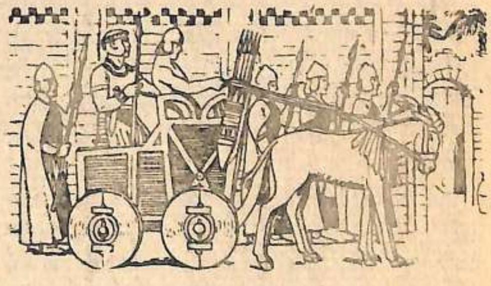

सुमेर का चार पहियों वाला रथ, जो जंगली गधों द्वारा खींचा जाता था।

उच्च स्तर की हों। मैसोपोटामिया के राजा और शासक इस बात का पूरा ध्यान रखते थे। वे खुद ही विनिर्मित माल का निरीक्षण करते थे और व्यापार में ईमानदारी के व्यवहार के लिए नियम बनाते थे। दूसरी आवश्यक बात यह है कि व्यापार करने वाले राज्य के पास यातायात के अच्छे साधन हों, जिससे वस्तुओं को आसानी से ले जाया जा सके। मैसोपोटामिया में वस्तुओं को ले जाने के लिए पहिए वाली गाड़ियां थीं और पानी द्वारा माल ले जाने के लिए नदियां और बहुत सी नहरें थीं जो सिंचाई के लिए बनाई गई थीं। इस देश में लट्ठों को बांधकर बेड़े बनाए जाते थे जिन्हें 'कैलेक' कहते थे। इन कैलेकों को हवा से भरी हुई मशकों से बांधकर पानी में तैराया जाता था। इन कैलेकों में जल-मार्ग द्वारा सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता था। **हड़प्पा और मैसोपोटामिया की सभ्यताओं के बीच परस्पर व्यापार होता था।**

कीलाकार लिपि (Cuneiform Script)

मैसोपोटामिया की पहली लिपि का विकास सुमेर में हुआ। इसमें वस्तुओं का ज्ञान कराने के लिए चित्र-लेखों, चिन्हों, संकेतों और चित्रों का प्रयोग किया जाता था। जब यह बात निश्चित हो गई कि अमुक चिन्ह या चित्र से अमुक वस्तु का बोध होता है, तो विचारों का विनिमय सरल हो गया। मगर जब वस्तुओं के स्थान पर विचारों को व्यक्त करना होता तब चित्र-लिपि से काम नहीं चलता था। सुमेर निवासियों ने कतिपय विचारों के व्यक्त करने के लिए कतिपय विशेष चित्रों या चिन्हों का प्रयोग करके इस कठिनाई को हल किया। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु के भार या आयतन को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अलग-अलग संकेतों का प्रयोग किया। ये संकेत विचारों, नामों और शब्दों के द्योतक थे। उन्होंने अपनी लिपि में उच्चारण के अनुसार परिवर्तन करके उसका और भी विकास किया अर्थात् इनमें से कुछ संकेत शब्दों के पदों और ध्वनियों को व्यक्त करते थे। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं, विचारों और ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए ये ध्वनि संकेत अनेक प्रकार से मिलाए जा सकते थे।

एक व्यवस्थित लेखन-पद्धति का विकास सबसे पहले सुमेर निवासियों ने किया। इस पद्धति को **कीलाकार लिपि** कहते हैं। उनकी लिपि फनी के आकार की है, जैसा कि **चित्र में दिखलाया गया है। नहन्नी जैसे तेज औजार से** चिकनी मिट्टी की पट्टियों के चिकने धरातल पर लिखते थे।

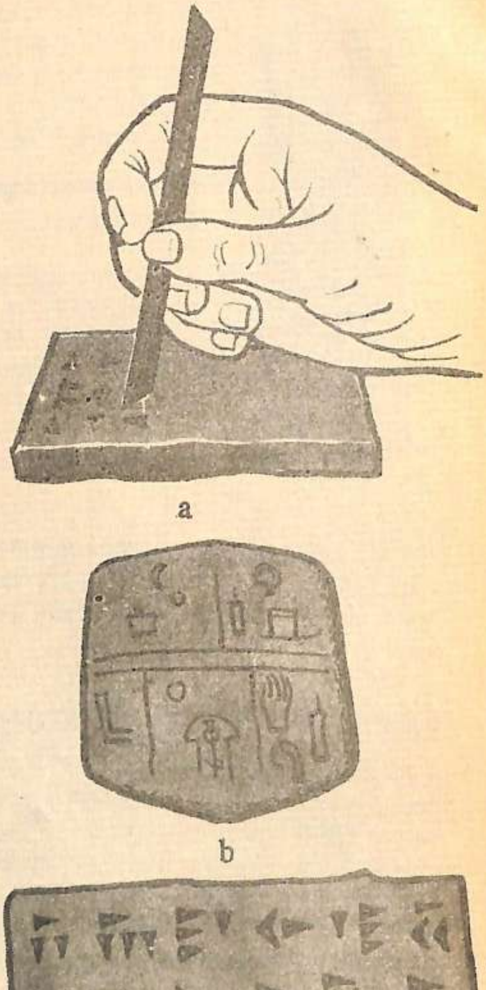

a

b

c

कीलाकार लिपि का विकास। (a) नहन्नी द्वारा लिखना, (b) सुमेर की प्रारंभिक लिपि, (c) कीलाकार लिपि का एक लेख

इन पट्टियों को सख्त बनाने के लिए आग में पकाया जाता था। प्रत्येक पट्टिका पुस्तक के एक पृष्ठ की भांति होती थी। ये पट्टिकाएं बड़ी संख्या में मिली हैं। इनमें से अधिकतर व्यापार संबंधी दस्तावेज हैं जैसे पत्र, बिक्री पत्र और अनुबंध पत्र। दूसरे प्रकार के दस्तावेजों में राज्यादेश और धार्मिक पुस्तकें हैं, परन्तु इनकी संख्या कम है।

कीलाकार लिपि किस प्रकार पढ़ी गई, इसकी कहानी बहुत ही दिलचस्प है। फारस में नियुक्त एक अंग्रेज अधिकारी हेनरी रॉलिन्सन ने दृढ़ निश्चय किया कि मैं इस लिपि को अवश्य पढ़ूंगा। उसने संयोगवश एक चट्टान पर खुदा एक अभिलेख खोज निकाला जिसे बेहिस्तून अभिलेख कहते हैं। यह अभिलेख लगभग 100 मीटर की ऊंचाई पर खुदा था जहां पहुंचना बहुत कठिन था। इस कठिनाई से रॉलिन्सन हताश न हुआ। वह हर रोज उस चट्टान पर चढ़ता और सारा दिन उस अभिलेख की प्रतिलिपि करने में बिताता और शाम को नीचे उतरता। पूरे अभिलेख की प्रतिलिपि बनाने में उसे कई दिन लग गए। पूरे बारह वर्षों तक प्रयत्न करने पर वह उस लिपि को पढ़ने में सफल हो सका। पुरातत्व संबंधी अवशेषों और इस लिपि की जानकारी से मैसोपोटामिया की सभ्यता के विषय में हमारे ज्ञान में बहुत वृद्धि हुई है।

खोदी हुई लिपियों को पढ़ने की कहानी बहुत ही दिलचस्प है। इनको समझने के लिए विद्वानों को बड़े धैर्य और अथक परिश्रम से लगे रहना पड़ा है। ऐसी लिपियों में सिंधु घाटी सभ्यता की लिपि भी है।

ज्ञान की वृद्धि

मैसोपोटामिया के लोग साठ-साठ की इकाइयों में गणना करते थे जैसे कि आजकल हम दस की इकाइयों में गणना करते हैं। हमारी गणना-प्रणाली दशमलव-प्रणाली कही जाती है। उनकी गणना-प्रणाली **षट् दाशमिक प्रणाली** थी। वे 1 से 9 तक के अंकों को आवश्यकतानुसार दोहराते थे। इसी प्रकार वे दस के चिन्ह को जितनी बार जरूरत हो, दोहराते थे। 60 के लिए भी उनका वही चिन्ह था जो 1 के लिए, यद्यपि लिखते समय इसका आकार कुछ बड़ा बनाया जाता था। उदाहरण के लिए, जब उन्हें 153 लिखना होता तो वे दो बार 60, तीन बार 10 और तीन बार 1 लिखते। उनके एक प्रकार के पहाड़े भी थे। 60 पर आधारित वह गणना-प्रणाली अब कहीं प्रयोग में नहीं लाई जाती, किन्तु समय का विभाजन करने के लिए हम अब भी उनका प्रयोग करते हैं जैसे 60 सैकेंड का एक मिनट और 60 मिनट का एक घंटा। इसी प्रकार हम एक वृत को 360 अंशों में बांटते हैं। मैसोपोटामिया के निवासियों ने रेखागणित के उस सिद्धांत को जान लिया था, जिसे बाद में पाइथागोरस के प्रमेय का नाम दिया गया। यह प्रमेय मैसोपोटामिया के निवासियों को भवन-निर्माण में और दूरी का अनुमान लगाने में काफी सहायक हुआ।

खगोल विद्या के क्षेत्र में मैसोपोटामिया वालों ने आश्चर्यजनक प्रगति की थी। वे दिन और रात की अवधि का हिसाब लगा सकते थे और सूर्योदय, सूर्यास्त और चंद्रोदय तथा चंद्रास्त का ठीक समय बतला सकते थे। वे पूरे दिन को 24 घंटों में बांटते थे। यह प्रणाली आज भी सारे संसार में काम में लाई जाती है। उन्होंने आकाश को 12 भागों में बांटा और प्रत्येक भाग को अलग-अलग नाम दिए। ये नाम आज भी इस्तेमाल होते हैं। भारत में हम इन्हें **राशियां** कहते हैं।

मैसोपोटामिया के निवासियों की एक अन्य उल्लेखनीय उपलब्धि पंचांग का आविष्कार थी। पंचांग सूर्य या चंद्रमा की गति के आधार पर बनाए जा सकते हैं। इस प्रकार कुछ पंचांग सूर्य पर तथा कुछ चंद्रमा पर आधारित हैं। मैसोपोटामिया का पंचांग चंद्रमा पर आधारित था और अन्य चंद्रपंचांगों की भांति वह भी अशुद्ध था। जितने समय **में पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक बार चक्कर लगाती है** दरअसल उतनी अवधि को एक साल कहते हैं। यह अवधि 365 दिनों, 5 घंटों, 48 मिनटों और 46 सेकेण्डों की होती है। चांद वर्ष सौर वर्ष से लगभग 11 दिन कम होता है। इस अशुद्धि के बावजूद मैसोपोटामिया का पंचांग एक बड़ी उपलब्धि था।

सात सौ पचास ई० पू० तक असीरियाई साम्राज्य की स्थापना हो गई। निनेवे पश्चिमी एशिया के नगरों में सर्वश्रेष्ठ हो गया। उसमें अनेक विस्तृत प्रासाद और भव्य देव मंदिर थे। सातवीं और छठी शताब्दी ई० पू० में जब उत्तर-पूर्व की और फारस की खानाबदोश जातियों ने निनेवे को नष्ट कर दिया तब असीरिया का महान् साम्राज्य समाप्त हो गया।

मिस्र की सभ्यता

मिस्र को नील नदी का वरदान कहा जाता है। इस नदी के दोनों किनारों की सँकरी पट्टी हरी और उपजाऊ है, यह वह क्षेत्र है जहां पर मिस्र की सभ्यता फली-फूली।

इतिहासकार मिस्र के इतिहास को तीन कालों में बांटते हैं – प्राचीन राज्य, मध्यकालीन राज्य और नवीन राज्य। प्राचीन राज्य को पिरामिडों का युग भी कहते हैं। इस युग में काहिरा के निकट स्थित मेम्फिस नगर इस राज्य की राजधानी था। इस काल (3000-2000 ई० पू०) और मध्य कालीन राज्य (2000-1750 ई० पू०) के दौरान मिस्र की सभ्यता कला, धर्म और विज्ञानों की प्रगति के कारण विकसित हुई। मगर अठाहरवीं शताब्दी ई० पू० में हाइकसोस आक्रमणकारियों ने मिस्र पर हमला किया। वे पूर्व की ओर से आए थे। वे खानाबदोश थे और उनकी सभ्यता मिस्र के निवासियों की सभ्यता की तुलना में बहुत कम विकसित थी। उनका राज्य थोड़े ही दिन चला और जल्द ही मिस्र के राजाओं ने अपने देश को फिर जीत लिया। इस प्रकार नवीन राज्य की स्थापना हुई।

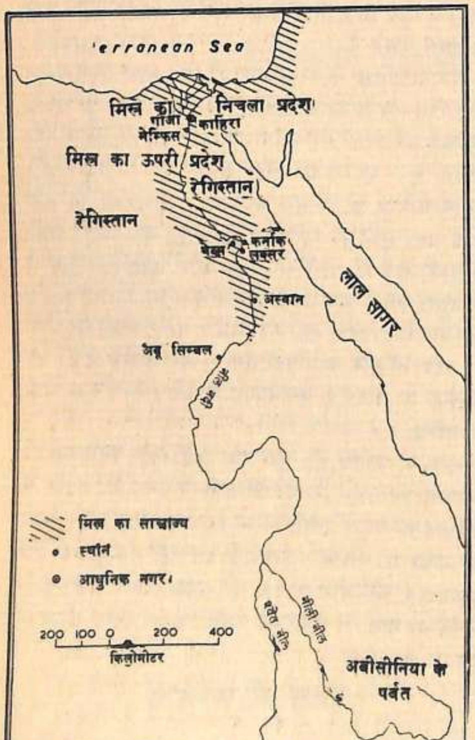

मिस्र की सभ्यता, ई० पू० पंद्रहवीं शताब्दी में

मिस्र के सामाजिक वर्ग: राजा से दास तक

मिस्र का राजा 'फराओ' (Pharaoh) कहलाता था। उसके पास पूर्ण शक्ति होती थी। फराओ सारी धरती का मालिक था और वह जो कहता था वही कानून हो जाता था। उसे देवता समझा जाता था और उसकी मूर्तियां मंदिरों में स्थापित की जाती थीं। उसके कार्यों और विजयों का विवरण मंदिर की दीवारों पर उत्कीर्ण कराया जाता था। समाज में फराओ के पश्चात् पुरोहितों, राजकर्मचारियों, कलाकारों और दस्तकारों का स्थान था। उनके बाद किसानों का स्थान था जो शहरों से बाहर रहते थे। उनके बाद दास आते थे जो आमतौर से युद्धबंदी होते थे और राजा उनका मालिक होता था।

प्राचीन मिस्र में व्यवसाय, कला और शिल्प

लोगों का सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय था कृषि। नदियां प्रति वर्ष भूमि को उपजाऊ बनाती थीं और वहां के निवासी नहरें बनाते थे, जिससे वर्ष भर फसल उगाने के लिए पानी मिल सके। ऐसा लगता है कि 3000 ई० पू० में भी वे बैलों की सहायता से हल चलाते थे।

अन्य प्रारंभिक सभ्यताओं के लोगों की भांति मिस्र के निवासी भी पशु-पालन करते थे। साधारणतया मनुष्य बकरी, कुत्ते, गधे, सुअर और बत्तख पालते थे। लगता है कि उनके पास ऊंट भी थे। मिस्र में घोड़े को पहली बार हाइकसोस लोग ले आए। ये घोड़े युद्ध के समय उनके रथों को खींचते थे।

मिस्र में सन की खेती प्रचुर मात्रा में की जाती थी। मैसोपोटामिया के निवासी ऊनी कपड़े पहनते थे, किन्तु मिस्र के निवासी सन के कपड़े पहनते थे। ये कपड़े मिस्र की जलवायु के बहुत अनुकूल थे। मिस्र के निवासी पत्थर के सुंदर फूलदान बनाकर विदेशों को भी भेजते थे। मैसोपोटामिया के निवासियों की भांति उन्होंने भी शीशे के बर्तन बनाने की कला का विकास किया और वे सुंदर आकृतियों के शीशे के बर्तन बनाने लगे। उनके बढ़ई बहुत सुंदर फर्नीचर बनाते थे। हाथी दांत और बहुमूल्य मणियों को फर्नीचर में जड़ा जाता था। इस प्रकार का फर्नीचर शाही मकबरों में बड़े सुरक्षित ढंग से रखा गया।

मिस्र के निवासियों को तड़क-भड़क की जिन्दगी के लिए भोग विलास की बहुत सी ऐसी वस्तुओं की ज़रूरत पड़ती थी जिन्हें विदेश से मंगाना पड़ता था। ऐसी वस्तुओं में धूप,

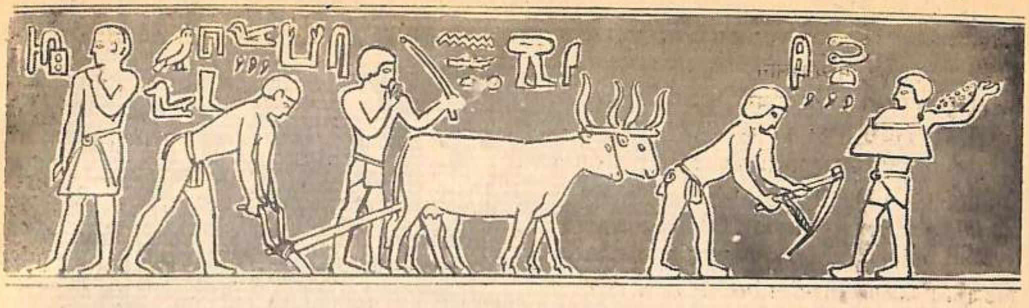

मिस्र में कृषि, हल चलाना और बीज बोना

तेल, चांदी, इमारती लकड़ी और अन्य चीजें थीं। स्थल मार्ग से अधिकतर वस्तुएं मालवाही गधों द्वारा ढोई जाती थीं। मिस्र वालों के पास समुद्री जहाज भी थे जिनका इस्तेमाल युद्ध में और शान्ति के कार्यों के लिए होता था।

धर्म

मिस्र के निवासियों का विश्वास था कि प्रकृति की प्रत्येक लीला के पीछे कोई बड़ी शक्ति विद्यमान होती है मगर सूर्य उनका सबसे महत्वपूर्ण देवता था। वे इसे सब चीज़ों का स्रष्टा मानते थे और उसकी पूजा अनेक नामों से करते थे। मिस्र वालों के अन्य प्रसिद्ध देवता थे – परलोक का राजा, बाढ़ का देवता और चंद्र देवता। उनके कुछ स्थानीय देवता भी थे। कभी-कभी बाज, घड़ियाल, गीदड़ और गाय को इन देवताओं के प्रतीक के रूप में लिया जाता था। संभवतः चिर अतीत में ये पशु-पक्षी विभिन्न कबीलों के टोटम रहे होंगे। लगता है कि मिस्र में पुरोहितों का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था।

मिस्र वालों का मृत्यु के बाद जीवन में दृढ़ विश्वास था। उनका ख्याल था कि जीवित अवस्था में मनुष्य की एक देह और एक आत्मा होती है। अन्य लोगों का विश्वास था कि मरने के बाद शरीर नष्ट हो जाता है और आत्मा जीवित रहती है, किन्तु मिस्र वालों की धारणा थी कि मरने के बाद भी शरीर और आत्मा दोनों जीवित रहते हैं। केवल मृत व्यक्तियों का जीवन जीवित मनुष्यों के जीवन से कुछ भिन्न होता है। इसलिए वे मृत व्यक्ति के शव की रक्षा बड़ी सावधानी से करते थे। शव को मसालों से पोतकर बढ़िया कपड़ों में लपेटा जाता था। इस प्रकार से सुरक्षित किए गए **शव को 'ममी' कहा जाता है। ममी को एक लकड़ी के** संदूक में रखा जाता था, उसे चित्रों से सजाया जाता था और पत्थर के बाक्स में बंद करके एक मकबरे में दफना दिया जाता था। मकबरे के अंदर वे सभी वस्तुएं रखी जाती थीं जो मृत व्यक्ति को पसंद थीं और जिनका वह जीवित अवस्था में प्रयोग करता था। जब राजाओं और रानियों को दफनाया जाता तो शव रखने के लिए काफी मूल्यवान बक्स और मकबरे बनाए जाते थे मगर जब साधारण मनुष्यों को दफनाया जाता था तब वे दोनों वस्तुएं साधारण होती थीं। इन मकबरों में कपड़े, भोजन, पेय पदार्थ, बहुमूल्य फर्नीचर, और आभूषण रखे जाते थे। पिरामिड महान् राजाओं के मकबरे थे।

मिस्र की वास्तुकला और मूर्ति कला

प्रारंभिक काल में मिस्र की इमारतों में पिरामिड सर्वश्रेष्ठ थे। उस काल की महान् उपलब्धियों में से 30 बड़े और बहुत छोटे पिरामिड आज तक विद्यमान हैं। उन सब में से भव्य काहिरा के पास गीजा का महान् पिरामिड है। इसका निर्माण 2650 ई० पू० के आस-पास प्राचीन राज्य के **फराओ सियोफ (खुफू) ने किया था। यह बड़ी इमारत** पत्थर के बहुत बड़े भारी टुकडों को जोड़कर बनाई गई है। कहते हैं कि इसको पूरा करने के लिए एक लाख मज़दूरों ने 20 वर्ष तक कार्य किया था। पत्थर के इन भारी टुकड़ों को गढ़कर चढ़ाई के ऊपर खिसका कर चढ़ाया जाता था और फिर बड़ी सावधानी तथा निपुणता से इनकी जड़ाई की जाती थी। इसके लिए इंजीनियरी संबंधी आश्चर्यजनक कौशल की आवश्यकता पड़ती थी। निःसंदेह पिरामिडों को प्राचीन संसार की सात आश्चर्यजनक चीज़ों में रखना सर्वथा उचित है।

चूंकि पिरामिड मिस्र के राजाओं के मकबरे थे इसलिए **उनमें उनकी ममियों को और उनके इस्तेमाल में आने**

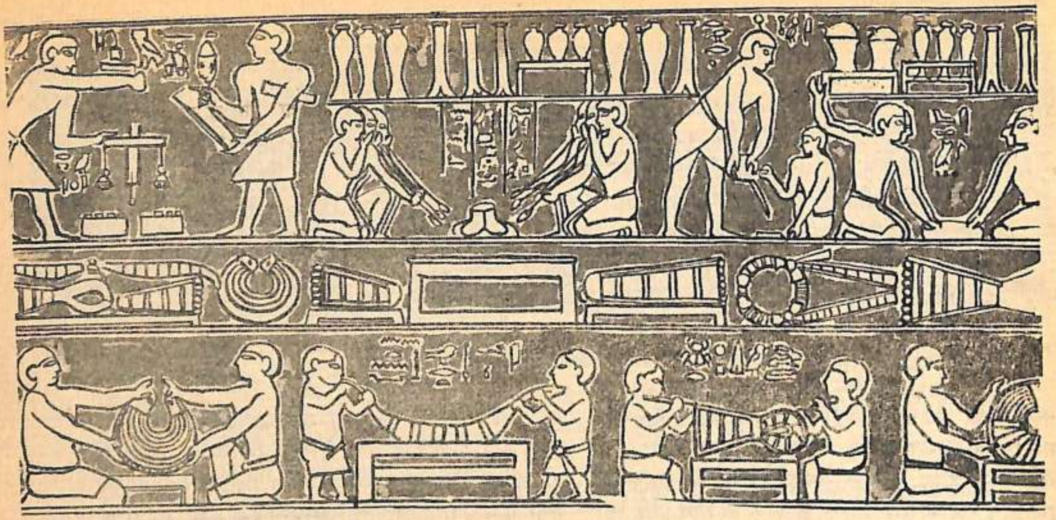

मिस्र में धातु का काम करने वाले : तौलते, गलाते और धातु को ढालते हुए

वाली सभी प्रकार की बहुमूल्य वस्तुओं को रखा जाता था। इन पिरामिडों को बने शताब्दियां हो गई। इस दीर्घकाल में उनको लूटा गया किन्तु वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक में तूतन खामन का मकबरा पूरी तरह सुरक्षित दशा में मिला। इस मकबरे की बहुमूल्य वस्तुएं आज भी काहिरा के संग्रहालय में देखी जा सकता है। इस मकबरे की दीवारों पर कई बड़ें और सुंदर चित्र हैं। उनसे तत्कालीन मिस्र-निवासियों के जीवन के विषय में हमें बहुत जानकारी प्राप्त होती है, क्योंकि इन चित्रों में अनेक युद्धों, शिकार और बलिदान संबंधी जुलूसों के दृश्य दिखलाए गए हैं। दैनिक जीवन के अन्य बहुत से दृश्य भी इनमें चित्रित हैं।

मिस्र वास्तुकला का एक अन्य अजीब नमूना स्फिंक्स है। स्फिंक्स पौराणिक कथाओं में वर्णित एक जानवर है जिसका शरीर सिंह का और सिर मनुष्य का है। प्रत्येक स्फिंक्स की मूर्ति बड़े ठोस पत्थर की एक चट्टान को तराश कर बनाई गई थी।

मिस्री मंदिर भी उल्लेखनीय इमारतें हैं। कार्नाक के मंदिर को बडे पैमाने पर मूर्तियों और शिल्पकलाओं से सुसज्जित किया गया था। इसमें 130 शानदार स्तंभों वाला एक हॉल है और स्फिंक्सों की एक गली मंदिर से नदी तक बनी हुई है। दूसरा प्रसिद्ध मंदिर अबू सिम्बल का था। इसे बलुआ पत्थर (Sandstone) की चट्टान को काट कर बनाया गया है। मंदिर के भीतरी भाग में हॉलों की एक कतार थी जो ठोस चट्टान में लगभग 60 मीटर खोदकर बनाई गई थी। यह मंदिर सूर्य देवता के निमित्त बनाया गया था। उगते हुए सूर्य की किरणें इस मंदिर को प्रकाशित करती थीं। यह इस मंदिर की सबसे प्रमुख विशेषता है। इसीलिए यह 'उगते हुए सूर्य का मंदिर' कहा गया है।

कार्नाक और अबू सिम्बल दोनों नील नदी के किनारे स्थित थे। आज से लगभग 35 वर्ष पूर्व आस्वान में एक ऊंचा बांध बनाने का कार्य शुरू हुआ। यह बात स्पष्ट हो गई कि बांध के तैयार होने पर अबू सिम्बल पानी में डूब जाएगा। इसलिए यूनेस्को ने अंतर्राष्ट्रीय प्रयास से इन स्मारकों की रक्षा करने की एक योजना आरंभ की। इन स्मारकों की रक्षा करने के उद्देश्य से अनेक देशों के पुरातत्वविदों के दल इन स्मारकों को मूल स्थान से हटाने के काम में लग गए। इसमें भारत के पुरातत्वविदों के एक दल ने भी भाग लिया था। भारत में नागार्जुन सागर बांध बनने पर नगार्जुन कोण्डा के स्मारक उसी तरह बच गए।

हेरोग्लिफिक लिपि (Hieroglyphic Script)

मिस्र निवासियों ने शायद लिखने की कला 3000 ई० पू० से पहले ही सुमेर निवासियों से सीखी थी, किन्तु उनकी लिपि कीलाकार लिपि की नकल नहीं है। मिस्र की लिपि हेरोग्लिफिक कहलाती है। इसका अर्थ है 'पवित्र लिपि'। इसमें 24 चिन्ह थे जिनमें से प्रत्येक एक व्यंजन अक्षर का प्रतीक था। इस लिपि में स्वर वर्ण नहीं लिखे जाते थे। बाद में मिस्र निवासियों ने विचारों के लिए संकेतों का प्रयोग

करना आरंभ कर दिया। इस प्रकार चिन्हों की संख्या बढ़कर 500 हो गई। थोड़े ही दिनों के बाद लोगों को लिपि का महत्व मालूम हो गया और सुमेर की तरह ही लेखन का विकास एक विशेष कला के रूप में हुआ। लिपिकों का समाज में एक प्रमुख स्थान था। वे **पेपिरस** नाम के पेड़ के पत्तों पर सरकंडे की कलम से लिखते थे। इसी से अंग्रेजी भाषा का पेपर शब्द बना जिसका अर्थ कागज है।

कीलाकार लिपि के पढ़े जाने की कहानी जितनी दिलचस्प है, हेरोग्लिफिक लिपि के पढ़े जाने की कहानी भी उससे कम दिलचस्प नहीं है। फ्रांस के प्रसिद्ध विजेता नेपोलियन ने 1798 में मिस्र पर हमला किया। उसके साथ कई विद्वान थे। नील नदी के मुहाने के पास एक पत्थर खोज निकाला जो रोसेट्टा पत्थर के नाम से प्रसिद्ध है। इस पत्थर पर एक अभिलेख तीन लिपियों— हेरोग्लिफिक, प्राचीन मिस्र-निवासियों की एक अन्य लोकप्रिय लिपि डिमोटिक और यूनानी- लिपि में उत्कीर्ण था। धैर्य के साथ दीर्घकाल तक परिश्रम करने के बाद शैम्पोल्यी (1790-1832) नामक एक फ्रांसीसी विद्वान मिस्र की लिपि के सारे अक्षरों को पढ़ने में समर्थ हो गए। जिस प्रकार बेहिस्तून अभिलेख की सुमेर लिपि के पढ़े जाने से सुमेर-सभ्यता के द्वार खुले उसी प्रकार इस खोज से मिश्र की सभ्यता को समझने के लिए नए द्वार खुले।

प्राचीन मिस्र में विज्ञान और गणित

मिस्र वालों ने ज्ञान के अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की। उन्होंने अंकों की एक दशमलव प्रणाली का विकास किया। अभीष्ट संख्या लिखने के लिए 1 से 9 तक के अंक के एक ही चिन्ह को बार-बार दोहराया जाता था। 10 और उसकी गुणन संख्याओं के लिए भिन्न-भिन्न चिन्ह थे। उदाहरण के लिए 1, 10, 100 आदि के लिए अलग-अलग संकेत थे।

गीजा में स्फिंक्स और सियोफ का विशाल पिरामिड

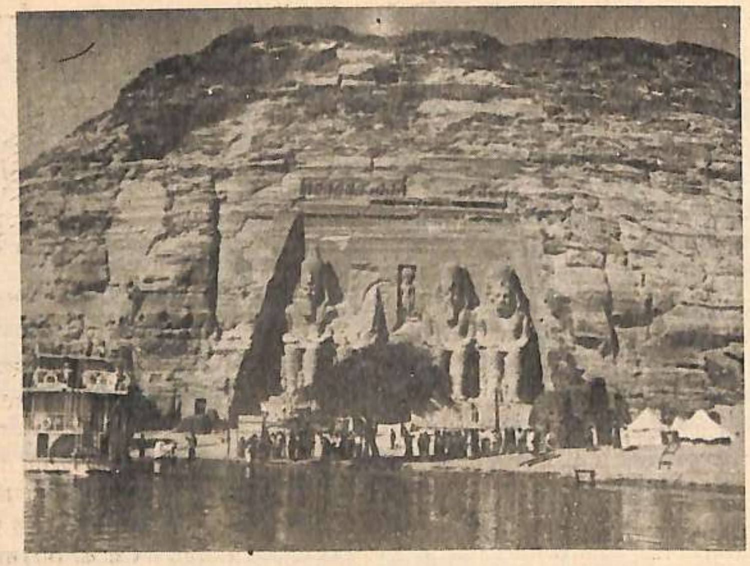

अबूसिम्बल का विशाल मंदिर

153 की संख्या लिखने के लिए 100 का चिन्ह एक बार, 10 का चिन्ह 5 बार और 1 का चिन्ह 3 बार लिखा जाता था। इस प्रणाली में जोड़ और घटाने की क्रियाएं सरल थीं। मिस्र के निवासी त्रिभुज और आयत का क्षेत्रफल निकाल सकते थे।

मिस्र वालों की सबसे बड़ी उपलब्धि सौर पंचांग थी।

रेखाचित्र में, जो पुराने साम्राज्य के एक मकबरे से लिया गया है, एक अधिकारी द्वारा एक दास को लाता हुआ दिखाया गया है। बांई ओर मिस्र की लिपि के कुछ चिन्ह दिखाए गए हैं।

लगभग सभी प्राचीन जनगणों ने सुमेर वालों की तरह अपने पंचांग चंद्र मासों के आधार पर बनाए थे। किन्तु यह उस कृषक जनगण के लिए सहायक नहीं है जिसे अपने कार्य के लिए पहले से ऋतुओं, वर्षा और बाढ़ आने के समय की जानकारी आवश्यक होती है। अनेक वर्षों तक सावधानीपूर्वक देखने के बाद मिस्र वालों को मालूम हुआ कि एक बाढ़ और दूसरी बाढ़ के बीच औसतन 365 दिन होते हैं। उन्होंने यह भी पाया कि सिरियस नामक चमकीला तारा सबसे बाद में तब निकलता था जब बाढ़ काहिरा पहुंच जाती थी, और ऐसा हर 365 दिन पर होता था।

इन दो स्वतंत्र प्रेक्षणों से मिस्र वाले इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वर्ष में 365 दिन होते हैं। इसके बाद वर्ष को 12 महीनों में और प्रत्येक महीने को 30 दिनों में बांटा गया। बचे हुए 5 दिनों को धार्मिक उत्सवों के लिए अलग रखा गया। मगर सौर वर्ष में दरअसल लगभग 365¼ दिन होते हैं। काफी समय बीतने पर 365 दिन के वर्ष पर आधारित पंचांग गलत साबित हुआ। शायद मिस्र निवासियों ने इसको महसूस कर लिया था परन्तु तब तक उस देश की दीर्घकालीन परंपरा के कारण वह पंचांग इतनी दृढ़ता से व्यवहार में जम गया था कि उन्होंने उसे नहीं बदला। फिर भी मिस्र का सौर पंचांग एक महान उपलब्धि था।

अपने मृत लोगों के शवों को औषधियों का लेप देकर सुरक्षित रखने की मिस्र निवासियों की प्रथा ने विज्ञान के विकास को प्रोत्साहित किया। इससे मानव शरीर के ढांचे से संबंधित ज्ञान और शल्यक्रिया के कौशल में वृद्धि हुई।

लगभग 1000 ई० पू० तक मिस्र की उन्नति का काल समाप्त हो गया। फराओ सम्राटों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अफ्रीका के रेगिस्तान से आकर मिश्र पर आक्रमण करने वाली खानाबदोश जातियों और भूमध्य सागर में स्थित नई शक्तियों के विरुद्ध युद्ध करने पड़े।

चीन की सभ्यता

चीन में पहले-पहल सभ्यता का केन्द्र हवाङ हो नदी के क्षेत्र में विकसित हुआ था। बाढ़ के बाद बहुधा यह नदी अपनी धारा का बहाव बदल देती थी। परिणामस्वरूप घरों और खेतों में बाढ़ का पानी भर जाता था और पानी को बाहर निकालने के लिए खोदी जाने वाली नहरें बेकार हो जाती थीं। इसीलिए इस नदी को चीन का शोक भी कहते हैं।

सबसे प्राचीन चीनी सभ्यता जिसके बारे में पुरातत्ववेत्ता हमें बतलाते हैं शाङ सभ्यता है। ऐसी धारणा है कि शाङ वंश के राजाओं ने 1765 से 1122 ई०पू० तक शासन किया। पुरातत्व संबंधी प्रमाणों से यह निश्चित है कि 14 वीं शताब्दी ई० पू० में शाङ लोगों ने उच्च स्तर की संस्कृति का विकास कर लिया था। यह विकसित सभ्यता किसी भी प्रारंभिक सभ्यता से कम नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि शाङ लोगों के पड़ोसी संस्कृति के विकास में उनसे पिछड़े हुए थे। इसलिए शाङ राजाओं का प्रमुख कार्य उनसे अपनी प्रजा की रक्षा करना था। मगर पड़ोसी चाऊ वंश ने शाङ वंश को हरा दिया। चाऊ वंश के राजाओं ने शाङ वंशीय संस्कृति के अच्छे तत्वों को सुरक्षित रखा और वे लगभग 250 ई० पू० तक इस देश पर राज करते रहे। उनके राज्य के बारे में तुम अगले अध्याय में पढ़ोगे।

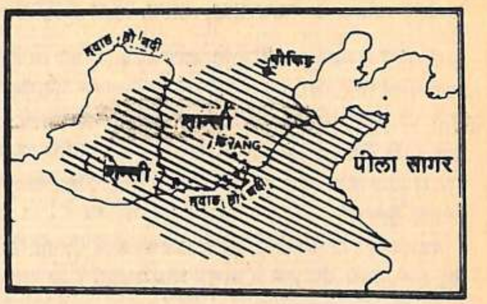

शाङ सभ्यता

प्राचीन चीन में सामाजिक वर्ग

चीन के समाज में राजा के बाद कुलीन पुरुषों का स्थान था। राजा उन्हें भूमि देता था और उसके बदले में वे लड़ाइयों में राजा की सहायता करते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि यह एक प्रकार की **सामंत प्रथा** थी। इसके विषय में तुम आगे पढ़ोगे। महत्व की दृष्टि से संभवतः व्यापारी और दस्तकार तीसरे वर्ग में आते थे। जनसंख्या का बड़ा भाग किसानों का था। निम्नतम श्रेणी दासों की थी, जो अन्य तात्कालिक संस्कृतियों के दासों की तरह ही युद्धबंदी होते थे। शाङ राजा अपना अधिकतर समय युद्धों और विजयों में बिताते थे। इसीलिए उन्हें अच्छी सेना की आवश्यकता पड़ी। ऐसी स्थिति में समाज में योद्धाओं का मान होना स्वाभाविक ही था। योद्धा कांसे का शिरस्त्राण और धातु का कवच पहनते थे। कांसे की कटार और कुल्हाड़ियां, धनुष और धातु की नोक वाले बाण वहां पर मिले हैं।

प्राचीन चीन में व्यवसाय, कला और शिल्प

अन्य तीनों सभ्यताओं की भांति शाङ साम्राज्य की समृद्धि कृषि पर निर्भर थी। मुख्य रूप से ज्वार-बाजरे की खेती होती थी। बाद में गेहूं भी बोया जाने लगा और शाङ लोग चावल की खेती भी बड़े पैमाने पर करने लगे। चीनियों ने बाढ़ से होने वाली क्षति से बचने के लिए सिंचाई की विस्तृत प्रणाली निकाली।

बहुत पुराने जमाने से ही चीनी सन के कपड़े पहनते थे। कुछ ऐसे प्रमाण भी मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि शाङ लोग रेशम के कपड़े भी पहनते थे। रेशम के कीड़ों को पाला जाने लगा था और कालांतर में रेशम का उत्पादन चीन का एक महत्वपूर्ण उद्योग हो गया।

चीनी लोग मिट्टी के बड़े ही सुंदर बर्तन बनाते थे। वे उन्हें शीशे की तरह चमकाना भी जानते थे। जल्द ही उन्होंने पोर्सिलेन की तश्तरियां बनाना भी सीख लिया। आज भी हम पोर्सिलेन की तश्तरियों या ऐसे बर्तनों को चीनी मिट्टी के बर्तन कहते हैं।

इस काल में धातु की वस्तुओं के जो नमूने मिले हैं उनसे यह स्पष्ट है कि चीन का धातु शिल्पी अपने शिल्प में पूर्णतया कुशल था। वह फूलदानों पर सुंदर चित्र बनाता था जिससे स्पष्ट है कि वह कलाकार भी था। शाङ काल की कांसे की कुछ वस्तुएं बाद में बनी बहुत सी वस्तुओं से अधिक अच्छी हैं।

धार्मिक उत्सवों पर प्रयोग में आने वाला तिपाया

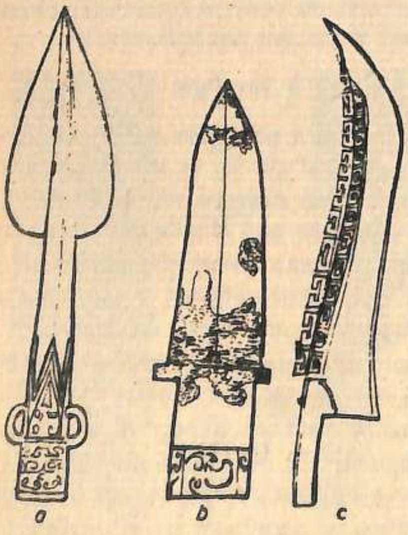

कांसे के औजार और हथियार (अ) बल्लम की नोक, (ब) कटार, (स) चाकू

हमें इस संबंध में अधिक जानकारी नहीं है कि चीनी नगरों के निर्माण की योजना किस प्रकार बनाई जाती थी। मकान चिकनी मिट्टी और लकड़ी के बनाए जाते थे। धनी लोगों के मकान कुटी हुई मिट्टी के बने ऊंचे चबूतरों पर बनाए जाते थे। मकानों की दीवारें अधिकतर चटाइयों से बनाई जाती थीं और उनके ऊपर मिट्टी का लेप चढ़ाया जाता था।

चीन में इमारती लकड़ी प्रचुर मात्रा में मिलती थी, इसलिए उसका भवन निर्माण किया जाता था। मकानों की दीवारों पर रोगन की हुई लकड़ी लगाई जाती थी। लकड़ी की अधिकतर कृतियां नष्ट हो गई हैं, किन्तु नक्काशी की हुई लकड़ी की जो कुछ वस्तुएं शेष रह गई हैं वे इस बात का प्रमाण हैं कि चीनी लोग बहुत कुशल बढ़ई थे। लकड़ी की कुछ वस्तुओं में हाथी-दांत की पच्चीकारी भी की जाती थी।

चीनियों द्वारा पूर्वजों की पूजा और दिव्य वक्ता

प्राचीन चीनियों की सबसे लोकप्रिय प्रथा पूर्वजों की पूजा थी। उनका विश्वास था कि मृत्यु के बाद नश्वर प्राणी एक आत्मा का रूप ले लेता है और उस आत्मा की शक्ति अपरिमित होती है। वे मृत व्यक्ति को कब्र में दफनाने के लिए चटाई में लपेटते थे। उसके साथ फर्नीचर, मिट्टी और कांसे के बर्तन और अन्य वस्तुएं रखी जाती थीं। राजाओं के मकबरे बहुत विस्तृत होते थे और मकबरे का कमरा बहुत सुंदर ढंग से उत्कीर्ण लकड़ी से बनाया जाता था। उनको देखकर हमें मिश्र की शव दफनाने की प्रथाओं की याद आ जाती है।

अन्य सभ्यताओं की भांति चीन में भी प्रकृति की शक्तियों को देवता मानकर उनकी पूजा की जाती थी। परन्तु चीनियों का एक प्रमुख देवता में भी विश्वास था, उसे वे 'ऊपर के लोक का शासक' कहते थे। मनुष्यों ने यह जानने का प्रयत्न किया कि भविष्य में उनके साथ क्या घटना घटेगी। वे यह चाहते थे कि देवता उन्हें बतलाए कि वे कौन-सा कार्य करें और उसे कैसे करें जिससे उनका मनोरथ पूरा हो। उनका विश्वास था कि पुरोहित या पवित्र व्यक्ति देवताओं से घनिष्ठ संबंध रखते हैं, अतः वे उन पुरोहितों से प्रश्न पूछते थे कि उन्हें क्या करना चाहिए। इस प्रकार दिव्यवक्ताओं से प्रश्न पूछने की प्रथा का विकास हुआ।

प्रश्नकर्त्ता दिव्यवक्ता से अनेक प्रश्न पूछता था। दिव्यवक्ता कछुए की चिकनी पीठ या मवेशी की हड्डियां लेकर उनमें छोटे-छोटे छेद कर लेता था। जब उन छेदों से होकर आग की लपटें निकलतीं तो हड्डियां कड़कती थीं। कड़कने के ढंग से प्रश्नों के उत्तरों का अनुमान लगाया जाता था। दिव्यवक्ताओं का समाज में बहुत आदर होना स्वाभाविक ही था।

चीनी लिपि

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि चीनी लिपि मूलतः सुमेरी लिपि से निकली है। उसका प्रारंभ चित्र-लेख, अर्थात् एक शब्द के लिए एक चित्र के रूप में हुआ। किन्तु विकसित होकर वह एक विचार लेख बन गई जिसमें एक विचार को व्यक्त करने के लिए एक चिन्ह का प्रयोग किया गया। यह मार्के की बात है कि अति प्राचीन काल से अब तक चीनी लिपि में बहुत कम परिवर्तन हुआ है। चीन में लिपि ने एक कला का रूप ले लिया और सभी स्थानों पर उसी तकनीक को अपनाया गया। लेखक रेशम व बांस की पतली पट्टियों पर तूलिका से लिखते थे।

चीन का सौर-चांद्र पंचांग

चीन का पंचांग सौर और चांद्र गणनाओं को मिलाकर बनाया गया था। महीने चंद्रमा पर आधारित थे और प्रत्येक महीने में 29 या 30 दिन होते थे। मगर चीनियों ने इस बात का ठीक प्रकार से पता लगा लिया था कि वर्ष में लगभग 365¼ दिन होते हैं। लगता है कि चीनी विद्वानों ने ज्योतिष के एक अन्य क्षेत्र में भी अपूर्व सफलता प्राप्त कर ली थी। वे चंद्र ग्रहण के समय की पूर्व सूचना ठीक-ठीक दे सकते थे।

शाङ काल में चीन की सभ्यता में जो उन्नति हुई उसका विकास उसके बाद भी होता रहा। शाङ सभ्यता चीन के अन्य भागों में भी फैली। नए राज्यों की स्थापना हुई और धर्म, शासन, सामाजिक अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक जीवन, विज्ञान तथा अन्य कई क्षेत्रों में बहुत प्रगति हुई। इसके बारे में तुम अगले अध्याय में पढ़ोगे।

विश्व में सभ्यता का विकास ऊपर वर्णित सभ्यताओं से ही हुआ। इसलिए वे मानव जीवन के विकास में एक निश्चित अवस्था तथा लिखित इतिहास के आरंभ की सूचक हैं।

शाङ कालीन चीनी लिपि के कुछ चिन्ह

प्रत्येक सभ्यता का विकास अपने ढंग से हुआ। हरेक की अपनी कुछ निजी विशेषताएं थीं। किन्तु इन सभी सभ्यताओं की कुछ समानताएं भी थीं। नगरों और राज्यों का उदय भी सभ्यता का लक्षण है। यह चारों सभ्यताओं में पाया गया है। राज्य का अर्थ है एक निश्चित भू-भाग, जिसमें एक ऐसी सरकार हो जो उस राज्य की सीमाओं में रहने वाली सारी जनता पर अपने कानूनों को लागू कर सके।

जब मानव-समाज विकास के एक निश्चित स्तर पर पहुंच गया तभी राज्यों की स्थापना हुई। प्रारंभ में राज्य बहुत छोटे थे। कालांतर में वे बडे हो गए। प्रत्येक राज्य का शासन सामान्यतया एक ही राजा के हाथों में रहता था। शासन करने में अनेक अधिकारी उसकी सहायता करते थे। प्रत्येक राज्य की अपनी सेना थी, जिसमें पेशेवर सैनिक होते थे, जो राजा की आज्ञा का प्रजा से पालन कराने में राजा को सहायता देते थे। धातुओं का ज्ञान होने पर वे विदेशी आक्रमणकारियों से देश की रक्षा करने के लिए और पड़ोसी राज्यों के विरुद्ध युद्ध करने और राज्य के अंदर राजा के आदेशों का पालन कराने के लिए नए और बढ़िया हथियार बनाने लगे।

प्रागैतिहासिक काल में जब मनुष्य को अपना पेट भरने के लिए शायद ही पर्याप्त भोजन मिल पाता था तब मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई विषमताएं नहीं थीं। प्रत्येक व्यक्ति कमोबेश एक ही प्रकार का काम करता था। उनके रहने का ढंग भी कमोबेश एक सा ही था। सभ्यताओं के उदय होने पर सामाजिक वर्ग बने। भिन्न-भिन्न जन समूह भिन्न-भिन्न प्रकार का कार्य करने लगे और उनके रहन-सहन के ढंग में अंतर आ गया। समाज में उच्च और निम्न दो वर्ग थे। व्यक्तियों के अधिकार समाज में उनके वर्ग विशेष के अनुसार थे। राज्य द्वारा बनाए गए कानूनों के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों के अधिकार भी अलग-अलग थे।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि उत्तर पाषाण युग के स्थलों की खुदाई से इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला है कि समुदाय के कुछ सदस्यों को उच्च स्थान प्राप्त था। मगर सभ्यताओं के विकास के साथ-साथ समाज में असमानताएं बढ़ीं। साधारण लोग जैसे कृषक और शिल्पकार, आर्थिक दृष्टि से निम्न स्थिति में थे। विधि-संहिताओं में भी ये असमानताएं स्पष्ट थीं। बहुत से लोगों को दास बनाया गया था। ये सब लोग जो सभी चीजें उत्पन्न करते थे, (जैसे खाद्य पदार्थ, वस्त्र और अन्य वस्तुएं) अपने श्रम का पूरा फल नहीं प्राप्त कर पाते थे। उनके उत्पादन का अधिकांश शासक, पुजारी एवं सरकारी अधिकारी वर्ग द्वारा ले लिया जाता था। शासक सेना को न केवल आक्रमणों से लोगों की रक्षा के लिए तथा दूसरे शासकों के साथ युद्ध करने के लिए रखते थे वरन् उसका प्रयोग प्रजा का अपने अधीन रखने के लिए भी करते थे। इन सभ्यताओं के भवनावशेषों एवं स्मारकों से उस समय समाज में फैली असमानताओं को देखा जा सकता है। शासकों, व्यापारियों एवं सरकारी अधिकारियों के लिए बहुत बड़ी भव्य इमारतें थीं जबकि साधारण लोग गन्दी बस्तियों के मकानों में रहते थे। आवास के इस अन्तर को जो शासक एवं उच्च वर्ग तथा साधारण लोगों के बीच था सभी सभ्यताओं में देखा जा सकता है।

सामाजिक वर्गों के उदय के साथ ही श्रम-विभाजन भी विकसित होने लगा। खाद्यान्न-उत्पादन के काम से मुक्त व्यक्तियों ने विभिन्न प्रकार की कलाओं और शिल्पों में कुशलता प्राप्त कर ली। इस प्रकार अनेक शिल्पों का विकास हुआ जिनमें उच्च कोटि के प्रशिक्षण की आवश्यकता हुई। धातु विज्ञान के विकास के लिए धातुओं को पिघलाने और ढालने के लिए नई तकनीक की आवश्यकता हुई। कुम्हार के चाक के आविष्कार के पश्चात् मिट्टी के बर्तन बनाना प्रमुख उद्योग हो गया। इसी प्रकार, कपड़ा उद्योग तथा कुछ अन्य उद्योगों में बहुत उन्नति हुई। श्रम विभाजन और किसी कार्य में दक्षता प्राप्त करना सभी सभ्यताओं की विशेषता थी।

सभ्यताओं के उदय के साथ ही व्यवस्थित रूप से ज्ञान की वृद्धि हुई। प्रत्येक सभ्यता ने गणित, नक्षत्र विज्ञान और अन्य विज्ञानों के विकास में अपना-अपना योग दिया। प्रत्येक सभ्यता ने अपनी लिपि का विकास किया। इससे मानव-ज्ञान में क्रांतिकारी प्रगति हुई। पहले नए विचारों को इतने मनुष्यों तक पहुंचाना संभव नहीं था। अब विचारों को लिखकर बहुत अधिक मनुष्यों तक पहुंचाया जा सकता था। इन प्रारंभिक सभ्यताओं को समझने के लिए इनकी लिपियों में जो सामग्री हमें मिली है वह बहुत सहायक है। इन सभ्यताओं में धार्मिक विचारों का भी अधिक व्यवस्थित रूप से विकास हुआ है।

चारों ही सभ्यताओं में राज्य के अंदर और दूसरे राज्यों के साथ व्यापार होता था। वास्तव में उनके विकास के लिए व्यापार होना आवश्यक था क्योंकि कोई भी सभ्यता सभी

ज़रूरी वस्तुओं का उत्पादन स्वयं नहीं कर सकती थी। इसके लिए स्थल और जल के द्वारा यातायात के साधनों में सुधार किया गया। पहिए के आविष्कार और यातायात में इसके प्रयोग से प्रारंभिक स्लेज गाड़ी को बदले कर गाड़ी और रथ बनाए गए किन्तु अच्छी सड़कों के अभाव में जमीन पर माल ले जाने के श्रेष्ठ साधन भारवाही पशु ही रहे।

इन सभ्यताओं में विचारों का आदान-प्रदान भी एक महत्वपूर्ण बात थी। एक स्थान पर विकसित तकनीकी ज्ञान अक्सर दूसरे स्थानों पर पहुंच जाता था। विचारों के उद्गम स्थान को निश्चित रूप से जानना कठिन है, क्योंकि जब एक सभ्यता किसी विचार को किसी दूसरी सभ्यता से लेती थी तब उसे परिवर्तन करके स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल बना लेती थी। इन सभी सभ्यताओं ने उस नींव को बनाने में योगदान किया जिस पर बाद में संसार के दूसरे भागों में अन्य सभ्यताओं का विकास हुआ।

अभ्यास

जानने योग्य तथ्य

1. कहां तक प्राकृतिक स्थितियां नदी घाटियों में सभ्यता के विकास के लिए उत्तरदायी थीं?
2. कांस्ययुगीन सभ्यताओं में कौन-सी समानताएं थीं?
3. 'कांस्ययुगीन सभ्यताओं में मनुष्य ने नव पाषाण युग की सभ्यताओं की अपेक्षा बहुत उन्नति कर ली थी'—इस कथन को सत्य सिद्ध करने के लिए प्रमाण दो।
4. निम्नलिखित शब्दों का संबंध इस अध्याय में वर्णित किन सभ्यताओं से था – दिव्यवक्ता रेशम, बेहिस्तून अभिलेख, महान् स्नानागार, ममी,, ज़िगुरात, बेबीलोन, मुहरें, षठ्दाशमिक प्रणाली, स्फिंक्स, हम्मुराबी।
5. लोगों को पंचांग बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? आदि सभ्यताओं के पंचांग एक दूसरे से कैसे भिन्न थे?
6. मैसोपोटामिया, मिस्र और चीन के प्राचीन निवासियों की लिपियों का वर्णन करो।
7. नील और दजला-फरात की घाटियों की सभ्यताओं की अपेक्षा हड़प्पा संस्कृति के विषय में हमारी जानकारी कम क्यों है?
8. हमारे पास इस बात के क्या प्रमाण हैं कि पुरानी सभ्यताओं के जनगण आपस में व्यापार करते थे?

करने के लिए कार्य

1. दीवार पर लगाने के लिए एक बड़ा चार्ट बनाओ। इसके चार भाग करो। प्रत्येक भाग में एक आदि सभ्यता की प्रमुख उपलब्धियों से संबंधित चित्र एकत्र करके लगाओ।
2. 'आदि सभ्यताओं में धार्मिक विश्वास' विषय पर निबंध लिखो। समानताएं और विभिन्नताएं बतलाओ। यह भी बतलाओ कि चारों क्षेत्रों में कौन-कौन से धार्मिक विश्वास एक दूसरे से मिलते थे और क्यों?

सोचने और विचार-विमर्श करने के लिए

1. क्या तुम्हारे विचार से अबू सिम्बल की रक्षा करना उचित था। अपने उत्तर के समर्थन में कारण दो।
2. चित्रात्मक और कीलाकार लिपियों को एक अरसे तक न पढ़ पाने के क्या कारण थे?
3. आदि सभ्यताओं में समाज का विभाजन वर्गों में क्यों हुआ? कारण बतलाओ।
4. पाषाण युगीन जीवन और कांस्ययुगीन सभ्यताओं के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करो।

अध्याय 3

प्राचीन लौहयुगीन सभ्यताएं

(लगभग 1200 ई० पू० – 600 ई०)

शायद तुमने इस बात पर ध्यान दिया होगा कि शुरू की सभी सभ्यताएं जिनके बारे में तुमने अभी पढ़ा, संसार के पूर्वी भाग में स्थित थीं। जिस समय इन सभ्यताओं का इतना अधिक विकास हो चुका था, उस समय संसार के पश्चिमी भाग के अधिकांश लोग इतने सभ्य न हो सके थे। ईसा पूर्व की पहली सहस्राब्दी के प्रारंभ में आसपास ही पूर्व के अन्य भागों में भी सभ्यता फैली। उसी जमाने में भूमध्य सागर के निकट के देशों में भी सभ्यताओं का विकास तेजी से होने लगा।

लोहे की खोज

इस अध्याय में तुमने जिन सभ्यताओं के बारे में पढ़ा है उन्होंने औजार और उपकरण बनाने के लिए तांबे और उसके मिश्रण से बने कांसे का इस्तेमाल किया। इसलिए इन सभ्यताओं को कांस्ययुगीन संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। उनका उदय उन इलाकों में हुआ जहां खेती के लिए बड़े पैमाने पर जंगलों को साफ करने की आवश्यकता नहीं थी और जमीन को आसानी से जोता जा सकता था। मानव जाति के इतिहास में दूसरी महत्वपूर्ण प्रगति लोहे की खोज और इस्तेमाल के कारण हुई। लोहा, तांबे और कांसे की अपेक्षा अधिक सख्त और सस्ता होता है। वह उनकी अपेक्षा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। तांबा एक विरल धातु है और सिर्फ कुछ ही इलाकों में पाया जाता है। वह महंगा है। लोहे की खोज से विविध प्रकार के कृषि औजारों जैसे हल के फालों, हंसियों, कुदालों आदि का बड़े पैमाने पर निर्माण संभव हो गया। लोहे से बनी कुल्हाड़ियों से पेड़ों को काटकर गिराना तथा बड़े पैमाने पर जंगलों को साफ करना संभव हो गया। इस प्रकार खेती के लिए अधिक जमीन उपलब्ध हो गयी। अन्य शिल्पों पर भी लोहे का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा क्योंकि उसकी सहायता से विविध प्रकार के औजार और उपकरण बनने लगे, जिनका इस्तेमाल विशेष प्रकार के कार्यों के लिए होने लगा। पुरातत्वविदों ने लोहे से बनी विविध प्रकार की वस्तुएं पायी हैं जिनमें हथौड़े, निहाई, चिमटे, कील, रुखानी, आरी और गोल रुखानी शामिल हैं। इनसे स्पष्ट है कि अनेक प्रकार के विशेष कौशल वाले कार्य किये जाते थे। लड़ाई में लोहे के हथियारों के इस्तेमाल बहुत अधिक हैं।

लोहे के इस्तेमाल से कतिपय समुदाय 2000 ई० पू० के लगभग परिचित हो गए थे मगर 1400 ई० पू० के करीब ही लोगों ने लोहे की गढ़ाई का काम सीखा। लोहा बनाने की तकनीक के इस्तेमाल का श्रेय हिटाइट्स को है जो एशिया माइनर (तुर्की) में रहते थे। घोड़ा पालने का श्रेय भी उन्हीं को है। कांस्ययुगीन संस्कृतियों में घोड़े नहीं पाले जाते थे।

लौह युग 1200 ई० पू० के आसपास उस समय प्रारंभ हुआ जब फिलीस्तीन, सीरिया, तुर्की, इराक, ईरान और यूनान में लोहे के औजारों का इस्तेमाल होने लगा। लौह युग 500 ई० पू० के आसपास यूरोप के एक बड़े भाग में फैल गया था।

भारत में लौहयुग 1000 ई० पू० के आसपास आरंभ हुआ। इस काल के बाद ही गंगा-यमुना के दोआब के मैदानों में बस्तियां बनीं। ऐसी धारणा है कि गंगा के मैदानों में लोहे के उपकरणों का प्रयोग घने जंगलों को साफ करने

के लिए किया गया। भारत के आदि लौहयुग के जो भौतिक अवशेष पाये गये हैं उनसे संस्कृति के उच्च स्तर का संकेत नहीं मिलता। फिर भी छठी शताब्दी ई० पू० में हम अनेक शहरी केन्द्रों की स्थापना पाते हैं। उनमें से कुछ बाद में चलकर शक्तिशाली साम्राज्य बन गये।

लोहे की खोज और इस्तेमाल से सभ्यता के विकास तथा संसार के नये इलाकों में उसके प्रसार में सहायता मिली। उत्पादक कार्य दास करते थे जो युद्धबंदी या ऋण चुकाने में असमर्थ होते थे। सामान्यतया ऐसा यूनानी और रोमन सभ्यताओं में देखा गया। भारत में समाज जातियों में बंटा था। नगरों का उदय, प्रभावशाली स्मारक, ललित कलाएं शासक वर्गों की समृद्धि, राज्यों की विशाल सेनाएं—इन सब का आधार वास्तविक उत्पादकों का शोषण था, जिन्हें समाज में बहुत नीचा स्थान दिया गया था। राजा, कुलीनतंत्र के सदस्य और उच्चवर्ग राजप्रासादों में विलासमय जीवन व्यतीत करते थे परन्तु आम जनता की जीवनदशाओं में शायद ही कोई प्रत्यक्ष सुधार दिखलायी देता था। प्राविधिक ज्ञान में सभी सुधारों के बावजूद अधिकांश लोग उसी प्रकार के मकानों में रहते थे जिस प्रकार के मकानों में वे उत्तर-पाषाण युग में रहते थे। इन सभ्यताओं के अनेक स्थलों पर खुदाई से यह बात स्पष्ट है। आम जनता के मकानों और शासकों तथा उच्च वर्गों के मकानों के बीच भारी गुणात्मक अन्तरों को कोई भी देख सकता है।

लोहे की खोज और प्रयोग से जो सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन आया वह था—सभ्यता का प्रसार। यह इसलिए संभव हो गया कि विश्व के अनेक नए क्षेत्रों में अब खेती की जा सकती थी। सभ्यताओं के प्रसार के साथ पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में और संसार के अनेक हिस्सों में नगरों का उदय हुआ। शासक और उच्च वर्गों के लोग इन नगरों में रहते थे। ये स्थान उन अनेक शिल्पों के केन्द्र भी थे, जिनका उदय सभ्यता के साथ हुआ। सभ्यता के प्रसार के परिणामस्वरूप विश्व के विभिन्न भागों के बीच व्यापार भी आरंभ हुआ और इस प्रकार एक स्थान पर बनी वस्तुओं का विनिमय दूसरी जगहों पर बनी वस्तुओं के साथ होने लगा। परिवहन के साधनों, विशेषकर जहाजरानी, में सुधार हुआ। व्यापार के विस्तार से एक और परिवर्तन हुआ। पहले व्यापार वस्तु-विनिमय के आधार पर होता था। अब अनेक सभ्यताओं में मुद्रा का प्रचलन आरम्भ हुआ। इससे वस्तुओं की खरीद-बिक्री पहले की अपेक्षा अधिक आसान हो गयी। मुद्रा के अत्यधिक प्रयोग से स्पष्ट हो गया कि वस्तुओं का उत्पादन अब स्थानीय समुदाय के लिए नहीं बल्कि बहुत बड़े बाजारों के लिए होने लगा।

इन सभ्यताओं का अध्ययन करते समय यह याद रखना चाहिए कि मानव इतिहास का यह काल असंख्य लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थानों पर जा बसने या प्रवास करने का साक्षी रहा है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न जनसमूह नई-नई जगहों पर जाते रहे और वहां बस कर वहां पहले से बसे हुए लोगों में घुल-मिल जाते रहे। इस प्रकार सदियों तक आपस में घुलने-मिलने के फलस्वरूप हर स्थान की आबादी का ढांचा ही बदल गया। इसका सभ्यता की बढ़ोतरी पर भी जबरदस्त प्रभाव पड़ा। किसी भी नई जगह आकर बस जाने वाले नए जनसमूह के साथ उसकी अपनी परंपराएं आईं और अपना ज्ञान भी आया और इसका उस देश की संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा जहां आकर वे बसे। विभिन्न सभ्यताओं के आपसी संबंध बढ़े और जो पारस्परिक असर इन सभ्यताओं ने दिए-लिए, मानव इतिहास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। यह व्यापार द्वारा संभव हुआ। व्यापार बढ़ा क्योंकि विभिन्न सभ्यताओं के मध्य एक दूसरे की जरूरतें पूरी करने के लिए इसकी आवश्यकता थी और सड़क तथा जल यातायात के साधनों में निरंतर सुधार हो रहे थे। युद्धों ने भी संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य किया। राज्यों के बीच की सीमाएं उन दिनों पक्की नहीं हुई थीं और प्रायः ही बदला करती थीं। विजेता जातियां अपने साथ अपनी सभ्यता की जानकारी और परंपराएं नई पराजित जगहों तक पहुंचाया करती थीं। इस प्रकार इस काल की अधिकांश सभ्यताएं लोगों और उनकी परंपराओं के घुलने-मिलने से विकसित हुईं।

भारत की प्राचीन सभ्यता

आर्यों का आगमन

2000 ई० पू० के लगभग उन लोगों का जो शायद कैस्पियन सागर क्षेत्र के मूल निवासी थे, यूरोप और एशिया के विभिन्न भागों में जाना आरंभ हुआ। इन लोगों को भारत-यूरोपीय भाषा-भाषी कहा जाता है क्योंकि वे भारत-यूरोपीय भाषा-परिवार की भाषाओं को बोलते थे। वे आर्य के नाम से जाने जाते हैं। इन लोगों की एक शाखा जिसे भारतीय आर्य कहा जाता है 1500 ई० पू० के आसपास भारत आयी। उनके मुख्य व्यवसाय पशुपालन

और कृषि थे और उन्हें नगर-संस्कृति का कोई अनुभव नहीं था।

आर्य लोग कबीलों में रहते थे और संस्कृत बोलते थे, जो भारत-यूरोपीय भाषाओं में से एक है। वे प्रकृति की शक्तियों—वर्षा और विद्युत के देवता इन्द्र, वायु के देवता मरुत और सूर्य की पूजा करते थे। इन आर्यों का विश्वास था कि ये देवता वर्षा करते, उनकी फसलों को पकाते और शत्रुओं को पराजित करने में उनकी सहायता करते हैं। इन देवताओं की प्रशंसा में लिखे हुए सूक्तों का संग्रह ऋग्वेद में है।

भारत में आर्य लोग स्थायी रूप से सबसे पहले पंजाब में आकर बसे। ऋग्वेद के सूक्तों की रचना इसी प्रदेश में हुई। पंजाब से वे पूर्व की ओर बढ़े और सारी गंगा की घाटी में फैल गए। फिर वे दक्षिण की ओर विंध्याचल तक पहुंच गए। इसके बाद वे भारत के अन्य भागों में फैले। उन्होंने यहां के आदि निवासियों से वैवाहिक संबंध किए। इस प्रकार जिस भारतीय संस्कृति का विकास हुआ उसमें वैदिक और प्राक् वैदिक संस्कृतियों का समन्वय हुआ।

जब आर्य लोग भारत में आकर बसे, वे छोटे-छोटे कबीलों में बंटे हुए थे जो आपस में लड़ते रहते थे। उन्हें यहां के मूल निवासियों के विरुद्ध भी युद्ध करने पड़ते थे। कालांतर में छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए। इनमें कुछ में राजा और कुछ में अभिजात वर्ग के व्यक्ति शासन चलाते थे। छठी शती ई० पू० में ये राज्य बड़े राज्यों में परिणत हो गए। इनमें कुछ राजतंत्र और कुछ गणराज्य थे। ये सोलह राज्य महाजनपद कहलाते थे। इस समय मगध (दक्षिणी बिहार) का प्रदेश बहुत महत्वपूर्ण हो गया। कुछ दिनों पश्चात् मगध इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने साम्राज्य का रूप धारण कर लिया। इसी समय ईरानियों ने भारत पर आक्रमण किया। फलस्वरूप इन दोनों देशों में घनिष्ठ राजनैतिक व सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो गए।

साम्राज्यों का काल

मगध के राजा बिम्बिसार और अजातशत्रु ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए अन्य राज्यों से संघर्ष किया। चौथी शती ई० पू० में नंद वंश ने मगध में राज किया। उनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी जिसे आजकल पटना कहते हैं। चौथी शती ई० पू० के अंतिम चरण में नंद वंश के राजाओं को सिंहासन से हटाकर मौर्य वंश के राजाओं ने मगध में शासन किया। इसके दो कारण थे, एक तो सिकंदर के आक्रमण के कारण छोटे राज्यों की शक्ति कम हो गई थी,

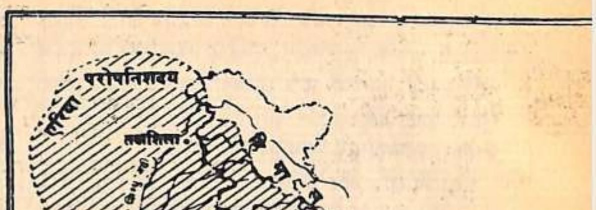

© Government of India Copyright, 1986
Based upon Survey of India map with the permission of the Su
General of India
The territorial waters of India extend into the sea to a dista
twelve nautical miles measured from the appropriate base l

अशोक का साम्राज्य

दूसरे ईरानी साम्राज्य का पतन हो गया था। चंद्रगुप्त मौर्य ने इस अव्यवस्थित परिस्थिति का लाभ उठाया और अपने परामर्शदाता कौटिल्य की सहायता से भारत में सबसे पहले बड़े साम्राज्य की स्थापना की। चंद्रगुप्त मौर्य तथा उसके दो महान उत्तराधिकारियों—बिंदुसार तथा अशोक -के शासन काल में, छोर के दक्षिणी भाग के सिवाय लगभग संपूर्ण भारत मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत आ गया था। सिकंदर के उत्तराधिकारी सैल्यूकस की पराजय के पश्चात् एरिया,

आरकोशिया और परोपनिशदय के प्रदेश साम्राज्य के अंग बन गए। मौर्य साम्राज्य का अधिकतम विस्तार मानचित्र में दिखलाया गया है।

मौर्य काल (322 से 184 ई० पू०) में भारतीय जनता के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। बौद्ध धर्म जिसका उदय पहले ही हो गया था, इस काल में सर्वत्र फैला। यही इस काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी।

अशोक के राज्य काल के पश्चात् मौर्य साम्राज्य का पतन होने लगा। इस समय बहुत छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए और विदेशियों के आक्रमण हुए। विदेशियों में सबसे पहले यूनानियों के आक्रमण हुए जो बैक्ट्रिया के शासक थे। यूनानियों ने पंजाब और सिन्ध के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया। यूनानी संपर्क का भारतीय संस्कृति पर स्थायी प्रभाव पड़ा। कला की गांधार शैली का विकास इसी संपर्क का परिणाम था। इस युग का सबसे महान् यूनानी राजा मिनैन्दर (मिलिन्द) था। उसने दूसरी शती ई० पू० में राज किया। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ 'मिलिन्द पंह' में उसके प्रश्नों और एक बौद्ध दार्शनिक द्वारा दिए गए उत्तरों का वर्णन मिलता है।

यूनानियों के आक्रमण के बाद शकों के आक्रमण हुए जिन्होंने बैक्ट्रिया के यूनानी राज्य को समाप्त कर पश्चिमी भारत में मालवा तक अधिकार कर लिया। एक शक राजा रुद्रदमन था जो शिव का उपासक था, जैसा कि उसके नाम से पता चलता है। उसने सौराष्ट्र में सिंचाई के महत्वपूर्ण काम किए। दूसरे आक्रमणकारियों की भांति शकों ने भी भारतीय संस्कृति को अपना लिया।

मध्य एशिया से आने वाले आक्रमणकारियों में कुषाण भी थे जो ईसा की पहली शती में आए। कुषाण राजाओं में सबसे महान् कनिष्क था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि 78 ई॰ में उसी ने शक संवत् का प्रारंभ किया। कनिष्क ने भारत से मध्य एशिया तक फैले हुए अपने विस्तृत साम्राज्य में पुरुषपुर (पेशावर) को राजधानी बनाकर लगभग 40 वर्ष तक राज किया। कनिष्क के साम्राज्य के परिणामस्वरूप ईरान, यूनान और रोम की संस्कृतियों के कुछ तत्व भारतीय संस्कृति के अंग बन गए। इसके कारण भारत और अन्य देशों के साथ होने वाले व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला। कनिष्क ने बौद्ध धर्म की महायान शाखा के प्रसार में योग दिया। उसी के कारण बौद्ध धर्म का इस काल में मध्य एशिया में प्रचार हुआ और वहां से यह चीन, कोरिया और जापान पहुंचा। तीसरी शती ईसवी में कुषाण साम्राज्य का पतन हो गया।

ई० पू० तीसरी शताब्दी के दौरान दक्षिण भारत में तीन राज्य थे। पाण्ड्य अपनी राजधानी मदुरा से भारत के सुदूर दक्षिण और दक्षिण-पूर्व भागों पर शासन करते थे। चोल कारोमंडल तट पर शासन करते थे। वर्तमान केरल के अधिकांश पर चेरों का शासन था। दक्कन और मध्य भारत में मौर्यों के बाद सबसे महत्वपूर्ण शासन सातवाहनों का था। **इन राज्यों को मानचित्र में खोज निकालो।** गौतमीपुत्र शातकर्णी के राज्यकाल (106 ई० से 130 ई०) में सातवाहन साम्राज्य का चरमोत्कर्ष हुआ और तीसरी शती ई० में इसका पतन वाकाटक साम्राज्य के उदय होने पर हुआ। किन्तु सातवाहन काल की सांस्कृतिक परंपराएं राष्ट्रकूटों, चालुक्यों और पल्लवों के राज्य काल में चलती रहीं। पल्लव राज्य की स्थापना तीसरी शती ई० में हुई और उसकी राजधानी कांची थी। इसी काल में उड़ीसा में खारवेल नाम का शक्तिशाली राजा हुआ।

इन राज्यों में भारत की सांस्कृतिक एकता का विकास हुआ। जब ये सभ्यताएं फूली-फलीं, तब रीति-रिवाजों अथवा सांस्कृतिक विशिष्टताओं में ऐसा कुछ न था जिस पर आर्य अथवा द्रविड़ ठप्पा लगाया जा सके। उदाहरण के लिए कांची संस्कृत शिक्षा तथा बौद्ध और जैन धर्मों का मुख्य केन्द्र था। अजंता और एलोरा के गुफा-मंदिरों और चित्रों का बनाना भी सातवाहन काल में प्रारंभ हुआ। इन राज्यों ने रोम के साम्राज्य, दक्षिण-पूर्व एशिया, पश्चिमी एशिया और चीन के साथ व्यापारिक संबंधों का भी विकास किया। इस काल में विदेशी व्यापार का भारतीयों के आर्थिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। मद्रास के निकट अरिक मेडु रोम के व्यापार का मुख्य केन्द्र था। वहां जो उत्खनन हुए हैं, उनसे प्राचीन काल में भारत और रोम के व्यापारिक संबंधों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के साथ व्यापार के परिणामस्वरूप वहां अनेक भारतीय बस्तियां भी बनीं जिन्होंने उन देशों के राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

जब दक्षिण भारत में यह विकास हो रहा था, उस समय उत्तर भारत में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। चौथी शताब्दी के प्रारंभ में चंद्रगुप्त प्रथम ने मगध में गुप्त साम्राज्य की स्थापना की। उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने प्रायः समस्त उत्तर भारत पर भी आक्रमण किया और अपना

प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अश्वमेघ यज्ञ किया। उसके उत्तराधिकारी चंद्रगुप्त द्वितीय ने और विजयें भी कीं। उसके राज्य काल के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का पतन होने लगा। यद्यपि गुप्त साम्राज्य इतना विस्तृत न था जितना कि मौर्य साम्राज्य तथापि गुप्त काल में प्राचीन भारतीय संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई। गुप्त साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण पांचवीं शताब्दी ईसवी में हूणों के आक्रमण थे। छठी शताब्दी के आते-आते यह राज्य समाप्त हो चुका था।

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत फिर छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया, जो सर्वशक्तिशाली बनने के लिए आपस में लड़ते रहते थे। कुछ समय के लिए दिल्ली के निकट थानेश्वर के राजा हर्ष ने उत्तर भारत के बड़े भाग पर अधिकार करके इसे संगठित कर लिया किन्तु वह दक्षिण के चालुक्य राजाओं की बराबरी न कर सका। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उत्तर भारत में अनेक छोटे-छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए। यद्यपि गुप्त राजाओं के बाद अनेक छोटे-छोटे निर्बल राज्य स्थापित हुए तथापि इस काल में भी सांस्कृतिक उन्नति होती रही।

प्राचीन भारत में प्रशासन और सरकार

वैदिक काल में अधिकतर राज्यों में राजतंत्र प्रणाली थी। राजा निरंकुश शासक नहीं होता था क्योंकि राज्य का स्वरूप अब भी जन-जातीय था।

जब राज्य बड़े हो गए, तो राजा की शक्ति भी बढ़ गई, किन्तु वह निरंकुश नहीं हुआ। राजा धर्म का सेवक समझा जाता था। धर्म का अभिप्राय उन सभी नियमों से था, जिनका मूल स्रोत ईश्वरीय समझा जाता था और जो रीति-रिवाजों और परंपराओं पर आधारित होते थे।

जब साम्राज्य की स्थापना हुई, भारत की राजनीतिक व्यवस्था में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। गणराज्यों में पहले अधिकतर अभिजात वर्ग के व्यक्ति शासन चलाते थे। ये गणराज्य साम्राज्यों के युग में नष्ट हो गए। राजा की शक्ति और विशेषाधिकारों में वृद्धि हो गई। वह अब शासन का सर्वोच्च अधिकारी था और समस्त शासन पद्धति का स्वयं संचालन करता था। राज्य के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति भी वह स्वयं करता था। राजा के अधिकारों पर अब किसी प्रकार का अंकुश न रहा। इसी काल में संसार के विजेता अर्थात् चक्रवर्ती राजा का आदर्श भी विकसित हुआ। परंतु इस आदर्श में विश्वविजय की भावना ही निहित न थी, इसका अर्थ यह भी था कि चक्रवर्ती राजा धर्म के अनुसार राज्य का शासन चलाए।

मौर्यकाल में लगभग समस्त भारत का शासन एक राजा चलाता था। प्रांतों में जो राज्यपाल शासन चलाते वे भी साधारणतया राजकुमार होते थे। राज्यपाल की सहायता के लिए अनेक अधिकारियों का अधिक्रम था। राज्य का उद्देश्य साम्राज्य की रक्षा के लिए सुव्यवस्थित शासन चलाना ही न था, अपितु समाज-कल्याण के कार्य करना भी था। अर्थशास्त्र में राजा का जो आदर्श लिखा है उसके अनुसार 'प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के कल्याण में उसका कल्याण निहित है।'

कुषाणों का राज्य विस्तृत था। उन्होंने ऐसी शासन-व्यवस्था विकसित की जिसमें प्रांतों की प्रायः स्वायत्त इकाइयां थीं। वे प्रांत मिलकर एक संघीय राज्य बनाते थे जिसमें केन्द्र की शक्ति बहुत कम हो गई। कुषाण राजा अपने को 'राजाधिराज' कहते थे। सातवाहन राज्य में मौर्यों की केन्द्र प्रधान शासन पद्धति चलती रही क्योंकि उनके प्रदेश पहले मौर्य साम्राज्य का भाग रह चुके थे। गुप्त शासन-पद्धति प्रांतों के माध्यम से पूर्णतया सुव्यवस्थित थी।

राजवंशों में बार-बार परिवर्तनों से ऊपरी प्रशासनिक व्यवस्था प्रभावित हुई परन्तु गांव का प्रशासन कमोबेश ज्यों का त्यों बना रहा। ग्राम स्वायत्त इकाई के रूप में विकसित हुए। गांव के मुखिया और बड़े-बूढ़ों को गांव में शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए पूर्ण अधिकार मिले थे। वे लोक-कल्याण के कार्य करते, स्थानीय झगड़े निपटाते और राज्य के करों को इकट्ठा करते थे।

सामाजिक और आर्थिक दशा

आर्य जब भारत में आए तब उनका मुख्य व्यवसाय पशु-पालन था। पशु ही उनके मुख्य धन थे। मनुष्यों का मूल्य भी पशुओं में आंका जाता था। किन्तु धीरे-धीरे कृषि एक महत्वपूर्ण व्यवसाय हो गया। वस्तुतः ज्यों-ज्यों वे गंगा की घाटी में फैले, त्यों-त्यों उस क्षेत्र में कृषि का विस्तार हुआ। विस्तृत जंगलों को काटकर साफ किया गया। लोहे के इस्तेमाल ने भूमि को खेती योग्य बना दिया।

कृषि के साथ-साथ अन्य व्यवसायों का भी विकास हुआ। गांव के जीवन और अर्थतंत्र में बढ़ई के कार्य का विशेष महत्व था, इसलिए बढ़ई का बड़ा आदर किया जाता था। तांबे, कांसे और लोहे का काम करने वालों का

भी महत्व था। कुम्हार, चमड़ा रंगनेवाले और जुलाहे आदि अन्य बहुत से कारीगर भी गांव में थे। जब इन व्यवसायों का विकास हुआ तो कुछ व्यक्ति इन कामों में दूसरों की अपेक्षा अधिक कुशल हो गए और उनकी बनाई हुई वस्तुओं की मांग गांव से बाहर भी होने लगी। इस प्रकार व्यापार का प्रारंभ हुआ।

600 ई० पू० के लगभग व्यापार और उद्योगों के केन्द्र के आसपास अनेक नगर स्थापित हुए। इनमें से कुछ राजगृह, चंपा, काशी, कौशांबी, तक्षशिला, भृगुकच्छ और वैशाली थे। ईरानी, यूनानी और अन्य विदेशियों के आक्रमणों के फलस्वरूप पश्चिमी देशों और मध्य एशिया के साथ भारत के व्यापार में वृद्धि हुई। भारतीयों ने जब दक्षिण-पूर्व के देशों में उपनिवेश बसाए तो उन देशों के साथ भी व्यापार को प्रोत्साहन मिला जैसे बर्मा के साथ। सूती कपड़ा, हाथी-दांत और लोहे का काम जैसे अनेक उद्योगों का विकास हुआ। भारत में आर्यों के आने से पहले लोहे का प्रयोग नहीं किया जाता था। जो कारीगर किसी विशेष प्रकार की वस्तुएं बनाते थे, उन्होंने अपनी श्रेणियां बना ली थीं। ये श्रेणियां ही कालांतर में उप-जातियां बन गईं। बाद में दक्षिण भारत के राज्यों और रोम साम्राज्य के बीच व्यापारिक संबंधों का विकास हुआ।

गुप्त साम्राज्य के पतन और पश्चिमी रोम साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने के पश्चात् रोम के साथ व्यापार कम हो गया। किन्तु दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों और अफ्रीका के पूर्वी तट से व्यापार में वृद्धि हो गई। इसी काल में इस भावना का उदय हुआ कि समुद्र द्वारा विदेश-यात्रा से **मनुष्य अपवित्र हो जाता है और जो अपनी जातीय पवित्रता बचाए रखना चाहते हैं उन्हें ऐसी यात्रा नहीं करनी चाहिए।** इस भावना के कारण व्यापार की कुछ न कुछ हानि अवश्य हुई होगी।

प्राचीन काल से अब तक भारतीय सामाजिक व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता जाति प्रथा रही है। इसकी शुरुआत वैदिक काल के प्रारंभ में ही हो गई थी। जब आर्य भारत में आए तो वे तीन मुख्य वर्गों में विभाजित हो गए थे। ये तीन वर्ग योद्धाओं, पुरोहितों और शेष व्यक्तियों के थे। एक ही परिवार के सदस्य भी अलग-अलग व्यवसाय कर सकते थे। किन्तु जब आर्यों ने भारत के आदि निवासियों को जीतना आरंभ किया तो समाज को भी कड़ाई से बांटा जाने लगा। आर्यों ने अपना विभाजन क्षत्रिय (योद्धा), ब्राह्मण (पुरोहित) और वैश्य (कृषक) वर्णों में कर लिया। भारत के अनार्य निवासियों को आर्य लोग 'दास' कहते थे। इन दासों की गणना शूद्र वर्ण में की गई। बाद में आर्य तथा दासों के विवाहों से उत्पन्न संतान भी शूद्र वर्ण में रखी गई।

आरंभ में ब्राह्मण और क्षत्रियों का समाज में समान स्तर था, बाद में जैसे-जैसे कर्मकांड का महत्व बढ़ा, कर्मकांड करने वाले ब्राह्मणों का भी समाज में स्तर ऊंचा हो गया। वैश्यों में से बहुत से खेती करना छोड़ जमींदार और व्यापारी हो गए। बाद में कृषि कार्य अधिकतर शूद्रों के द्वारा किया जाने लगा।

वैदिक साहित्य में भी समाज का जातियों में विभाजन धर्मानुकूल माना गया है। वैदिक साहित्य के अनुसार ब्राह्मण की उत्पत्ति सृष्टा (ब्रह्मा) के सिर से, क्षत्रिय की उसकी भुजाओं से, वैश्य की उसकी जंघाओं से और शूद्र की उत्पत्ति उसके पैरों से हुई। बाद में लिखे गए गृह-सूत्रों ने जाति प्रथा को पहले से भी कड़ा बना दिया। धर्मशास्त्रों ने इस कठोरता और विषमता की प्रक्रिया को और भी आगे बढ़ाया। विभिन्न जातियों के लिए अलग-अलग नियम बनाए गए। अपराधी को जाति के अनुसार एक ही अपराध के लिये कम या अधिक दंड दिया जाता था।

धर्म शास्त्रों ने जाति प्रथा को पूर्ण रूप से आध्यात्मिक पवित्रता का अंग मान लिया। शूद्रों के साथ व्यवहार करने के संबंध में बहुत कठोर नियम बनाए गए। किन्तु कुछ बातों में बहुत कट्टरता नहीं आई थी। उच्च वर्ण का पुरुष निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता था। किन्तु कुछ समय बाद यह प्रथा भी लुप्त हो गई। जाति से बहिष्कृत व्यक्तियों का एक अलग वर्ण बन गया। चीनी यात्री फाह्यान गुप्त काल में भारत आया था, उसने इसके विषय में लिखा है। वे गांव के एक अलग भाग में रहते थे और उनके दिख जाने मात्र से कुछ ऊंची जातियों के लोग अपने को अपवित्र मानते थे। उनकी दशा शूद्रों की दशा से भी बहुत गिरी हुई थी। चार जातियों वाली इस व्यवस्था में भी प्रत्येक जाति में अनेक उप-जातियां थीं। ये उप-जातियां व्यवसायों पर आधारित थीं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती थीं। हिन्दू समाज में इन उप-जातियों का महत्व बाद में बहुत बढ़ गया क्योंकि इन्हीं के द्वारा व्यवसाय और विवाह संबंधी नियम निर्धारित किए जाते थे।

जैन और बौद्ध धर्मों के उदय और आक्रमणकारी विदेशियों के भारत में बस जाने के कारण जाति प्रथा के नियमों में कुछ ढील आ गई। किन्तु दसवीं शताब्दी में तुर्कों के आक्रमण के समय जाति प्रथा के नियम पूर्ण कठोरता से

लागू किए जाते थे। कालांतर में कुछ परिवर्तन हुए किन्तु जाति प्रथा के टूटने की प्रक्रिया केवल आधुनिक काल में प्रारंभ हुई।

जाति प्रथा ने प्राचीन भारतीय समाज को स्थायित्व प्रदान किया। उसने देशी और विदेशी—दोनों तत्वों का समावेश प्राचीन भारतीय समाज में आसानी से कर दिया क्योंकि उनके लिए यहां के जाति अधिक्रम में स्थान था। यह उल्लेखनीय है कि अनेक प्राचीन समाजों में जो नग्न शोषण उन दिनों चल रहा था, जैसे कि गुलामी की प्रथा, वह प्राचीन भारत में नहीं था।

प्राचीन काल में भारतीय समाज पितृ सत्तात्मक सिद्धांत पर आधारित था। सबसे बड़ी उम्र वाला पुरुष ही परिवार का मुखिया होता था। पुत्र, पुत्रवधू और उनके बालक अपने माता-पिता के साथ रहते थे। साधारणतया लोग एक ही विवाह करते थे। वैसे बहु-विवाह की अनुमति थी और राजा तथा धनी व्यक्ति कई पत्नियां रखते थे। कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें एक स्त्री के कई पति होते थे। दक्षिण भारत में कुछ समाज मातृ सत्तात्मक थे।

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन आश्रम-व्यवस्था पर आधारित था। जीवन को चार आश्रमों में बांटा गया था। (1) ब्रह्मचर्य—वह काल जब विद्यार्थी अध्यापक से धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करता था। (2) गृहस्थ—वह काल जब व्यक्ति विवाहित जीवन बिताता था। (3) वानप्रस्थ—जब व्यक्ति त्याग का जीवन बिताता और गृहस्थी के बंधनों से मुक्त होने का प्रयत्न करता था। (4) संन्यास—जब मनुष्य अपने परिवार और समाज को छोड़कर तपस्वी के रूप में पूर्ण आत्मसंयम का जीवन बिताता था। यह आश्रम-व्यवस्था निम्न वर्ग पर लागू नहीं की जाती थी क्योंकि उन्हें धार्मिक ग्रंथ पढ़ने का अधिकार न था। अन्य सबके लिए यह जीवन का नियम था। किन्तु यह कहना कठिन है कि कितने मनुष्य इस व्यवस्था का पालन करते थे।

स्त्रियां पैतृक संपत्ति की स्वामिनी नहीं हो सकती थीं। वैसे बहुत सी बातों में पूर्ण स्वतंत्रता थी। विधवा को पुनर्विवाह करने का अधिकार था। साधारणतया वह देवर के साथ विवाह कर सकती थी। कुछ बातों में स्त्रियों का स्तर, बाद में, शूद्रों के समान हो गया। परिवार में पुत्रियों की अपेक्षा पुत्रों का अधिक मान होने लगा।

धर्म और दर्शन

प्राचीन काल में अनेक भारतीय धर्मों और दर्शन प्रणालियों का विकास हुआ। हड़प्पा संस्कृति के धार्मिक विश्वासों और आर्यों से पहले भारत में रहने वाले लोगों के धार्मिक विश्वासों का समन्वय होने पर विविध प्रकार के धार्मिक विश्वासों तथा प्रथाओं का विकास हुआ जो सब मिलाकर हिन्दू धर्म का अंग माने जाते हैं।

आर्यों के धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं का वर्णन वेदों में है। प्रकृति के विभिन्न रूपों को देवता मानकर पूजा जाता था, किन्तु कोई मंदिर नहीं थे। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए आर्य यज्ञ करते थे। यज्ञ के दौरान किये जाने वाले कर्मकांड की जटिल प्रणाली का विकास हुआ।

इस काल में दर्शन की विभिन्न शाखाओं का भी उद्भव हुआ। इनमें से, वेदांत, मीमांसा, सांख्य, योग, न्याय और वैशेषिक कालक्रम से भारतीय दर्शन की छः शाखाएं बन गईं। वेदान्त दर्शन उपनिषदों पर आधारित था। उसने एक लम्बे समय तक भारतीय चिंतन को बहुत प्रभावित किया। उसने अनेक सूक्ष्म विचारों का विवेचन किया, जो विश्व के स्वरूप आत्मा के अस्तित्व, और विश्व और आत्मा के संबंधों के बारे में थे। भारतीय दर्शन की कुछ शाखाएं अनीश्वरवादी थीं।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के आसपास नई चिन्तन धाराओं ने जन्म लिया। वे यज्ञ और वैदिक धर्म के अन्य कर्मकाण्डी कृत्यों के विरुद्ध थे। वैदिक कर्मकाण्ड में अब पहले जैसी सादगी नहीं रह गई थी। इनमें जैन धर्म और बौद्ध धर्म अधिक सशक्त थे और प्रमुख धर्मों के रूप में विकसित हो चुके थे। भारतीय संस्कृति के विकास में उनकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही।

जैन धर्म

जैसा कि हम जानते हैं, सबसे पहले जैन धर्म का उपदेश वर्धमान महावीर ने दिया। वे छठी शताब्दी ई० पू० में हुए। जैनियों का विश्वास है कि महावीर से पहले 23 अन्य धार्मिक नेता हुए थे। उन्हें वे तीर्थंकर कहते हैं। महावीर अंतिम और चौबीसवें तीर्थंकर थे।

जैनियों के अनुसार प्रत्येक पदार्थ में, चाहे वह पत्थर हो, वृक्ष हो, मनुष्य हो या पशु हो, आत्मा विद्यमान है। इसी कारण वे अहिंसा पर बहुत बल देते हैं और इस बात का प्रयत्न करते हैं कि किसी जीव को कष्ट न पहुंचे और उसकी हत्या न हो।

महावीर ने सिखलाया कि सम्यक् विश्वास, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचार वे साधन हैं जिनके द्वारा कोई भी

व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

महावीर की यज्ञों और वेदों में आस्था नहीं थी। जैन धर्म में कर्म-कांड और आचार कर्म के कोई निर्धारित नियम नहीं हैं। इसमें सदाचार और सद्व्यवहार पर बल दिया गया है।

बाद में चलकर जैन लोग दो संप्रदायों—श्वेताम्बर और दिगम्बर—में बंट गये। श्वेताम्बर सफेद कपड़े पहनने लगे और दिगम्बर आकाश को ही अपना वस्त्र समझकर नंगे रहने लगे।

बौद्ध धर्म

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में एक और महान् धार्मिक नेता—गौतम बुद्ध—हुए। वे बौद्ध धर्म के प्रवर्तक थे। उनकी जीवन कथा गाथाओं, साहित्यिक ग्रंथों, चित्रों और मूर्तियों में मिलती है।

बुद्ध ने निम्नलिखित चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया—1. इस संसार में दुःख हैं। 2. इस दुःख का कारण है। 3. यह कारण इच्छा या वासना है। 4. वासना को नष्ट करके दुःख को दूर किया जा सकता है। आवागमन के बंधन से मुक्ति या दुःख की समाप्ति के लिए मनुष्य को "सद्मार्ग" से परिचित होना चाहिए जिसे उन्होंने अष्टांगिक मार्ग कहा। इस अष्टांगिक मार्ग में निम्नलिखित आठ बातें सम्मिलित हैं: (1) सम्यक् दृष्टि, (2) सम्यक् संकल्प, (3) सम्यक् वांक्, (4) सम्यक् कर्म, (5) सम्यक् आजीव, (6) सम्यक् व्यायाम (श्रम), (7) सम्यक् स्मृति और (8) सम्यक् समाधि।

बुद्ध ने मध्यम मार्ग के महत्व पर बल दिया। उनके अनुसार पवित्र जीवन बिताने के लिए मनुष्य को दोनों प्रकार की अति से बचना चाहिए। न तो उग्र तप करना चाहिए और न ही सांसारिक सुखों में लगे रहना चाहिए। महावीर की भांति बुद्ध ने भी अहिंसा का उपदेश दिया, किन्तु उन्होंने इस पर इतना बल नहीं दिया जितना महावीर ने।

बुद्ध ने वेदों को प्रमाण नहीं माना और जाति-प्रथा पर आधारित सामाजिक विषमताओं को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार कोई भी व्यक्ति संघ में शामिल हो सकता था।

बौद्ध संघ बहुत ही अनुशासनबद्ध और जनतांत्रिक संगठन थे। वर्ष भर बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां अपने धर्म के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए घूमते रहते थे। केवल वर्षा ऋतु में ही वे विहारों में रहते थे।

सम्राट अशोक ने भारत और अन्य देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार में सहायता दी। कालक्रम में यह धर्म श्री लंका, बर्मा, पश्चिमी और मध्य एशिया, तिब्बत और चीन तथा वहां से कोरिया और जापान में फैल गया। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि बौद्ध धर्म अपनी जन्मभूमि में लगभग लुप्त हो गया किन्तु बौद्ध धर्म की कुछेक विशेषताएं बाद में हिन्दू धर्म का अंग बन गयीं।

बाद में चलकर बुद्ध के अनुयायी दो संप्रदायों—हीनयान और महायान में बंट गये। हीनयान संप्रदाय ने आष्टांगिक मार्ग के प्रत्यक्ष अनुसरण द्वारा व्यक्ति के निर्वाण पर बल दिया। दूसरी ओर, महायान संप्रदाय ने बुद्ध की पूजा ईश्वर के रूप में शुरू कर दी और इस बात पर बल दिया कि न सिर्फ भिक्षु और भिक्षुणियां बल्कि सभी लोग निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। बुद्ध की मूर्ति-पूजा शुरु होने से भारत और बाहर कला का बहुत विकास हुआ।

हिन्दू धर्म

गुप्त काल तक वैदिक काल की तुलना में धार्मिक विश्वासों और आचरणों में काफी परिवर्तन हो चुका था। हिन्दू धर्म (जिस रूप में हम उसे अभी समझते हैं) के विशिष्ट लक्षण उस समय तक विकसित हो चुके थे। उसके अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू थे देवत्रयी या त्रिमूर्ति। इस देवत्रयी में ब्रह्मा (संसार का स्रष्टा), विष्णु (रक्षक) और शिव (संहारकर्त्ता) थे। अधिकतर हिन्दू विष्णु या शिव के उपासक हो गये। भगवान् की भक्ति का विचार भी इसी काल के आसपास आया और कृष्ण पूजा विकसित होने लगी। कृष्ण का विष्णु के साथ तादात्म्य स्थापित किया गया।

कुछ क्षेत्रों में लोग मातृदेवी के भी उपासक बने रहे। मातृदेवी की पूजा हड़प्पा-काल में आरम्भ हुई थी। बाद में चलकर इस देवी की पूजा शक्ति को उसके कल्याणकारी रूप में उमा, भवानी, अन्नपूर्णा, आदि तथा पापनाशिनी रूप में काली, कराली, चामुंडी, चंडी, आदि के नाम से होने लगी।

हिन्दू धर्म उच्चतम सार्वभौम आत्मा (ईश्वर या परब्रह्म) के अस्तित्व की बात बतलाता है परन्तु वह प्रत्येक हिन्दू को जिस रूप में वह चाहे ईश्वर की पूजा करने की छूट देता है। इस प्रकार हिन्दू धर्म एक देव वादी है।

हिन्दू धर्म के अनुसार हर जीव का अस्तित्व उसके

विगत जीवन के कर्मों से निर्धारित होता है। अच्छे कर्म अगले किसी जन्म में फल देंगे। इसी तरह बुरे कर्मों का परिणाम भी मिलेगा। इस धारणा ने कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों को जन्म दिया। इस धारणा के अनुसार शरीर में स्थित आत्मा कभी नहीं मरती। केवल शरीर ही मरता है और बार-बार जन्म लेता है।

हिन्दू धर्म के अनुसार मानव जीवन के तीन मुख्य लक्ष्य हैं। पहला लक्ष्य 'धर्म' है। 'धर्म' से अभिप्राय गुण से है, जो अच्छे कर्मों का स्रोत है। दूसरा लक्ष्य 'अर्थ' है। 'अर्थ' से अभिप्राय उन सभी भौतिक वस्तुओं के संग्रह से है जो धार्मिक मार्ग का अनुसरण करके प्राप्त की गई हों। तीसरा लक्ष्य 'काम' है। 'काम' का अर्थ इंद्रिय सुख के उपभोग से है। किन्तु यह उपभोग पाशविक सुख से भिन्न अर्थात् शिष्ट तथा सुसंस्कृत मन के अनुरूप होना चाहिए। इन तीनों लक्ष्यों के सही अनुसरण से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

हिन्दू धर्म की एक अन्य विशेषता वर्णाश्रम धर्म है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को वर्ण विधान का पालन करना चाहिए। और विभिन्न आश्रमों के लिए निर्दिष्ट कर्तव्यों को करना चाहिए। चार वर्ण और चार आश्रम क्रमशः समाज के सैद्धांतिक विभाजन और जीवन के आदर्श रूप में माने गये चरण हैं।

परन्तु हिन्दू धर्म कभी एकरूप, स्थिर और अपरिवर्तनशील धर्म नहीं रहा है। वह अपने को बदलती हुई परिस्थितियों और जीवन-दशाओं के अनुरूप बनाने में समर्थ हुआ है।

अपने विविध सिद्धांतों, दर्शनों और कर्मकांड के कारण हिन्दू धर्म ने अपने अन्दर अनेक संप्रदायों को जन्म दिया। कालक्रम से इन संप्रदायों ने पूजा की अपनी पद्धतियां विकसित कीं। परन्तु प्रत्येक संप्रदाय के सदस्य अपनी व्यवस्था का अनुसरण करते हुए भी दूसरों के विचारों के प्रति सम्मानपूर्ण दृष्टिकोण रखते थे। बौद्ध धर्म की तरह ही हिन्दू धर्म की कुछ शाखाओं का प्रसार भारत से बाहर, विशेषकर दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में हुआ।

हिन्दू धर्म ग्रंथों की संख्या काफी बड़ी है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण हैं चार वेद—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, और ब्राह्मण तथा उपनिषद।

भगवद्गीता भी एक महत्वपूर्ण धर्मग्रन्थ है। उसमें मोक्षप्राप्ति के मार्गों—कर्म मार्ग (निर्दिष्ट यज्ञों, धार्मिक कृत्यों और गृहस्थ के कर्तव्यों को सम्पन्न करना), ज्ञान मार्ग (ज्ञान प्राप्ति), और भक्ति मार्ग (ईश्वर की भक्ति)—से संबंधित चिन्तनधाराओं का समन्वय किया गया है। हिन्दुओं के जीवन पर महाकाव्यों—महाभारत और रामायण—धर्मशास्त्रों और पुराणों का भी महत्वपूर्ण प्रभाव है। अपने सभी संप्रदायों सहित हिन्दू धर्म भारत का सबसे लोकप्रिय धर्म बन गया।

प्राचीन भारतीयों की सांस्कृतिक उपलब्धियां

प्राचीन भारतीय सभ्यता में भाषा, साहित्य, कला, वास्तुकला और विज्ञान के क्षेत्र में बड़ी उपलब्धियां हुईं। संसार के अन्य देशों से भी भारत के घनिष्ठ सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो गए थे।

भाषा और साहित्य : भारत में आजकल बोली जाने वाली भाषाओं में से अधिकतर अपने मूल रूप में प्राचीन काल में विद्यमान थीं। उनको दो भागों में बांटा जा सकता है—भारतीय आर्य भाषाएं तथा द्रविड़ भाषाएं।

प्राचीन आर्यों की भाषा संस्कृत थी। कालांतर में ऋग्वेद की संस्कृत में कुछ परिवर्तन हुए। संस्कृत साहित्य की भाषा वैदिक संस्कृत से भिन्न है। संस्कृत के साथ-साथ अनेक भाषाओं का विकास हुआ, जिन्हें प्राकृत कहते हैं। संस्कृत की अपेक्षा इनका व्याकरण और ध्वनि अधिक सरल थी। पाली, मागधी, शौरसेनी, प्राकृत के विभिन्न रूप थे जो विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती थी। प्राचीन संस्कृत साहित्य वेद, उपनिषद और ब्राह्मण ग्रंथों के रूप में मिलता है। इनको मौखिक रूप से ही याद किया जाता था और दूसरों को पढ़ाया जाता था।

जैन और बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव के पश्चात् प्राकृत भाषाओं की स्थिति में परिवर्तन हुआ। इन धर्मों की मौखिक शिक्षाएं प्राकृत में थीं। मौर्य काल में शासन के कार्यों के लिए प्राकृत का ही प्रयोग किया जाता था और अशोक के अभिलेख भी प्राकृत में ही हैं। अशोक के अभिलेख ब्राम्ही और खरोष्ठी लिपियों में हैं। भारत के लिए ब्राह्मी लिपि अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि सभी भारतीय लिपियां ब्राह्मी लिपि से निकली है। चौथी शती ईसवी पूर्व से ईसा की चौथी शती ई० के बीच भारत के दोनों महाकाव्य रामायण और महाभारत और भी प्राचीन गाथाओं के आधार पर रचे जा चुके थे। वर्तमान रूप में आने के पहले इन महाकाव्यों में अनेक परिवर्तन हुए।

जब प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने अपनी व्याकरण की पुस्तक लिखी तब साहित्यिक संस्कृत का पूर्ण विकास हुआ।

ब्राह्मी लिपि के चिन्ह

इसका रूप परिष्कृत हुआ और यह विद्वानों की भाषा बन गयी। शिक्षित ब्राह्मण और क्षत्रिय संस्कृत ही बोलते थे। साधारण मनुष्य और स्त्रियां शौरसेनी और अन्य प्राकृत बोलियां बोलते थे। अधिकांश बौद्ध साहित्य पाली (एक प्राकृत भाषा) में था। बाद में कुछ बौद्ध ग्रंथ भी संस्कृत में लिखे गए। ब्राह्मी लिपि में अनेक प्रादेशिक परिवर्तन हुए और इस प्रकार प्रादेशिक लिपियों का मूल रूप बना। शिला खंडों के अतिरिक्त ताम्रपत्रों पर भी अभिलेख लिखे गए। लिखने के लिए तालपत्र (ताड़ का पत्ता) और भोजपत्र भी काम में लाए जाते थे। जब अरब और तुर्क भारत में आए, तब से लिखने के लिए कागज का भी प्रयोग होने लगा।

दूसरी शती ईसवी से ही अनेक महत्वपूर्ण नाटक भारत में रचे गए। सबसे प्रसिद्ध नाटककार अश्वघोष, भास और कालिदास थे। कालिदास सबसे महान भारतीय कवि भी थे। गल्प साहित्य का प्रारंभ पंचतंत्र से हुआ। थोड़े दिन पश्चात् इस ग्रंथ का अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो गया। दक्षिण भारत में ई० सन् के प्रारम्भ के लगभग तमिल भाषा में सबसे पहले संगम साहित्य की रचना हुई। इसमें अनेक कविताएं तथा महाकाव्य लिखे गए।

वास्तुकला तथा अन्य कलाएं : हड़प्पा संस्कृति के विनाश के पश्चात् लगभग एक हजार वर्ष तक भारतीय वास्तुकला तथा अन्य कलाओं में कोई प्रगति नहीं हुई। वस्तुतः हड़प्पा के लोगों की उपलब्धियों को बिलकुल भुला दिया गया। इस काल का न कोई सुव्यवस्थित मकान, न नगर और न ही

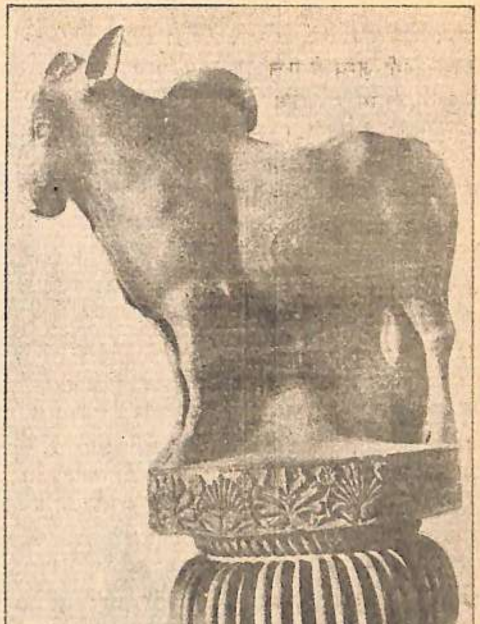

रामपुरवा के अशोक-स्तंभ का वृषभ-शीर्ष

मूर्ति मिली है। वैदिक काल के मृद्भांडों में भी कुछ कलात्मक विशेषताएं नहीं मिलतीं।

चौथी शती ई० पू० के अंतिम चरण में मौर्यकाल में कला के क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई। अशोक के समय बौद्ध वास्तुकला का विकास प्रारंभ हुआ। बौद्ध वास्तुकला के सुंदर उदाहरण चैत्य और विहार हैं। चैत्यों में पूजा के लिए बौद्ध उपासक इकट्ठे होते थे और विहारों में बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। अशोक स्तंभों के सुन्दर शीर्ष इस काल की मूर्तिकला के उत्तम उदाहरण हैं। मौर्य-काल के पश्चात् बुद्ध या उनके शिष्यों के अवशेषों पर स्तूपों का निर्माण हुआ। ये स्तूप सुंदर कला-कृतियां हैं। उनकी वेष्टनियों (Railings) और द्वारों पर मूर्तियों को उत्कीर्ण करके उन्हें

सांची स्तूप के उत्तरी द्वार के भीतरी दृश्य का चित्र

गांधार से प्राप्त बोधिसत्व

मथुरा से प्राप्त बुद्ध

सजाया गया। इनमें बुद्ध की जीवन-कथा और बौद्ध साहित्य के अनेक दृश्य दिखाए गए हैं। अनेक चट्टानों को काट कर गुफाओं में भी चैत्य बनाए गए। इसी काल के अंत में अजंता की गुफाओं के प्रारंभिक भित्ति-चित्रों का निर्माण हुआ।

मौर्य के बाद कला की गांधार और मथुरा शैलियों का

अजंता से प्राप्त बोधिसत्व

विकास हुआ। गांधार शैली में यूनानी और रोमन मूर्तिकला का प्रभाव बिल्कुल स्पष्ट है। मथुरा शैली ने एक देशी रूप विकसित किया। गांधार और मथुरा दोनों की कला में बुद्ध की मूर्तियां बनाई गई और बौद्ध विषयों का निरूपण किया गया। सातवाहन राजाओं ने भी चैत्यों और विहारों के निर्माणकार्य को प्रोत्साहन दिया। सबसे अधिक भव्य चैत्यों में एक कार्ली में है। अमरावती में एक भव्य स्तूप बनाया गया। यद्यपि यह स्तूप नष्ट हो गया किन्तु अमरावती की

अमरावती स्तूप

मूर्तिकला के अधिकतर उदाहरण अभी भी विद्यमान हैं।

भारतीय कला के इतिहास में गुप्तकाल सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है। इस काल में चित्रकला का बहुत विकास हुआ और अजंता और बाघ के अधिकतर भित्ति-चित्रों का निर्माण इसी काल में हुआ। गुप्तकाल में ही हिन्दू मंदिरों की वास्तुकला का विकास हुआ। हिन्दू मंदिरों के गर्भगृह में देवता की मूर्ति प्रतिस्थापित की जाती थी। अधिकतर मंदिर पत्थर से बनाए जाते थे; और उनमें एक ही कोठरी होती थी जिसमें देवता की मूर्ति प्रतिस्थापित की जाती थी। बाद में उत्तर और दक्षिण भारत में अनेक मंदिर बनाए गए। ये गुप्तकालीन मंदिरों के ही अनुरूप थे, पर उनसे बहुत बड़े होते थे। इनमें अनेक मूर्तियां होती थीं। मंदिरों को भूमि का अनुदान भी मिला और देश के आर्थिक जीवन में उनका महत्वपूर्ण स्थान हो गया। चिकित्सा शास्त्र, ज्योतिष, गणित और व्याकरण आदि विषयों पर अनेक शास्त्र लिखे गए। इन शास्त्रों का उद्देश्य धार्मिक कर्मकांड का विधिवत् संपादन था, पर बाद में इन्हीं के कारण विज्ञान के विषयों की नींव पड़ी।

विज्ञान का विकास : प्राचीन भारत की विभिन्न चिंतनधाराओं में ब्रह्माण्ड को चार या पांच तत्वों—पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और आकाश में बांटा गया है। इन चिंतनधाराओं ने यह प्रतिपादित किया कि तत्व अणु से बने हैं और तत्व में अणुओं के संयोजन का तरीका उसके स्वरूप का निर्धारण करता है। मगर ये सिद्धांत प्रयोग पर नहीं

बल्कि सहज बुद्धि और तर्क पर आधारित थे।

यज्ञ के लिए शुभ दिन और समय ज्ञात करने की आवश्यकता ने भारतीयों को ज्योतिष के सिद्धांत जानने की प्रेरणा दी। लगभग 1000 वर्ष से भी अधिक के पश्चात् अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गए। इन ग्रंथों में दिन का ठीक-ठीक मान निकालने और ग्रहण का हिसाब लगाने की ठीक विधियां बतलाई गई हैं। प्राचीन भारत के दो महान् ज्योतिषशास्त्री थे—आर्यभट्ट और वाराहमिहिर। राशिचक्र संबंधी विज्ञान का भी विकास किया गया और त्रिकोणमिति का उपयोग ज्योतिष के अध्ययन में किया गया।

गणित का प्रारंभिक उल्लेख हमें वैदिक साहित्य में मिलता है। वैदिक काल में वेदियां बनाने की आवश्यकता हुई। इस प्रकार रेखागणित की नींव पड़ी। धीरे-धीरे गणित का विकास हुआ। भारतीयों ने ज्ञान के इस क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योग दिया है—जैसे अंकों की दशमलव प्रणाली, उनका स्थानीयमान और शून्य का ज्ञान। किन्तु शून्य का नामकरण भारतीयों ने नहीं किया था। वैदिक यज्ञों के लिए वेदी-निर्माण के नियम जिन ग्रंथों में दिए गए हैं, उन्हें शल्व सूत्र कहते हैं। इनमें ऐसा वर्णन मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इनके लेखक पाइथागोरस के प्रमेय (Theorem) और वर्गों के दुगना करने के सिद्धांत से भली-भांति परिचित थे। भारत के गणितज्ञ 2 के वर्गमूल का मूल्य ठीक-ठीक निकाल सकते थे। गुप्तकाल से शताब्दियों पूर्व भारतीय गणित की दो शाखाएं—पट्टि-गणित (अंकगणित) और बीजगणित थीं। दशमलव प्रणाली और अंकों के स्थानीय मान का प्रयोग किया जाता था। शून्य के अंक का भी प्रयोग किया जाने लगा और इसे 'बिन्दु' कहा जाता था।

बलि की प्रथा से भारतीयों का शरीर-रचना का ज्ञान बढ़ा। अथर्ववेद में पर्याप्त रूप से रोगों के लक्षण और रोगों का वर्णन मिलता है, किन्तु उसमें उनका संबंध नहीं बतलाया गया है। रोगों की औषधियों, जल और जादू के मंत्रों से रोगों की चिकित्सा का वर्णन भी अथर्ववेद में मिलता है। यूनानी साहित्य में भारतीय चिकित्सा और औषधियों के नुस्खों का वर्णन मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय चिकित्सा का यूनानी चिकित्सा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

प्राचीन काल में भारतीय आयुर्वेद की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। आयुर्वेद के क्षेत्र में सबसे प्रसिद्ध नाम सुश्रुत और चरक के हैं। आयुर्वेद के सिद्धांत, जिनका आज तक भारत में प्रयोग किया जाता है, इस काल में पूर्णरूप से विकसित हो चुके थे। इसलिए स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों और भोजन पर बहुत बल दिया जाता था। शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हो गई थी और अनेक रोगों में कठिन शल्य-क्रिया की जाती थी। धातुओं को मिलाकर सोना बनाने में भारतीयों की बहुत रुचि थी। इस प्रकार कीमिया में रुचि होने के कारण रसायनशास्त्र का ज्ञान बढ़ा। दिल्ली स्थित लौहस्तम्भ और देश के बाहर भारतीय तलवारों के मूल्य के बारे में उल्लेखों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में धातु विज्ञान में काफी निपुणता प्राप्त कर ली गयी थी।

शासन-व्यवस्था, अर्थशास्त्र, साहित्य, कला और विज्ञान सभी क्षेत्रों में प्राचीन भारत की संस्कृति का विकास हुआ। भारत की विभिन्न जातियों ने एक दूसरे से और आक्रमणकारियों से भी बहुत कुछ सीखा। इसी प्रकार पूर्व और पश्चिम के देशों के निवासियों ने भारतीय ज्ञान को प्राप्त करके अपने ज्ञान और संस्कृति का निर्माण किया।

प्राचीन चीन की सभ्यता

राजनीतिक विकास

चाऊ सरदारों ने शाङ शासकों को हरा कर सैकड़ों छोटे नगर-राज्यों पर अधिकार कर लिया। आठवीं शती ई० पू० तक छोटे-छोटे राज्य मिलाकर बारह बड़े राज्यों में परिवर्तित कर दिए गए। ये सभी राज्य लोयाङ-स्थित केन्द्रीय सरकार का आधिपत्य स्वीकार करते थे। किन्तु वे प्रायः पूर्णतया स्वतंत्र थे। वे सदा लड़ते रहते थे और सातवीं शती ई० पू० में चाऊ सरकार लड़ने वाले इन अधिक शक्तिशाली राज्यों के हाथ की कठपुतली बन गई थी। सैकड़ों वर्ष तक आसपास के प्रदेश से खानाबदोश जातियों के आक्रमण होते रहे। इसके कारण चीन में अधिक अव्यवस्था बनी रही।

तीसरी शती ई० पू० में चीन में तीन बड़े राज्य चिन, चु और चि थे। 221 ई० पू० में चीन का शासक तीन राज्यों का सम्राट बन बैठा और उसने दक्षिण के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। उसके राज्य काल के प्रारंभ से चीन की सभ्यता में नियमित उन्नति, प्रगति और समृद्धि का काल प्रारंभ हुआ। उसने हर दिशा में सड़कों का निर्माण कराया जिससे सेना को कहीं भी शीघ्रता से भेजा जा सके। उत्तर से आने वाले आक्रमणकारियों को रोकने के लिए उसने चीन की प्रसिद्ध बड़ी दीवार बनवाना प्रारंभ किया।

उसने सिक्कों का एकीकरण किया, नाप तौल के नियम बना कर लागू किए और चीनी लिपि का मानकीकरण किया।

चिन वंश से 202 ई० पू० में हान वंश के राजाओं ने शासन ले लिया। हान वंश के सम्राटों ने लगभग 400 वर्ष राज किया। हान वंश के समय में चीन की बहुत उन्नति हुई। जीवन के अनेक क्षेत्रों में इस काल में इतनी प्रगति हुई कि चीन के बहुत से निवासी बाद में शताब्दियों तक गर्व के साथ अपने को 'हान के पुत्र' कहते थे। इसके पश्चात् घरेलू युद्धों और अव्यवस्था का युग प्रारम्भ हुआ। हूणों और तातारों ने साम्राज्य पर आक्रमण किए और अपनी बस्तियां बना लीं। लगभग चार शताब्दियों बाद का यह काल अराजकता का युग था। 589 ई० में सुइ वंश ने चीन में फिर एक संगठित साम्राज्य स्थापित किया।

सामाजिक संगठन और शासन

प्राचीन काल में चीन का समाज वर्गों में बंटा हुआ था। इन वर्गों में सम्राट या विभिन्न राज्यों के स्वामियों का वर्ग सबसे ऊंचा समझा जाता था। शासक वर्ग के नीचे पांच मुख्य वर्ग थे। ये बुद्धिजीवी, व्यापारी, कारीगर, किसान और दासों के वर्ग थे। भारत की भांति चीन में भी प्राचीन काल में बुद्धिजीवियों या साहित्यकारों का बहुत आदर किया जाता था। भारत में ब्राह्मण को जन्म से उच्च स्थिति प्राप्त होती थी, किन्तु चीन में कोई भी व्यक्ति शिक्षा के द्वारा इस उच्च स्थिति को प्राप्त कर सकता था। किन्तु यह स्थिति सिद्धांत रूप में ही थी, वास्तविक स्थिति इससे भिन्न थी। सामाजिक समानता कभी भी विद्यमान नहीं रही। शिक्षा पर इतना अधिक व्यय होता था कि धनी जमींदारों के सिवाय किसी के लिए शिक्षा प्राप्त करना असंभव था। इसका यह परिणाम हुआ कि समाज का वर्गों में विभाजन प्रायः स्थायी ही रहा।

यह बात बड़े महत्व की है कि तत्कालीन समाज में योद्धाओं की स्थिति नीची थी। सेना में संदिग्ध चरित्र के व्यक्ति ही भर्ती होते थे। चिन वंश के सम्राट ने आक्रमणकारी बर्बर जातियों को सेना में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित किया। साधारणतया उन्हें दास होकर ही मजदूरी करनी पड़ती थी और वे सड़क बनाने या भवन निर्माण के कार्य में लगाए जाते थे।

प्राचीन चीन में सम्राट या राज्यों के स्वामी शासन चलाते थे। सम्राट निरंकुश थे तो भी उनकी परामर्शदातृ परिषद् और कुछ मंत्री होते थे। ये परामर्शदाता और मंत्री

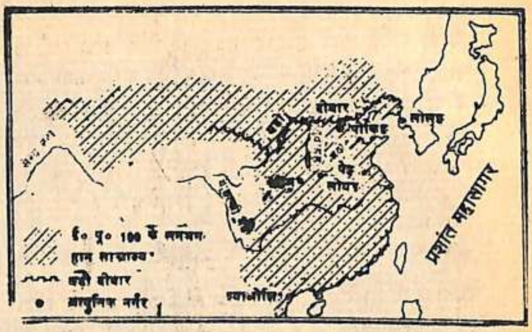

हान साम्राज्य

अभिजात वर्ग में से ही चुने जाते थे।

हान शासकों के राजनीतिक सिद्धांतों और कार्यप्रणाली पर कनफ्यूशियस की शिक्षाओं का बहुत प्रभाव पड़ा। कनफ्यूशियस 500 ई० पू० में विद्यमान था और तभी उसने अपनी शिक्षाओं का प्रचार किया। वस्तुतः चीन की सभ्यता का अध्ययन करना कनफ्यूशियस के सिद्धांतों को जाने बिना असंभव है। कनफ्यूशियस के सिद्धांतों पर ही आधारित होकर कनफ्यूशियस धर्म बना। किन्तु उसे धार्मिक नेता कहने की अपेक्षा दार्शनिक या राजनैतिक कहना अधिक उचित होगा। उसने अपने नैतिक सिद्धांतों को ध्यान में रखकर ऐसे नियम बनाए जिनसे शांति और कल्याण में वृद्धि हो। उसने तत्कालीन सामाजिक बुराइयों का अध्ययन किया और वह इस निश्चय पर पहुंचा कि ऐसी शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता है जो साधारण व्यक्ति के जीवन की परिस्थितियां सुधारने के लिए नियम बना सके और उन्हें कार्यान्वित कर सके। जब वह शासकों का मंत्री और परामर्शदाता नियुक्त हुआ, उसने अपने बहुत से विचारों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया।

हान शासकों ने कनफ्यूशियस के सिद्धांतों का फिर प्रतिपादन किया और उसने कनफ्यूशियस के इस विचार को कार्यान्वित किया कि योग्य नवयुवकों को सार्वजनिक सेवा के लिए साहित्यिक विषय पढ़ाकर उचित प्रशिक्षण दिया जाए। नियुक्ति के पूर्व इन नवयुवकों को कई कठिन परीक्षाएं उत्तीर्ण करनी पड़ती थीं। ऐसे विद्वान सरकारी अधिकारियों को 'मंदारिन' कहा जाता था। हान राजाओं के समय में ऐसे शासक अधिकारियों का एक नया वर्ग बन गया। इस वर्ग का बीसवीं शताब्दी तक चीन के जीवन में

प्रमुख स्थान था। दुर्भाग्य वश बहुत से मंदारिन, जो सार्वजनिक सेवा करते थे, उन आदेशों का पालन नहीं करते थे जो कनफ़्यूशियस ने निर्धारित किए थे। किन्तु विश्व के इतिहास में चीनी लोगों की सबसे पहली सभ्यता थी जिसमें शिक्षा और प्रतियोगिता-परीक्षा के आधार पर सार्वजनिक सेवाओं के लिए अधिकारी चुनने की परिपाटी चलाई गई।

प्राचीन चीन का आर्थिक जीवन

चीनियों के आर्थिक जीवन का आधार कृषि ही बनी रही। खोदने वाले खुरपे का स्थान हल ने ले लिया और बाढ़ों को नियंत्रित करने और सिंचाई की व्यवस्था सुधारने के लिए प्रयत्न किए गए। खेती करने वाले मजदूरों के कार्यों का संयोजन, उनका निर्देशन और पानी के उपयोग पर नियंत्रण रखना सरकार के प्रमुख कार्य थे। ह्वाङ हो नदी बाढ़ों के लिए बदनाम थी इसलिए पानी इकट्ठा करने और उसका उपयोग करने के लिए कई योजनाएं बनाई गईं। बाढ़ के पश्चात् बह कर आई मिट्टी को हटाना और नहरें खोदना भी सरकार के ही कार्य थे।

रेशम के कीड़ों का पालन और रेशम के कातने तथा बुनने में कृषि तथा उद्योग दोनों सम्मिलित थे। हान वंश के राजाओं के समय में निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में रेशम प्रमुख था।

मृद्‌भांड बनाने के काम में कई सुधार किए गए और इस काम ने विकसित होकर चीन की विशिष्ट कला का स्थान ले लिया। सोने-चांदी का काम भी प्रमुख शिल्प था। वज्रमणि को उत्कीर्ण करना भी चीनियों की विशेषता थी। चीनी लोग वज्रमणि को संगीत पत्थर कहते थे। जब इसको ठीक प्रकार से गढ़ लिया जाता था और इसमें चोट लगाई जाती थी तो इसमें से संगीत का सा मधुर स्वर निकलता था। पीतल पर की जाने वाली वार्निश एक पेड़ से निकलती थी। इसका उपयोग अनेक सुंदर तथा उपयोगी वस्तुएं बनाने में किया जाता था। कांसे के ढाले हुए उत्तम संदूकों पर वह वार्निश की जाती थी। कांसे की कई किस्मों का निर्माण किया जाता था। कांसे के दर्पणों में रेखागणित की सी आकृतियां बनाई जाती थीं। ये दर्पण कला की अत्युत्तम कृतियां हैं।

जब चीन में स्थायी सरकार की स्थापना हो गई, और वहां की जनसंख्या बढ़ी, तो व्यापार की भी उन्नति हुई। नगर व्यापार के केन्द्र बन गए। बड़ी दीवार को पार कर पश्चिमी देशों से व्यापार करने के लिए दो मुख्य सड़कें बनाई गईं। काफिलों के मार्गों पर सुरक्षा का पूर्ण प्रबंध किया गया, जिससे रोम की सीमा तक सब वस्तुएं सुरक्षित ले जाई जा सकें। इस प्रकार, मध्य एशिया के घास के मैदानों से परे रोम के साम्राज्य के साथ चीन के व्यापार की बहुत उन्नति हुई। चीन लोहे की वस्तुएं, रेशम, मिट्टी के बर्तन और अन्य दस्तकारी की वस्तुएं रोमन साम्राज्य के निवासियों को बेचता था, और बदले में चांदी और सोना लेता था। साधारण व्यापार में तांबे के सिक्के काम में लाए जाते थे।

चीन के धर्म और दर्शन

प्राचीन चीन के मुख्य बड़े धर्म हैं—ताओ धर्म और कनफ़्यूशियस धर्म। इन दोनों धर्मों में लाओत्से और कनफ़्यूशियस नाम के दो चीनी दार्शनिकों की शिक्षाएं संकलित हैं।

लाओत्से का शाब्दिक अर्थ, 'प्राचीन आचार्य' है। उनका जन्म 604 ई० पू० में हुआ था। उन्होंने 'ताओ ते किंग' नाम की छोटी पुस्तक लिखी, जिसमें ताओ धर्म का सार है। ताओ का शाब्दिक अर्थ 'मार्ग' अर्थात् विश्व का मुख्य सिद्धांत है। ताओ धर्म सरल जीवन के गुणों को अपनाने और स्वार्थ-त्याग की शिक्षा देता है।

चीन के निवासी कनफ़्यूशियस को राजा फूत्से कहते हैं। उनका जन्म एक अभिजात कुल में हुआ था। उनका जीवन-काल 551 से 479 ई० पू० है। इस प्रकार वे महावीर और बुद्ध के समकालीन थे। जीवन भर उनका मुख्य उद्देश्य शासन सुधार रहा, अर्थात् एक राज्य और उसकी प्रजा का सबसे अच्छी प्रकार कैसे शासन चलाया जाए। उन्होंने समाज में आचरण करने के नियमों की शिक्षा दी और एक मनुष्य के दूसरे मनुष्य के साथ उचित संबंधों पर बल दिया। उन्होंने देवताओं या मृत्यु के विषय में कुछ विशेष नहीं कहा। उन्होंने सदाचार और प्राचीन रीति-रिवाजों के प्रति आदर की भावना पर बल दिया। गुरुजनों और पूर्वजों के प्रति आदर और परिवार के सदस्यों में संगठन की भावना उनकी मुख्य शिक्षाएं थीं।

जबकि लाओत्से का मुख्य संबंध व्यक्तिगत जीवन से था, कनफ़्यूशियस ने सामाजिक जीवन के विषय में अधिक उपदेश दिए। कनफ़्यूशियस ने व्यक्ति की नैतिक पूर्णता और समाज में नैतिक और सामाजिक सुव्यवस्था पर बल दिया। उनके अनुसार निम्नलिखित पांच संबंधों का विशेष महत्व था—शासक और प्रजा, पिता और पुत्र, पति और

पत्नी, बड़ा भाई और छोटा भाई और पुराना मित्र और नवीन मित्र। कालांतर में कनफ्यूशियस का धर्म कट्टर पंथी हो गया। उसमें औपचारिकता और रूढ़िवादिता आ गई। प्रारंभ में ताओ धर्म में ज्ञान-प्राप्ति और आंतरिक सुख की शिक्षा दी गई थी। बाद में ताओ धर्म भी जादुई क्रियाओं में उलझ गया।

भारतीय और हिन्देशिया के व्यापारियों और धर्म प्रचारकों ने हान राजाओं के समय में चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। कालांतर में बौद्ध धर्म का भी चीन के सांस्कृतिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। चीन में जो

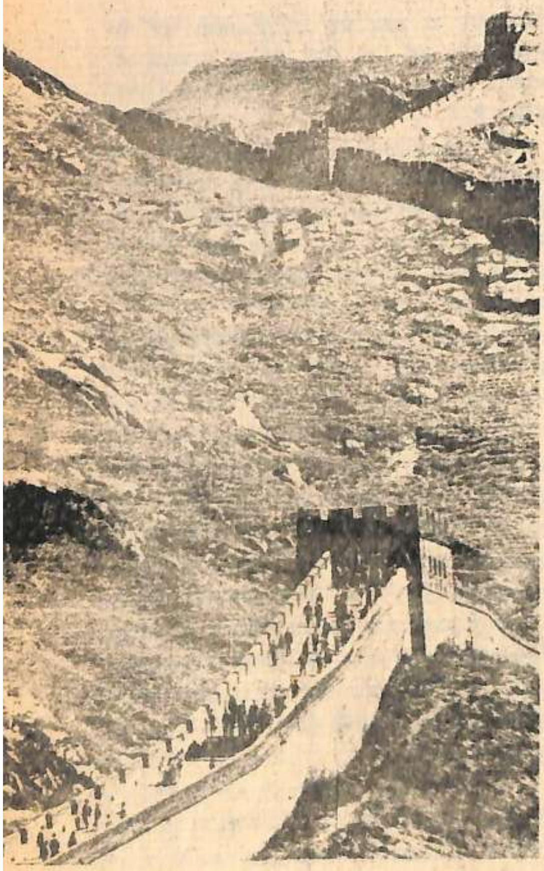

न की 2400 किमी. लंबी विशाल दीवार का एक भाग

लाखों बौद्ध धर्म के अनुयायी थे वे प्रायः सभी महायान शाखा को मानते थे।

प्राचीन चीन की उपलब्धियां

वास्तुकला : जब प्राचीन काल में चीन में स्थायी सरकार स्थापित हो गई तो बड़े-बड़े नगरों में महल तथा पैगोडा (बौद्ध मंदिर) बनाए गए। चीन की बड़ी दीवार जिसका बनना चिन राज वंश के समय में प्रारंभ हुआ था, प्राचीन चीन के निर्माणकौशल का अच्छा उदाहरण है। यह दीवार पूर्वी समुद्र तट से उत्तर चीन तक फैली हुई है। इसकी लंबाई 2400 किलोमीटर है। यह पश्चिमी चीन के पहाड़ों तक अनेक पहाड़ियों और घाटियों में बनाई गई थी। यह पत्थर और मिट्टी की बनी है और इसकी ऊंचाई 6 मीटर है। यह दीवार इतनी चौड़ी है कि इसके ऊपर गाड़ी चल सकती है। हर सौ दो सौ मीटरों के पश्चात् इस दीवार में योद्धाओं के लिए मीनारें बनाई गईं थीं जहां से वे पहरा दे सकें। इतनी बड़ी और मजबूत दीवार को बनाने में अनेक दशक वर्ष लगे होंगे और इसे पूरा करने का कार्य हजारों मजदूरों ने किया होगा।

चित्रकला : चीन में चित्रकला सुलेख का भाग समझी जाती थी। जिस कूची से लिखा जाता, वही चित्र बनाने के काम में लाई जाती थी। अनेक चित्र कुंडली के रूप में थे, जिन्हें लपेट कर सुरक्षित रखा जा सके। इन चित्रों में इस बात पर बल दिया जाता था कि चित्र के माध्यम से देखते ही व्यक्ति विशेष की भाव दशा संप्रेषित हो जाए। इसलिए वस्तुओं को ज्यों का त्यों चित्रित करने के लिए यहां की चित्रकला में स्थान ही न था। यह कहना उचित होगा कि चीनी चित्र वर्णन नहीं करते, वे केवल उसकी ओर संकेत करते हैं। यद्यपि चीनी कलाकार कमल, अजगर जैसे राक्षस और घोड़ों के चित्र बनाते थे तथापि वे सौंदर्य की अभिव्यक्ति पर बल देते थे।

भाषा और साहित्य : जिन शासकों ने चीनी लिपि का मानकीकरण किया। सरकार ने इस समय 3300 चिन्ह स्वीकार किए। जब चीन का राजनीतिक संगठन हो गया तो देश के प्रत्येक भाग में इसी लिपि को काम में लाया गया। शताब्दियां बीतने पर इसमें अनेक नए चिन्ह सम्मिलित कर लिए गए और यह अधिक कलात्मक बना दी गई। लिपि तो समस्त देश में एक ही थी किंतु बोलियों में बहुत अंतर था। चीन की लिपि ने देश की सांस्कृतिक एकता

स्थापित करने में महत्वपूर्ण भाग लिया। चीन की लिपि और भाषा कुछ अन्य देशों में भी फैली। जापान, कोरिया और वियतनाम की लिपियां चीन की लिपि और भाषा से प्रभावित हैं।

प्राचीन काल में चीन के निवासी हड्डियों पर लिखते थे। तत्पश्चात् उन्होंने रेशमी कपड़े पर ऊंट के बालों की कूची से लिखना प्रारंभ कर दिया। कूची के प्रयोग के कारण ही उनका लेख इतना कलात्मक बन सका। पहली शती ईसवी में कागज का आविष्कार हुआ और इससे लेखन कला में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। पेड़ों की छाल, बांस और चिथड़ों से कागज बनाया जाता था। लिखने के लिए रेशम की अपेक्षा कागज कहीं सस्ता था, अतः कागज के आविष्कार के कारण अधिक व्यक्ति लिखना सीख सके और ज्ञान प्राप्त कर सके। कागज का आविष्कार चीन और दूसरे देशों में ज्ञान के प्रसार में विशेष महत्व रखता है। यह विश्व को चीन की महान देन है।

चीनी लिपि, तथा भाषा के विकास और कागज के आविष्कार होने पर चीन में उच्च कोटि के साहित्य की रचना हुई और उसे भविष्य के लिए सुरक्षित रखना संभव हो गया। प्राचीन साहित्य के अतिरिक्त चीनी दार्शनिकों ने जन साधारण की भाषा में, गद्य में अपने विचार व्यक्त किए। चाऊ शासकों ने कवियों को संरक्षण दिया। बाद में संुदर शोक गीत लिखे गए। हान राजाओं के समय में पदलालित्य से अलंकृत कविता का प्रचलन हुआ और इसमें उपवनों और प्रासादों के संुदर वर्णन मिलते हैं।

इतिहास लिखने की प्रथा भी विश्व में सबसे पहले शायद चीन में प्रारम्भ हुई। कहा जाता है कि कनफ्यूशियस ने इतिवृत्त लिखे। इसमें 'लु' राज्य का 722 से 481 ई० पू० तक का इतिहास है। बाद में इतिहास लिखने की कला का अधिक विकास हुआ। प्रत्येक राजवंश का इतिहास अलग लिखा गया। राजवंशों के इतिहास लिखने की परंपरा इतनी अधिक बलवती हो गई कि इस समय 26 राजवंशों के इतिहास उपलब्ध है। उनमें चीन का 1912 ई० तक का इतिहास विद्यमान है। इस प्रकार का सबसे पहला इतिहास स्सु-मा च्येन ने लिखा था। वह संभवतः पहली या दूसरी शती ई० पू० में विद्यमान था। उसका आज तक चीन के प्रथम इतिहासकार के रूप में आदर किया जाता है। इस इतिहास में राजदरबारों के जीवन की झलक, सम्राटों की वंशावलियां, उनके अधिकारियों की सूचियां, महान पुरुषों की जीवन-कथाएं और विभिन्न विषयों — जैसे शासन पद्धति, भूगोल, ज्योतिष और संगीत के विषय में हमें बहुत ज्ञान प्राप्त होता है।

विज्ञान और टेकनॉलाजी : इंजीनियरिंग के क्षेत्र में चीनियों की सबसे बड़ी उपलब्धि नहरें बनाना था। इनमें कई तो सौ मील से भी अधिक लंबी थीं। इनमें नावें चलतीं और इनके पानी से सिंचाई भी की जाती थी।

चीनियों की विज्ञान के क्षेत्र में अनेक देन हैं। उन्होंने तारों और नक्षत्रों के समूहों की सूचियां बनाईं। वे ज्योतिष के द्वारा ग्रहण जैसी अनेक घटनाओं का समय निर्धारित कर सकते थे। वे ग्रहणों का कारण जानते थे और उनके विषय में भविष्यवाणी कर सकते थे। दूसरी शती ई० में बहुत से चीनी ज्योतिषी जानते थे कि सूर्य, चंद्रमा और सभी तारे आकाश में स्वतंत्र रूप से चलते रहते हैं। चौथी और पांचवीं शताब्दी में विभिन्न तारों की स्थिति को बतलाने वाले मानचित्र बनाए गए। चीनियों ने जलघड़ी का भी आविष्कार किया। बाढ़ों की समस्या के कारण चीनियों ने वर्षा, बादलों और ऋतुओं के विषय में अपना ज्ञान बढ़ाने का प्रयत्न किया।

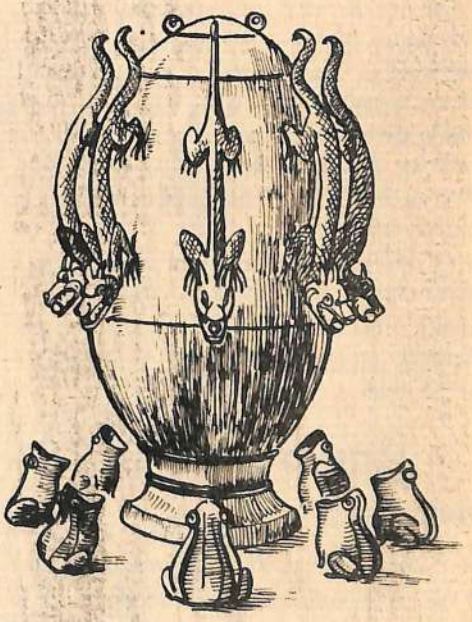

प्राचीन चीन का एक भूकंप-लेखी यंत्र

गणित में चीनी लोग दशमलव प्रणाली का प्रयोग जानते थे, किंतु बहुत समय तक उन्हें शून्य का ज्ञान नहीं था। चीनी अंकों की पद्धति गुणा पर आधारित थी। उदाहरणार्थ, यदि उन्हें 300 लिखना होता तो वे 100 और 3 के अंक लिखते थे। रोम के निवासी 300 लिखने के लिए सौ के चिन्ह की पुनरावृत्ति तीन बार करते थे। चीन में ही हिसाब लगाने के चौखटों का आविष्कार हुआ। यह व्यापार में काम में लाया जाता था। यूरोप-निवासियों से बहुत पहले चीनियों ने पाई (π) का मूल्य लगभग ठीक-ठीक निकाल लिया था।

चीनियों ने अपनी यात्राओं के वृतांत लिखे। इस प्रकार उन्हें दूसरे देशों के भूगोल का ज्ञान हुआ। उनका विश्वास था कि पृथ्वी वर्गाकार है, जिसके सब ओर समुद्र है। अन्य देशों के निवासियों की भांति वे भी समझते थे कि उनका देश पृथ्वी के केन्द्र में है। चीनियों ने भूकंप-विज्ञान का भी विकास किया। दूसरी शती ई० में उन्होंने भूकंप-लेखी यंत्र का आविष्कार कर लिया था। इस यंत्र के द्वारा चीनी यह हिसाब लगा लेते थे कि वह ठीक स्थान कहां है, जहां भूकंप का प्रारंभ हुआ।

मानव-शरीर-रचना विज्ञान का भी कुछ ज्ञान था। उन्हें बहुत-से रोगों और उनकी चिकित्सा का भी ज्ञान था। वे अनेक संक्रामक रोगों को पहचान सकते थे और प्रत्येक के लक्षण जानते थे। भोजन और स्वास्थ्य का संबंध भी उन्हें ज्ञात था। पुरोहितों द्वारा जादू के मंत्र पढ़वाकर रोगों की चिकित्सा कराने में उनका विश्वास न था।

तुम्हें यह जानने में दिलचस्पी होगी कि पतंग प्राचीन चीनियों का ही खिलौना था, और चीनियों ने ही छतरी का आविष्कार किया था।

चीनी सभ्यता के आविष्कार बहुत समय के बाद पश्चिमी संसार के लोगों को ज्ञात हुए। उदाहरणस्वरूप, चीनियों के कागज बनाने के कई सौ वर्ष पश्चात् अरबों को इस कला का पता लगा और यूरोप वालों ने अरबों से इस कला को सीखा।

ईरान की सभ्यता

प्रारंभिक इतिहास

ईरान में व्यवस्थित जीवन की शुरुआत यद्यपि लगभग तभी हुई जब उसके पड़ोसी मैसोपोटामिया में हुई थी, तथापि ईरान में संस्कृति का विकास धीमी गति से हुआ। ईरान ने सिंधु घाटी और दक्षिणी मैसोपोटामिया के बीच जोड़ने वाली कड़ी का काम किया। साथ ही मध्य एशिया और कैस्पियन सागर के पास के इलाकों की जातियों को आगे बढ़ने देने के लिए रास्ते का काम भी किया।

ई० पू० की दूसरी सहस्राब्दी के दौरान भारोपीय भाषा परिवार की पूर्वी शाखा के जनगण ईरान आए। ये लोग खानाबदोश थे। उनका इस काल में यूरोप तथा एशिया के अनेक भागों जिन में भारत भी शामिल है, तक प्रवास करना इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। ये खानाबदोश जातियां धीरे-धीरे ईरान के विभिन्न भागों में फैल गईं।

ऐकेमेनी (Achaemenid) साम्राज्य

भारोपीय परिवार की भाषा बोलने वाले लोगों के आने और वहां पर पहले से रह रहे लोगों द्वारा अपने में खपा लिए जाने के फलस्वरूप ईरान में अनेक परिवर्तन हुए। ई० पू० की छठी शताब्दी के मध्य में ईरान में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना हुई। यह साम्राज्य दो सौ वर्षों तक शक्ति-संपन्न रहा। इसे ऐकेमेनी साम्राज्य कहते हैं। इस साम्राज्य का संस्थापक साइरस था। उसकी राजधानी पैसरगेड में थी। 539 ई० पू० में साइरस ने बाबुल वालों को हरा दिया और एक बहुत बड़े क्षेत्र पर कब्जा करके उसने अपना साम्राज्य बढ़ाकर एशिया माइनर तक फैला दिया। उसके उत्तराधिकारी दारा प्रथम (Darius I–522-486 ई० पू०) ने साम्राज्य का विस्तार और भी बढ़ाकर उत्तरी-पश्चिमी भारत तक कर दिया। उसके अधीन रहकर साम्राज्य ने अपना विशालतम आकार पाया जिसमें पूरा ईरान, मैसोपोटामिया, मिस्र, एशिया माइनर, और उत्तरी-पश्चिमी भारत आ जाता है। उसने एक नई राजधानी पर्सेपोलिस में बनवाई। ऐकेमेनी वंश का अन्य महत्वपूर्ण शहर सूसा था। इस काल ने प्राचीन ईरानी कला और शिल्पकला को फूलते-फलते देखा। साम्राज्य प्रदेशों में बंटा हुआ था जिनका शासन करने वाला शासक 'क्षत्रप' या शत्रप कहलाता था। क्षत्रपों का प्रशासन बड़ा कुशल था।

दारा और उसके उत्तराधिकारियों को यूनानी राज्यों से अनेक युद्ध भी करने पड़े। इनमें यूनानियों ने उन्हें हरा दिया और फलस्वरूप ऐकेमेनी साम्राज्य कमजोर पड़ता गया। दारा तृतीय के शासन काल में सिकंदर ने इस साम्राज्य को जबरदस्त चोट पहुंचाई। ईरान पर यूनानियों का कब्जा हो गया और उन्होंने पर्सेपोलिस शहर को नष्ट कर दिया। 301 ई० पू० में सेल्यूकस प्रथम ने सिकंदर के जीते हुए

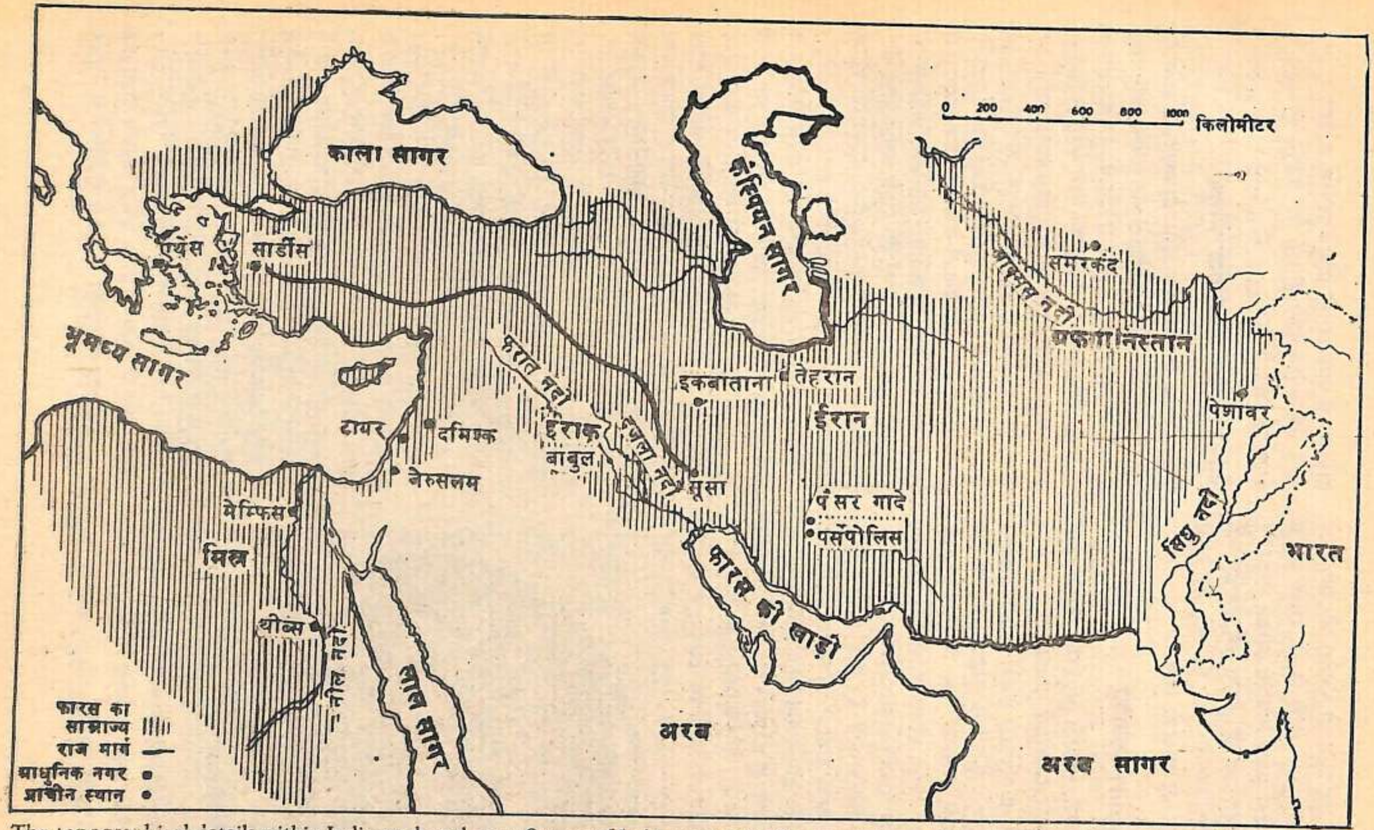

The topographical details within India are based upon Survey of India maps with the permission of the Surveyor General of India, the Copyright 1986 of which vests with the Government of India.
©Government of India Copyright, 1986

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

दारा प्रथम के राज्य काल में ईरानी साम्राज्य (522 से 486 ई० पू०)

प्रदेश के काफी बड़े पूर्वी भाग को संभाला और अपने को स्थापित किया। शायद तुम पहले से ही जानते हो कि सेल्यूकस ने मौर्यकाल में अपना साम्राज्य बढ़ाकर भारत पर कब्जा करने की कोशिश की थी। किन्तु उसे सफलता नहीं मिल सकी थी। सैल्यूकस के बाद ई० पू० की दूसरी शताब्दी में पार्थियंस का साम्राज्य आया।

ससानी (Sassanid) साम्राज्य

ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी में ईरान में एक नया शक्तिशाली साम्राज्य उठा—ससानी साम्राज्य। इस साम्राज्य की स्थापना 226 ई० में आर्दीशर ने की थी। इस साम्राज्य ने अपना अस्तित्व ईरान में सातवीं शताब्दी के मध्य तक कायम रखा। पांचवीं शताब्दी तक ससानी साम्राज्य पश्चिमी एशिया का सबसे अधिक शक्तिमान साम्राज्य बना रहा। तब इसके अंतर्गत ट्रांसकाकेशिया, मैसोपोटा-मिया और एशिया माइनर आते थे। एक केन्द्र शासित कुशल शासन व्यवस्था ने साम्राज्य को कायम रखने, उसे बढ़ाने और हूण जैसे खानाबदोश आक्रमणकारियों के हमलों को विफल करने में सहायता दी। फिर भी पहले रोमन साम्राज्य के साथ और बाद में बिजेंटाइन साम्राज्य के साथ चलने वाली लंबी और खर्चीली लड़ाइयों ने ससानी साम्राज्य को कमजोर कर दिया। इस्लाम के उदय के बाद अरब बड़े शक्तिशाली हो उठे थे। उन्होंने 651 ई० में ईरान को जीत लिया।

चौथी शताब्दी की चांदी की एक तश्तरी। इसमें ससानी सम्राट शापुर द्वितीय को जंगली जानवरों का शिकार करते हुए दिखाया गया है।

आर्थिक और सामाजिक जीवन

प्राचीन ईरान में अधिकांश भूमि का स्वामित्व राजाओं, मंदिरों, राजा के मित्रों व रिश्तेदारों और अमीरों (सभासदों) के पास था, जो राज्य के अधिकारी होते थे। इन भूस्वामियों की बड़ी-बड़ी जागीरों पर किसान काम करते थे जिनकी हालत कृषि दासों से बहुत बेहतर न थी। अपनी जागीरों पर काम करने के लिए ये जमींदार गुलामों और मजदूरों को नौकर भी रखते थे। इन गुलामों में अधिकांश वे युद्धबंदी होते थे जिन्हें ईरान की सेनाओं ने अपनी अनेक लड़ाइयों में पकड़ा था। किसानों की हालत सामान्यतया बड़ी दारुण थी। कहीं-कहीं पर किसानों की अपनी जमीन होती थी। ऐसे किसानों की हालत उन किसानों से बेहतर थी जो जमींदारों की जागीरों में काम करते थे।

समाज के उच्च वर्ग के लोग बड़े संपन्न थे और वे ऐशो-आराम की जिंदगी बिताते थे। इन उच्च वर्ग वालों की संपन्नता का एक कारण बड़े पैमाने पर फैला हुआ आंतरिक व बाह्य व्यापार था। ऐकेमेनी लोगों ने अपने साम्राज्य में बड़ी संख्या में सोने और चांदी के सिक्के चला रखे थे। माप तौल के पैमानों का भी मानकीकरण हो चुका था। ऐकेमेनी लोगों ने बहुत अच्छी सड़कें भी बनवाई थीं। रोमन लोगों की सड़क-व्यवस्था के पहले इन्हीं की सड़क-व्यवस्था संसार में सर्वोत्तम थी। इन लोगों की बनवाई सड़कों में सबसे प्रसिद्ध वे थीं जो फारस की खाड़ी के समीप के सूसा को एशिया माइनर के साडीस से जोड़ती थीं। इन दोनों स्थानों के बीच की दूरी 2500 कि० मी० है। इतनी लंबी और अच्छी सड़कें बनवा पाना इसलिए संभव हो सका कि उनके पास महसूली या कराधान की बड़ी कुशल व्यवस्था थी। करो द्वारा राज्य की आमदनी इतनी हो जाती थी कि वह ऐसे बड़े-बड़े कामों को हाथ में ले सकता था। इन कारणों के फलस्वरूप संपूर्ण साम्राज्य में आंतरिक व्यापार और दक्षिणी यूरोप के साथ बाहरी व्यापार खूब बढ़ा। जहाज बनाने वाले उद्योग ने समुद्री व्यापार को बढ़ावा दिया। राजाओं ने भी बड़ी-बड़ी साहसिक समुद्री यात्राओं को प्रोत्साहन और संरक्षण दिया। प्राचीन काल में ईरान में अनेक प्रसिद्ध जहाजी व जांबाज खोज यात्री हुए हैं। उनमें से एक स्काइलैक्स था जिसने

दारा के आदेश पर सिंधु नदी के मुहाने से मिस्र तक की यात्रा की थी जिसमें 2½ वर्ष लगे थे।

प्राचीन ईरान के राजाओं ने कृषि का विस्तार करने के लिए बड़े काम किए। उन्होंने ऐसे स्थानों में भूमिगत नहरें बनवाईं जहां पानी की बहुत कमी थी। उन्होंने नई-नई फसलें भी लगवाईं। पनचक्की जैसे अभिनव मशीनी काम भी उन्होंने शुरू करवाए। चूंकि रेशम की मांग बहुत थी, उन्होंने बहुत बड़े पैमाने पर रेशम के कीड़ों का प्रजनन व पालन करवाया।

ससानी राजाओं के जमाने में भी बड़ी-बड़ी जागीरों की कुछ ही लोगों द्वारा मिल्कियत जारी रही। ऐसे कुछ लोगों की शक्ति यहां तक बढ़ी कि राजाओं तक को उन पर आश्रित होना पड़ा। किसानों की हालत बदतर होती गई। ऐकेमेनी और ससानी सम्राटों के चकाचौंध कर देने वाले वैभव व उनकी सेनाओं की शक्ति संपन्नता अपने भीतर एक ऐसा सामाजिक ढांचा छिपाए हुए थी जो शोषण पर आधारित था।

धर्म

प्राचीन ईरान में धार्मिक विश्वासों की बड़ी विविधता विद्यमान थी। फिर भी प्राचीन काल के ईरानियों का मुख्य धर्म पारसी अर्थात् ज़रथुष्ट्र-धर्म था। पारसी धर्म के संस्थापक ज़रथुष्ट्र थे। ज़रथुष्ट्र को यूनानी भाषा में ज़रोष्टर कहते हैं। ज़रथुष्ट्र ने प्राचीन ईरानी धर्म में कुछ नए सिद्धांतों

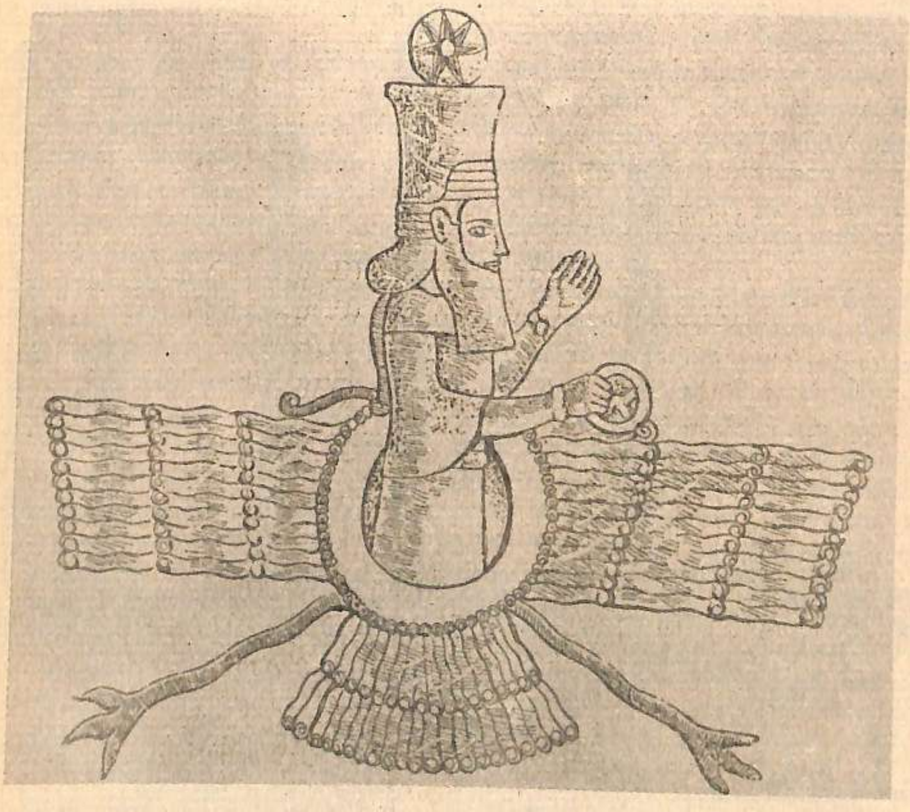

सम्राट दारा की मूर्ति के ऊपर अहुर माजदा के प्रतीक को दिखाया गया है

का समावेश ही किया, विशेषकर एक ईश्वर की विचार-धारा का। उन्होंने इस धर्म की अनेक बुराइयों को दूर किया।

ज़रथुष्ट्र कब पैदा हुए थे, यह निश्चित नहीं है, लेकिन अधिकांश विद्वानों के मत में वे ई.पू. सातवीं शताब्दी में हुए हैं। उनके सिद्धांत और उपदेश पारसियों की धार्मिक पुस्तक 'अवेस्ता-ए-जेंद' में भजनों (गीतों) अथवा 'गाथा' के रूप में मिलते हैं। ज़रथुष्ट्र ने कहा कि संसार में दो शक्तियां काम करती हैं—अच्छी और बुरी। विश्व ब्रह्मांड का सभी जीवन इसी अच्छे और बुरे, सद और असद अथवा प्रकाश और अंधकार के मध्य चलने वाले संघर्ष को दिखाता है। भगवान अहुर माज़दा अच्छी शक्तियों का प्रतिनिधि है और अहिरमान बुरी शक्तियों का। अहुर माज़दा अहिरमान् के बीच जो संघर्ष निरंतर चल रहा है, उसका निर्णय अहुर माज़दा के पक्ष में ही होगा और तब संसार सदाचारी हो जाएगा। इस संघर्ष में मनुष्य की भूमिका एक निश्चेष्ट द्रष्टा मात्र की नहीं है। उसे अपने में अच्छाइयां पैदा करनी होंगी ताकि वह अहुर माज़दा की ओर से इस संघर्ष में सक्रिय हिस्सा ले सके। अहुर माज़दा प्रकाश का प्रतिनिधि है। इसलिए उसके दृश्य प्रतीकों के रूप में सूर्य और अग्नि की पूजा होने लगी।

प्राचीन ईरानियों के कुछ छोटे देवता भी थे—इंद्र, वायु, मित्र, नाबोन-ऋत्य और वेरेथ्रघ्न। वैदिक देवताओं के रूप में भी इन्हें पहचाना जा सकता है। यह साम्यता इस कारण है

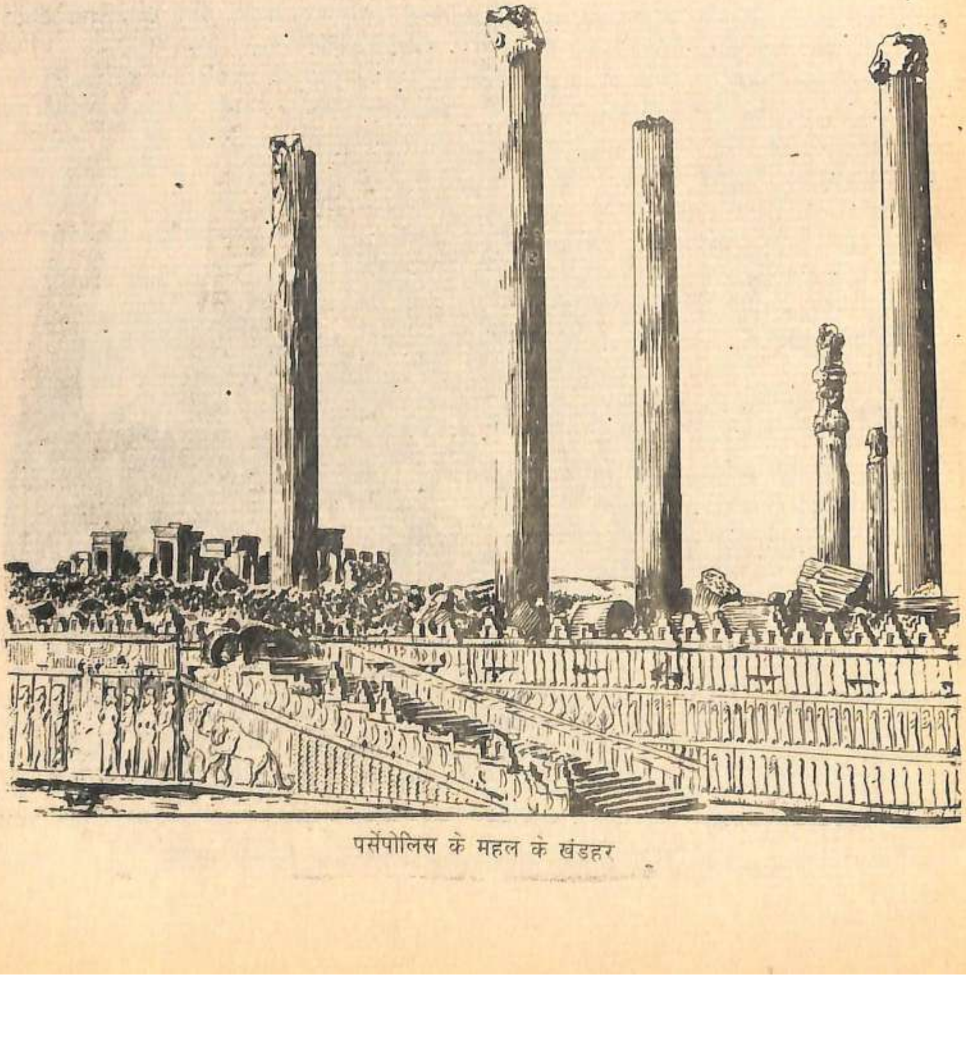

पर्सेपोलिस के महल के खंडहर

कि प्राचीन ईरानी और वैदिक आर्य भारत-यूरोपीय भाषा परिवार के एक ही कुल के हैं और भारत आने वाले वैदिक आर्य ईरान होकर ही भारत पहुंचे। इसलिए इन दोनों जनगणों के अनेक देवताओं का समान होना स्वाभाविक ही है।

यहूदी और ईसाई दोनों ही धर्म पारसी धर्म के ऋणी हैं। यहूदी धर्म के शैतान की संकल्पना और बाइबिल में बुद्धिमान मनुष्यों की कथा का मूल ज़रथुष्ट्र के लेखों में पाया जाता है। ईसाई धर्म में कुछ अन्य विचार भी पारसियों के धर्म से ही लिए गए प्रतीत होते हैं, जैसे कि मरे हुओं का फिर से जी उठना, दानवों पर अंत में विजय प्राप्त करना, और कयामत के दिन की संकल्पना जबकि दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा। भारत के पारसी ज़रथुष्ट्र धर्म के मानने वाले हैं।

कला और संस्कृति

ईरान के इतिहास में ऐकेमेनी काल अपने वास्तुकलात्मक वैभव के लिए उल्लेखनीय है। यह बात सूसा, पासरगादे और पर्सेपोलिस नगरों के अति विशाल स्मारक भवनों को देखकर कही जा सकती है। ज़रथुष्ट्र धर्म एक सादगी वाला धर्म था। उसे बड़े-बड़े मंदिरों या पूजागृहों की जरूरत न थी। इसीलिए अधिकांश ऐकेमेनी वास्तुकला लौकिक (secular) लक्षणों वाली है। ऐकेमेनी सम्राटों के महल बड़ी सावधानी से बनाए गए हैं और उनको बनाते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि वे अपनी चमक-दमक और टीमटाम से दर्शकों को चकाचौंध कर दें। महलों को बनाने के लिए कारीगर और साजो-सामान साम्राज्य के हर कोने से ढूंढ़ निकाले जाते थे और इसी से इन भवनों में विभिन्न जनगणों की कलात्मक परंपराओं के दर्शन होते हैं। महान सम्राट दारा प्रथम का एक अभिलेख उसके सूसा के महल से प्राप्त हुआ है जिससे पता चलता है कि महल किस प्रकार बनवाया गया था और इस बात का भी आभास मिल जाता है कि ऐकेमेनी वास्तुकला कितनी सुंदर थी। अभिलेख में लिखा है—इस स्थान की खुदाई का काम, बजरी बिछाने का काम और धूप में सूखी ईंटें बनाने का काम बाबुलवासियों ने किया, लेबनान से देवदार की लकड़ी लाने का काम असीरियाई, कैरीअन और आयोनिअन लोगों ने किया, बलूत की लकड़ी गांधार और कार्मेनिया से लाई गई; सोना सार्डिस और बैक्ट्रिया से लाया गया, माणिक्य सोदिआना से लाया गया और चांदी तथा आबनूस मिस्र से लाया गया, दीवालों की सजावट आयोनिया से आए सामान से की गई, हाथी-दांत इथियोपिया, सिंध और आरकोशिया से लाया गया, खंभों के लिए पत्थर अफेदीखिया से आया, पत्थरकट लोग आयोनिया और सार्दिनिया से आए, सुनार मीडिया और मिस्र के थे, ईंट बनाने वाले आयोनिया और बाबुल के थे, दीवालें सजाने वाले मीडिया और मिस्र के थे।

ऐकेमेनी वास्तुशिल्प के वैभव का सानी उस युग की किसी भी संस्कृति के वास्तुशिल्प में नहीं मिलता। दुर्भाग्य से ऐकेमेनी कला की अनेक उपलब्धियों को सिकंदर के हमले के समय नष्ट कर डाला गया।

ससानी शासन के समय ईरानी कला की महिमा के पुनः दर्शन हुए। विशेषकर नक्काशी की कला तो बड़ी ऊंचाई पर पहुंच गई। इस कला में शिकार और युद्ध के दृश्य दिखाए गए हैं। इस युग के ईरानी कलाकारों ने हीरे काटने, धातु उत्कीर्णन, कांच की ढलाई और कीमती कपड़ों की बुनाई में बड़ी महारत हासिल की। तश्तरियों, प्यालों और बोतलों पर जो सजावट हुई है उसमें मानव और पशु आकृतियां तो दिखाई ही गई हैं, अनेक कल्पित जीवों की आकृतियां भी यहां उकेरी गई हैं। ईरान की कला का प्रसार बड़े विशाल भूभाग पर फैला जिसके पूर्व में चीन तक और पश्चिम में यूरोप तक का भाग शामिल है। मध्यकालीन यूरोप की कला और वास्तुकला प्राचीन ईरान की कला और वास्तुकला से विशेष रूप से प्रभावित है।

ईरान के प्राचीन काल में भाषाओं और साहित्य ने भी बड़ी उन्नति की। ऐकेमेनी साम्राज्य के दौरान राजकाज की भाषा अरैमाइक थी लेकिन पुरानी फारसी भाषा भी खूब इस्तेमाल में आती थी। अरैमाइक एशिया के एक बड़े भूभाग में व्यवहृत होती थी और इसकी लिपि ने अनेक एशियाई लिपियों को प्रभावित किया। पुरानी फारसी भी अरैमाइक लिपि में ही लिखी जाती थी। ससानी सम्राटों ने पुरानी फारसी को फिर से जीवित किया और इसे अपने साम्राज्य के राजकाज की भाषा बना दिया। उस युग तक पहलवी नामक एक नई लिपि ने भी विकास कर लिया था।

ईरान का सर्वाधिक जाना जाने वाला प्राचीन साहित्य 'अवेस्ता' है जिसमें ज़रथुष्ट्र का लेखन मिलता है। प्राचीन रोमन इतिहासकार प्लिनी हर्मिप्पस नामक एक व्यक्ति का जिक्र करता है जिसने ई॰पू॰ तीसरी शताब्दी में ज़रथुष्ट्र के उपदेशों को 20 लाख पंक्तियों में लिख डाला था। ससानी काल में ईरानियों ने साहित्य के क्षेत्र में बड़ी प्रगति की थी। ससानियों का एक बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने यूनानी, लैटिन और भारतीय शास्त्रों के दर्शन, चिकित्सा और

ज्योतिष जैसे विभिन्न विषयों पर मिलने वाले महत्वपूर्ण ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद कराया। प्राचीन भारत के अनेक महाग्रंथ ईरान से ही विश्व के अनेक दूसरे भागों में पहुंचे। ऐसा माना जाता है कि ईरानियों ने इसी युग में भारत से शतरंज का खेल सीखा। ससानी सम्राट दूसरे देशों के विद्वानों का सदैव स्वागत करते थे। ईरानियों की धार्मिक सहिष्णुता के ही कारण अनेक यूनानी विद्वानों ने उनके यहां शरण ली क्योंकि यूनान के चर्च ने उन्हें अपने यहां बहुत परेशान किया था। ईरान के शासकों की विशाल हृदयता और उदारता का नतीजा यह रहा कि उनकी संस्कृति बड़ी फूली-फली और उनके यहां सांस्कृतिक पुनर्जागरण का युग आया। ईरान की सांस्कृतिक परंपराओं को अरबवासियों ने भी प्राप्त किया जब वे सातवीं शताब्दी में ईरान के शासक बने। साथ ही अरबों ने प्राचीन ईरान की इन सांस्कृतिक उपलब्धियों को विश्व के अन्य भागों में भी फैलाया।

यूनान की सभ्यता

यूनान के प्रारंभिक निवासी

यूनान के निवासी उत्तर की ओर से संभवतः डैन्यूब नदी की घाटी से आए थे। वे भारत-यूरोपीय कुल की एक भाषा बोलते थे। ईजियन क्षेत्र में भी इन आर्यों के जितने भी झुंड आए, उनके भिन्न-भिन्न नाम थे, जैसे एकीयन (Achaeans), आयोनियन (Ionians) और डोरियन (Dorians)। कालांतर में ये सभी अपने को हैलेन कहने लगे। हैलेन का अर्थ यूनानी होता है। आजकल भी यूनानियों के लिए ग्रीक शब्द के स्थान पर हम हैलेन शब्द के अनेक रूपों का प्रयोग करते हैं।

आर्यों की भांति ही प्रारंभिक यूनान के निवासी भी कबीलों में रहते थे। प्रत्येक कबीले में अनेक परिवार होते थे। उनका एक नेता होता था। कई क़बीलों का स्वामी राजा होता था। प्रारंभिक यूनानियों के मुख्य व्यवसाय, कृषि, पशुपालन मिट्टी के बर्तन, तलवार और आभूषण बनाने थे। व्यापार अधिकतर वस्तुओं का विनिमय करके होता था। युद्ध, जोखिम के कार्य और विजय में ही यूनानी लोग जीवन का सर्वोच्च आनन्द अनुभव करते थे।

प्रारंभिक यूनानियों के धार्मिक विश्वास बहुत सरल थे। उनके अनेक देवता थे। यूनानी लोगों ने अपने देवताओं की मनुष्यों के रूप में कल्पना की थी, यद्यपि ये देवता मनुष्य की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और अमर समझे जाते थे।

यूनानी देवता ज़ियस

जियस आकाश का देवता था। अतः उसी के कारण बिजली चमकती थी। समुद्र के देवता को वे पोसीदन कहते थे। वह ऐसे तूफानों को उठाता था, जिनके कारण जहाज डूब जाते थे। अपोलो **सूर्यदेवता था**। वह भविष्यवाणी कर सकता था। एथीना विजय की देवी थी। वह भारत की देवी सरस्वती के समान ही कलाओं का संरक्षण करती थी। शराब के देवता को वे डायोनीसस कहते थे। इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य देवता भी थे।

यूनानियों का विश्वास था कि देवता लोग ओलिम्पस पर्वत पर रहते हैं। यह पर्वत यूनान के उत्तरी भाग में स्थित है। वे स्वर्ग या नरक में विश्वास रखने के कारण इन देवताओं को नहीं पूजते थे, अपितु अच्छी फसल का लाभ उठाने और अपने सभी कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए अपने देवताओं को प्रसन्न करना चाहते थे। उनके देवताओं का मनुष्यों के पाप-पुण्य से कोई सरोकार न था। यूनानियों के पुरोहित नहीं होते थे। परिवार का स्वामी ही यज्ञ करता था या राजा सारे समुदाय की ओर से यज्ञ करता था।

लगभग 800 ई॰पू॰तक यूनानी लोग लिखना नहीं जानते थे। किन्तु लोक-गीतों और वीर-काव्यों में वे अपने वीरों और विजयों की कथाएं गाते थे। इस प्रकार उनके पूर्वजों की

कहानी सुरक्षित रही। जब लिपि का विकास हो गया तो कवियों ने इन कहानियों को लेख-बद्ध कर दिया। होमर नाम के कवि ने दो प्रसिद्ध कविताएं लिखीं। इनसे हमें प्रारंभिक यूनानियों के जीवन और समाज के विषय में बहुत जानकारी मिलती है। एशिया-माइनर के पश्चिमी तट पर ट्रॉय नाम का नगर है। 'इलियड' में इस नगर के घेरे और नाश की कहानी का वर्णन है। 'ओडिसी' में ओडिसयस नामक यूनानी वीर के जोखिमपूर्ण कार्यों और उसके ट्रॉय से घर लौटने की कहानी लिखी गई है।

नगर-राज्यों का उदय

800 ई० पू० के लगभग कुछ यूनानी ग्रामों के समूहों ने मिलकर नगर-राज्यों का रूप ले लिया। एक नगर-राज्य में सबसे ऊंचे स्थान पर एक्रोपोलिस या गढ़ बनाया जाता था जिससे कि नगर सुरक्षित रह सके। इस गढ़ के चारों ओर नगर बसा होता था। समस्त यूनान और समीप के स्पार्टा, एथेंस, मकदूनिया, कोरिन्थ और थीब्स आदि द्वीपों में ऐसे अनेक नगर स्थापित हो गए।

इन नगर-राज्यों में पहले राजा राज करते थे। कुछ समय पश्चात् धनी जमींदारों ने सारी राजनैतिक शक्ति अपने हाथ में ले ली और राजतंत्र को समाप्त कर दिया। नगरों की जनसंख्या बढ़ी जब व्यापार और उद्योगों की उन्नति हुई, तो इन नगरों में धनी मध्यम वर्ग का विकास हुआ। जमींदारों की शक्ति कम करने के लिए यह मध्यम वर्ग निर्धन किसानों से मिल गया। इस संघर्ष के फलस्वरूप इन राज्यों में तानाशाहों का उदय हुआ जिन्हें यूनानी लोग 'टायरेण्ट' कहते थे। समय के साथ तानाशाही भी समाप्त कर दी गई और अधिकतर राज्यों में लोकतंत्र या कुछेक धनियों द्वारा संचालित अल्पतंत्र (Oligarchy) की स्थापना हुई।

इन नगर-राज्यों में कुछ बातें एक सी थीं। परंतु उनमें से प्रत्येक की कुछ निजी विशेषताएं भी थीं। उनमें आपस में अनेक संघर्ष हुए और यात्रा और संचार की कठिनाइयों के कारण वे संगठित होकर एक महान राज्य का रूप न ले सके। यूनान की मुख्य भूमि पर दो प्रमुख नगर-राज्य, स्पार्टा और एथेंस थे।

स्पार्टा का राज्य

स्पार्टा का राज्य यूनान के प्रायः सभी अन्य राज्यों से भिन्न था। इसका एक कारण यह था कि इसकी भौगोलिक स्थिति ही ऐसी थी। पर्वत श्रेणियां इसे अन्य राज्यों से पूर्णतया अलग करती थीं। स्पार्टा के निवासियों की सबसे अधिक रुचि सैन्यवाद और युद्ध में थी। इसी कारण वे सात वर्ष की अवस्था से ही अपने बालकों को कठिनाइयां और कष्ट सहन करने का अभ्यास कराते और उन्हें कुशल और भयंकर योद्धा बनाने के लिए प्रशिक्षण देते थे। यही उनकी शिक्षा थी। शस्त्र चला सकने वाले सभी नागरिक योद्धा होकर अपना सारा जीवन बैरकों में बिताते थे। स्पार्टा के बहुत से निवासी दास थे। अधिकतर काम वे ही करते थे जिससे स्पार्टा के नागरिक अन्य कार्यों की चिन्ता से मुक्त रहते और युद्ध कला और शासन में समय लगाते थे। स्पार्टा के राजाओं का मुख्य कार्य सेना का नेतृत्व करना ही था। कुलीन व्यक्तियों की एक परिषद् और एक सभा शासन-कार्य का निरीक्षण करती थी। वही राज कर्मचारियों का चुनाव करती और शिक्षा की व्यवस्था भी करती थी। लेकिन स्पार्टा का शासन सेना द्वारा सेना के हितों को ध्यान में रखकर ही चलाया जाता था। सभा के सदस्य वे ही नागरिक हो सकते थे, जिनकी आय इतनी होती कि वे सेना में एक नियत स्तर के पद पर नियुक्त होने के अधिकारी होते।

स्पार्टा के निवासियों की दास-प्रथा ने स्वयं स्पार्टा के नागरिकों को ही अंततः दास बना दिया। दास सदा विद्रोह करते रहते थे और उनका दमन करने के लिए राज्य को सदा ही शक्तिशाली सेना रखनी पड़ती थी। स्पार्टा का कोई भी निवासी अपनी बैरक से बाहर निहत्था नहीं निकलता था। स्पार्टा का प्रत्येक निवासी बचपन से साठ वर्ष की उम्र तक कठोर अनुशासन में अपनी बैरक में रहता था, अतः उसे शिक्षा प्राप्त करने और गृहस्थ जीवन बिताने का अवसर ही न मिलता था। नए विचारों के आने से उनकी जीवन पद्धति नष्ट न हो जाए, इस भय से वे व्यापार और विदेश-यात्रा की भी अनुमति नहीं देते थे। स्पार्टा के निवासी कुशल योद्धा थे। यूनान की संस्कृति के निर्माण में किसी अन्य रूप में उनका योगदान नहीं रहा। उनके काव्य और गीतों में केवल सैनिक सफलताओं का यश गाया गया है।

एथेंस का राज्य

एथेंस के नगर-राज्य का विकास स्पार्टा के विकास से पूर्णतया भिन्न रूप में हुआ। एथेंस का राज्य जिन प्रदेशों पर था, उन पर इस राज्य ने धीरे-धीरे शांतिपूर्ण तरीके से

पेरिक्लीज युग का यूनान

अधिकार किया, इसलिए वहां सैन्यवाद का विकास नहीं हुआ। एथेंस के पास बड़े अच्छे बंदरगाह और बहुमूल्य खनिज पदार्थ थे। एथेंस के निवासियों ने व्यापार में बहुत उन्नति की, जिसके कारण वहां नागरिक सभ्यता का विकास हुआ।

सातवीं शती ई० पू० में एथेंस में राजतंत्र के स्थान पर धनिकों के अल्पतंत्र (Oligarchy) की स्थापना हुई। इस काल में अधिकतर भूमि किसानों के हाथ से निकलकर कुलीन लोगों के हाथ में चली गई। बहुत से किसानों ने पहले अपनी भूमि धरोहर रखी; फिर अपने परिवार के सदस्यों को भी ऋण चुकाने के लिए धरोहर रख दिया। अंत में उन्हें अपनी भूमि से हाथ धोना पड़ा और वे सभी दास बन गए। एथेंस में कुलीन वर्ग और दास वर्ग के अतिरिक्त कुछ अन्य स्वतंत्र नागरिक भी थे। ये डेमोस कहलाते थे। इस वर्ग में स्वतंत्र किसान, मजदूर, कारीगर और व्यापारी थे। इनमें से कुछ धनी थे। ये सभी लोग कुलीन वर्ग के अल्पतंत्रीय शासन से असंतुष्ट थे। उनके संघर्ष के फलस्वरूप, 594 ई० पू० में सोलन को नया मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। उसे सुधार करने का अधिकार दिया गया। सोलन ने गिरवी प्रथा को समाप्त कर दिया और एथेंस के उन सभी नागरिकों को जो ऋण के कारण दास हो गए थे, मुक्त कर दिया। उसने यह नियम भी बना दिया कि भविष्य में एथेंस का कोई निवासी ऋण न चुका सकने के कारण दास नहीं बनाया जाएगा। किंतु उसने उन दासों को मुक्त कर दिया जो विदेशों से खरीद कर लाए गए थे। सोलन ने फिर से सभा की स्थापना की और एथेंस के सभी स्वतंत्र नागरिक इसके सदस्य माने गए। उसके सुधारों से निर्धन और मध्यम दोनों वर्गों को ही लाभ हुआ। न्याय व्यवस्था का भी पुनः संगठन किया गया। न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों का चुनाव भी नागरिकों के हाथ में आ गया।

469 से 429 ई० पू० में पेरिक्लीज के नेतृत्व में एथेंस का लोकतंत्र उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच गया। यह सभा दस जनरलों को चुनती थी और वे आधुनिक मंत्रिमंडलों के समान शासन चलाते थे। लगभग 15 वर्ष तक पेरिक्लीज इस मंत्रिमंडल का अध्यक्ष रहा। ये जनरल सभा के प्रति उत्तरदायी थे। इसलिए ये तानाशाह नहीं हो सकते थे। बहुत से लोकप्रिय न्यायालय थे, जिनमें जूरी द्वारा मुकद्दमों का फैसला होता था। जूरी के सदस्य सभी वर्गों के नागरिकों में से लाटरी द्वारा चुने जाते थे।

एथेंस के लोकतंत्र में केवल नागरिकों को राजनीतिक अधिकार और स्वतंत्रता प्राप्त थी। पेरिक्लीज के समय में कुल जनसंख्या का केवल थोड़ा भाग ही नागरिक वर्ग के अन्तर्गत आता था।

युद्ध और यूनानी लोकतंत्र की समाप्ति

पांचवीं शती ई० पू० में एथेंस के लोकतंत्र को दो युद्धों में फंसना पड़ा, जिसके कारण उसकी महानता समाप्त हो

पेरिक्लीज़

गई। एथेंस को पहला युद्ध शक्तिशाली ईरानी साम्राज्य और उसके सम्राट दारा के विरूद्ध लड़ना पड़ा। दारा ने पहले ही सिंधु नदी से लेकर एशिया माइनर तक के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था और अब उसने ईजियन सागर को पार करके विजय के लिए यूनान पर आक्रमण किया। उसकी बड़ी सेना एक बड़े जहाजी बेड़े की सहायता से एथेंस के निकट मराथन नामक स्थान पर जा उतरी। यूनान के इतिहास में पहली बार सारे राज्यों ने मिलकर एक शत्रु के विरुद्ध युद्ध किया। यूनानी सेनाएं संख्या में बहुत कम थीं, फिर भी 490 ई० पू० में मराथन के युद्ध में वे इतनी वीरता से लड़ी कि उन्होंने ईरानी सेनाओं को खदेड़ दिया।

दस वर्ष बाद ईरानियों की सेना ने यूनान पर फिर आक्रमण किया, परंतु वह अपने उद्देश्य में सफल न हुई। इस बार थर्मोपिले के दर्रे पर स्पार्टा के कुछ थोड़े-से योद्धाओं सें उनकी मुठभेड़ हुई। इन वीरों ने अपने जीते जी अंत तक इस तंग दर्रे की रक्षा की। ईरानियों ने एथेंस नगर में आग लगा दी, किन्तु अंत में उन्हें वहां से पीछे हटना पड़ा। इसी युद्ध के कारण यूनान के राज्यों में एथेंस प्रमुख बन गया।

एथेंस और स्पार्टा के बीच 431 ई० पू० से 404 ई० पू० तक पेलोपोनीशियन युद्ध हुआ। इस युद्ध के कारण एथेंस का पतन हो गया। ईरानी युद्धों के समय एथेंस ने अन्य यूनानी राज्यों से मिलकर एक संघ बनाया था। उस युद्ध के बाद उसने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इस संघ की सहायता से अपनी नौ-सेना की शक्ति बहुत बढ़ा ली। एथेंस की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर स्पार्टा के निवासी भयभीत हो गए। एथेंस और स्पार्टा के बीच सदा ही गर्मा-गर्मी रहती थी। इस युद्ध में यूनान के कुछ राज्यों ने एथेंस की सहायता की और कुछ ने स्पार्टा की। यह युद्ध बहुत दिनों तक चलता रहा। अंत में एथेंस की पराजय हुई और इसी के साथ इस देश में लोकतंत्र की समाप्ति हो गई। एथेंस को स्पार्टा का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। पेलोपोनीशिया के युद्ध से यूनान की महान संस्कृति का पतन प्रारंभ हो गया। इस युद्ध के पश्चात कई वर्षों तक यूनान के राज्य घरेलू युद्धों में फंसे रहे और इन्हीं युद्धों में इनकी सारी शक्ति समाप्त हो गई।

सिकंदर का साम्राज्य

एथेंस की हार के बाद मकदूनिया के राजा फिलिप ने यूनान के अधिकतर राज्यों पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र सिकंदर को अपने पिता की बड़ी सेना पैतृक संपत्ति के रूप में मिली और 20 वर्ष की अवस्था में सिकंदर संसार विजय करने के लिए चल दिया। 336 ई० पू० से 323 ई० पू० के 13 वर्षों के समय में उसने यूनानी राज्यों को अपना नेतृत्व स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया। इसी के साथ उसने उस समय के सबसे महान और शक्तिशाली ईरानी साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह भारत की सीमा पर आ गया। यहां उसने 326 ई० पू० में झेलम नदी के तट पर राजा पोरस को हराया और सिंधु नदी के रास्ते उसके मुहाने पर पहुंचा जहां से वह मैसोपोटामिया लौट गया। वहीं 323 ई० पू० में 32 वर्ष की आयु में बुखार से उसकी मृत्यु हो गई।

सिकंदर की विजय के कारण विश्व में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, यूरोप और एशिया के बीच व्यापार बढ़ा

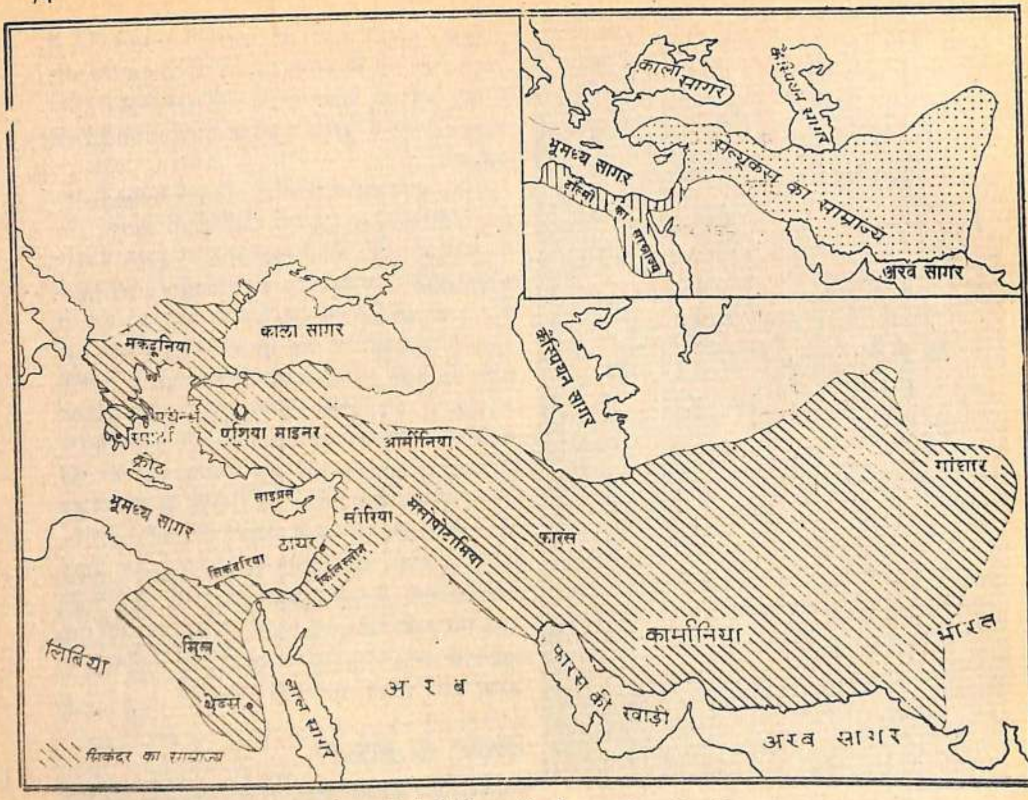

सिकंदर का साम्राज्य। भीतर चौखटे में ई०पू० तीसरी शताब्दी का विभाजित प्रदेश दिखाया गया है।

और अनेक नए नगर बसाए गए।

सिकंदर की मृत्यु के बाद उसके सेनापतियों ने उसके राज्य को आपस में बांट लिया। उसके एक सेनापति सेल्यूकस को ईरान, मैसोपोटामिया और सीरिया प्राप्त हुए। बाद में सेल्यूकस ने भारत पर हमला किया। परंतु चंद्रगुप्त मौर्य ने उसे हरा दिया। इस युद्ध के फलस्वरूप सेल्यूकस के साम्राज्य और मौर्य साम्राज्य के बीच मैत्री संबंध स्थापित हो गए।

सिकंदर का एक सेनापति टॉल्मी (Ptolemy) था। वह मिस्र, फिलिस्तीन और फिनीशिया का शासक बना। मिस्र की विजय के उपलक्ष में सिकंदर ने सिकंदरिया का नगर बसाया। यूनान के पतन के बाद यह नगर बहुत दिनों तक यूनानी संस्कृति और शिक्षा का केन्द्र रहा। टॉल्मी ने सिकंदरिया में कला, साहित्य और शिक्षा की देवी का एक मंदिर बनवाया। यह म्यूजियम नाम से जाना जाता है। इसमें एक वेधशाला और एक पुस्तकालय था। टॉल्मी का आदेश था कि जो भी पुस्तक मिस्र में आए उसकी एक प्रति इस पुस्तकालय को अवश्य दी जाए।

सिकंदर और टॉल्मी की मृत्यु के बाद भी उनके अच्छे काम चलते रहे। सिकंदरिया के म्यूजियम में कार्यरत विद्वानों ने उसे आगे बढाया। रेखागणित का जनक यूक्लिड इसी स्थान पर रहता था। भूगोल के विद्वान इरैटोस्थनीज ने पृथ्वी की परिधि का हिसाब यहीं लगाया था और आर्किमिडीज ने अपने उन सिद्धांतों का प्रतिपादन भी इसी म्यूजियम में किया जिन्हें बालक आज भी स्कूलों में पढ़ते हैं। इनकी और अन्य बहुत से उन विद्वानों की शिक्षाएं जिन्होंने इस म्यूजियम में कार्य किया, आज भी विश्व की बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर हैं।

दूसरी शती ई० पू० में रोम के साम्राज्य का पूर्व की ओर विस्तार होने लगा। 146 और 30 ई० पू० के बीच रोम के आक्रमणों के फलस्वरूप यूनानियों का सारा प्रदेश और उनका साम्राज्य रोम के साम्राज्य के भाग बन गए।

प्राचीन यूनानियों के योगदान

यूनान के जिस वैभव को संसार कभी नहीं भूल सकता, वह पेरिक्लीज के समय के एथेंस का वैभव था। किन्तु एथेंस का वैभव केवल पेरिक्लीज के साथ ही बंधा हुआ नहीं था। साथ ही यह भी है कि यूनानी सभ्यता चरम पूर्णता को न पा सकी थी क्योंकि वहां जन-जन में असमानता थी। असंख्य दास ही सारा कार्य करते थे। वे ही बालकों को पढ़ाते थे। यदि यह सारा कार्य दास न करते तो यूनान के नागरिकों को उन नए विचारों को सोचने और उन नई कृतियों की सृष्टि करने के लिए पर्याप्त समय ही न मिलता, जिनके कारण वे उच्चस्तरीय जीवन बिता सकें।

यूनानी नागरिकों का जीवन बहुत सरल था। पुरुष प्रतिदिन खेलों में भाग लेते, व्यायाम करते, रात के खाने के साथ शराब और संगीत से अपने को प्रसन्न रखते तथा जीवन, सत्य, सौन्दर्य और राजनीति संबंधी महत्वपूर्ण विषयों पर भी गंभीर चर्चा करते थे। शिक्षा देते समय संगीत, खेलकूद, साहित्य और भाषण देने की योग्यता पर बहुत बल दिया जाता था। लड़कियों की शिक्षा घरों पर ही होती थी। वे राजनीति में बहुत कम भाग लेती थीं।

विवाह और देवी-देवताओं की उपासना के मौकों पर उत्सव और अवकाश होते थे। इस प्रकार का एक उत्सव, ओलिम्पिक खेल, आज भी संसार में मनाया जाता है। जियस देवता के सम्मान में यह उत्सव तब भी आज की तरह हर चौथे वर्ष मनाया जाता था। इसमें भाग लेने वाले और दर्शक यूनान के कोने-कोने से आकर इकट्ठा होते थे। वे खुले रंगमंच पर दिखाए जाने वाले नाटकों, कविता-पाठ, वादविवाद और खेल-कूद की प्रतियोगिताओं का आनंद लेते थे।

यूनानी साहित्य

यूनानियों ने संसार को कई महाकाव्य, काव्य, नाटक और इतिहास दिए। इलियड और ओडिसी की गणना संसार के श्रेष्ठ महाकाव्यों में की जाती है। छोटी यूनानी कविताएं

यूनानी शिक्षा पांचवी शताब्दी के एक फूलदान पर बने चित्र में एक छात्र लायर (एक यूनानी वाद्य) बजाना सीख रहा है और दूसरा होमर रचित इलियड का पाठ कर रहा है।

हेरोक्लेटस

लिरिक कहलाती हैं, क्योंकि वे 'लायर' नाम के वाद्य के साथ गाई जाती थीं। इन गीतों में मानव के मनोभावों की अभिव्यक्ति होती थी। महान कवियित्री सैफो ने प्रेम और प्रकृति सौन्दर्य के गीत गाए। लघु गीत (लिरिक) लिखने वाले सर्वश्रेष्ठ कवियों में पिण्डार भी था जिसने विजयी खिलाड़ियों की प्रशंसा में कविताएं लिखीं।

दुखांत और सुखांत, दोनों प्रकार के श्रेष्ठ नाटक यूनान में लिखे गए। यूनानी नाटयशालाओं के खंडहर आज भी ईजियन सागर के निकट के क्षेत्रों में सब जगह देखे जा सकते हैं। 'प्रोमिथियस बाउंड' के लेखक एशिलस (Aeschylus) यूनानी दुखांत नाटकों के संस्थापक थे। यूनानी दुखांत नाटकों के लेखकों में सर्वश्रेष्ठ सोफोक्लीज थी। उसने 'ईडिपस रेक्स', एण्टिगोन' और 'इलेक्ट्रा' नाम के नाटक लिखे जिनकी सारे संसार में प्रशंसा होती है। एक अन्य सफल दुखांत नाटककार यूरिपिडीज था। उसने युद्ध की निन्दा की। दासों और जनसाधारण के साथ उसकी पूर्ण सहानुभूति थी। उसका एक प्रसिद्ध नाटक 'ट्रोजन वीमेन' है। यूनान के सुखांत न टककारों में सर्वश्रेष्ठ एरिस्टोफेनीज था। उसने व्यंग्य और हास्य-प्रेमी दर्शकों के सामने यूनान के गण्यमान नागरिकों का मजाक अपने नाटकों में उड़ाया।

यूनानियों ने ही संसार में सबसे पहले इतिहास की कुछ पुस्तकें लिखीं। हेरोडोटस ने जिन्हें इतिहास का जनक भी कहते हैं, यूनान औ र ईरान के युद्धों का इतिहास लिखने के लिए खूब भ्रमण ि या। थ्यूसीडाइडीज ने स्पार्टा और एथेंस के युद्ध का वर्णन किया। इन दोनों के कुछ समय पश्चात् प्लूतार्क हुआ। उसने 'लाइव्ज ऑफ इलस्ट्रियस मेन' नाम की अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में जीवन-चरित्र लिखे।

दर्शन : अनेक दश नों का विकास यूनान में हुआ। एक विचारधारा के प्रति ादकों के भौतिक जगत के स्वरूप के विषय में प्रचलित ौराणिक कथाओं और मिथ्या विश्वासों को प्रामाणिक नहीं माना और इनके विषय में तर्क संगत विचार प्रकट करने का प्रयत्न किया। दूसरी विचारधारा के प्रतिपादकों का वि ्वास था कि सभी वस्तुएं परमाणुओं से बनी हैं और इन परमाणुओं के विन्यास की भिन्नता के कारण इस विश्व में भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव पाए जाते हैं। इस शाखा क श्रेष्ठ दार्शनिक डेमोक्रिटस था। आत्मा या आध्यात्मिक जगत का अस्तित्व उसने नहीं माना। तीसरी विचारध.रा के प्रतिपादक 'सोफिस्ट' अर्थात् 'बुद्धिमान' कहलाते थे। सोफिस्ट लोगों का विश्वास था कि विश्व में कोई परम सत्य नहीं है। वे प्रत्येक तथाकथित सत्य का मूल्यांकन मनुष्यों के ऊपर उसके प्रभाव से करते थे। उनके अनुसार सभी वस्तुओं का मापदंड मानव है। दार्शनिक विचारों के विकास में सोफिस्ट लोगों ने बहुत योग दिया। रोम के एक महान विचारक ने ठीक ही लिखा है कि वे 'दर्शन को स्वर्ग से धरती पर ले आए'।

यूनान के सबसे अधिक प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात, प्लेटो और अरस्तू थे। सुकरात का विश्वास था कि ज्ञान सही आचरण और सुख का रास्ता दिखाता है और अज्ञानता से अनेक बुराइयां उत्पन्न होती हैं। उसने एथेंस वालों के लोक प्रचलित विश्वासों की कटु आलोचना की। अतः उसे युवकों को पथभ्रष्ट करने और नए देवताओं का प्रतिपादन करने के अपराध में प्राण-दंड की सजा दी गई। वस्तुतः वह युवकों को प्रत्येक बात की सच्चाई जानने के लिए शंका करने को प्रोत्साहित करता था। मुकद्दमे के समय जो साहसपूर्ण शब्द उसने कहे उनसे शताब्दियों तक शहीदों को प्रेरणा मिली है।

जिन यूनानियों के हाथ में उस समय राजसत्ता थी, वे ऐसे

रफेल द्वारा बनाया हुआ प्लेटो और सुकरात का चित्र

सत्रहवीं शताब्दी इंग्लैंड में छपी पुस्तक में सुकरात की मृत्यु को दिखाया गया है।

विचारों को स्वीकार करने को तैयार न थे, अतः उन्होंने सुकरात को विषपान करने के लिए विवश किया।

सुकरात का प्रमुख शिष्य अथवा अनुयायी प्लेटो था, जिसने 'रिपब्लिक' नाम की प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में प्लेटो ने ऐसे आदर्श समाज की कल्पना की जिसमें समाज तीन वर्गों में बंटा हो। उसने सबसे निम्नतम वर्ग में किसान, कारीगर और व्यापारी; मध्यम वर्ग में योद्धा और उच्चतम वर्ग में बुद्धिजीवी रखे। उसने सारी राजनीतिक शक्ति इन्हीं बुद्धिजीवियों के हाथ में रखी।

यूनान के दार्शनिकों में सर्वश्रेष्ठ अरस्तू था। वह उस अकादमी का विद्यार्थी था, जिसकी स्थापना प्लेटो ने की थी। अरस्तू दार्शनिक और वैज्ञानिक दोनों ही था। उसने अनेक विषयों पर लिखा है। उसने अपने समय के सभी विज्ञानों का अध्ययन किया और चिकित्साशास्त्र, प्राणिशास्त्र और ज्योतिष के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह मध्यम मार्ग में विश्वास रखता था, अर्थात् न तो पूर्णतया भोगविलास के जीवन में और न पूर्णतया विरक्ति में। उसने अपने राजनीतिक दर्शन में भी इसी सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उसका मत था कि शासक को उच्चवर्गीय और लोकतंत्र के बीच का होना चाहिए।

दो महत्वपूर्ण दार्शनिक विचारधाराओं का प्रतिपादन हुआ—स्टोइक और एपिक्यूरियन। स्टोइक विचारधारा के दार्शनिक नियतिवादी थे। उनका मत था कि मनुष्य को अपने भाग्य से संतुष्ट रहना चाहिए, क्योंकि भाग्य को बदलना उसकी शक्ति से बाहर है। इन दार्शनिकों के अनुसार सब मनुष्यों का उद्देश्य चित्त की शांति की प्राप्ति होना चाहिए। उनका मत था कि मनुष्य को सुख और दुःख तथा पाप और पुण्य से उदासीन रहना चाहिए। वे मानव मात्र के भ्रातृत्व में विश्वास रखते थे। एपिक्यूरियन विचारधारा के दार्शनिकों का मत था कि मनुष्य के लिए सबसे बड़ी भलाई सुख है। किन्तु वे सुखों में फंसने की अपेक्षा चित्त की शांति का लक्ष्य अपने सामने रखते थे। उनका विश्वास था कि देवताओं का मानव-कार्यों से कोई संबंध नहीं है। वे मनुष्यों को सादा, गुणवान और निर्भीक जीवन बिताने का उपदेश देते थे। उनके अनुसार इस प्रकार मनुष्य को सच्चा सुख मिल सकता है।

विज्ञान : यूनानियों के लिए विज्ञान और दर्शन में कोई अंतर नहीं था क्योंकि सभी दार्शनिक भौतिक संसार के स्वरूप को बदलने का प्रयत्न करते थे। गणित के क्षेत्र में, विशेषकर रेखागणित में, यूनानियों ने बहुत उन्नति की, जैसा कि यूक्लिड और पाइथागोरस के ग्रंथों से स्पष्ट है। हिप्पोक्रेटीज ने आधुनिक चिकित्साशास्त्र की नींव यह कहते हुए रखी कि 'प्रत्येक रोग का कोई-न-कोई प्राकृतिक कारण होता है और बिना प्राकृतिक कारणों के कुछ भी नहीं होता या घटता'। उसे 'चिकित्साशास्त्र का जनक' कहा जाता है।

सिकंदर की विजयों के पश्चात् विज्ञान में बहुत प्रगति हुई। एरिस्टार्कस ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया कि पृथ्वी और अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। किन्तु फिर भी सोलहवीं शती ई० तक उसके सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया गया और टॉल्मी के इस मत को कि पृथ्वी विश्व के केन्द्र में स्थित है, सभी वैज्ञानिक मानते रहे। हिप्पार्कस ने चंद्रमा के व्यास का और पृथ्वी और चंद्रमा की दूरी का

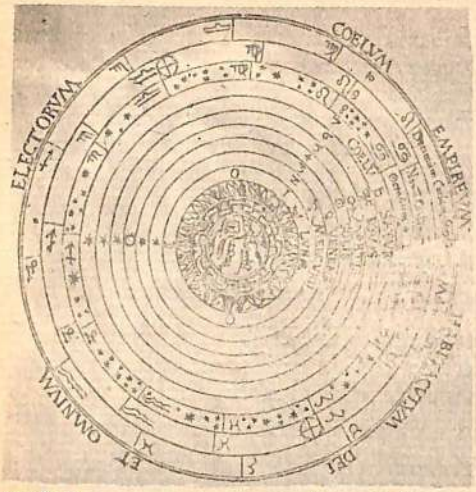

टॉल्मी के अनुसार भू-मंडल का रेखाचित्र। टॉल्मी के इस मत को कि पृथ्वी भू-मंडल के केन्द्र में स्थित है, सोलहवीं शताब्दी तक यूरोप के लोग मानते रहे।

लगभग ठीक-ठीक हिसाब लगाया। एरैटोस्थनीज ने पृथ्वी की परिधि का जो हिसाब लगाया वह लगभग ठीक था, बस उसमें केवल 320 किलोमीटर की भूल थी। उसने विश्व का लगभग सही मानचित्र बनाया। उसने पहली बार यह कहा कि यूरोप से पश्चिम की ओर जहाज में यात्रा करके भारत पहुंचा जा सकता है। सैकड़ों वर्ष पश्चात् कोलंबस ने उसी के विचारों पर आधारित मानचित्र का प्रयोग किया।

सिकंदरिया चिकित्साशास्त्र के अध्ययन का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। हिरोफिलस ने विस्तार के साथ मस्तिष्क का वर्णन किया। उसने रक्त-संचार में धमनियों का कार्य भी बतलाया। वहां डाक्टरों ने पहली बार मानव-शरीर की चीरफाड़ का अभ्यास किया और मानव शरीर-रचना का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया।

वास्तुकला तथा अन्य कलाएं : यूनानी वास्तुकला और मूर्तिकला के श्रेष्ठ उदाहरण उनके मंदिरों में मिलते हैं। यूनानी मंदिरों में एक ऐसा प्रकोष्ठ होता था जिसमें देवता की मूर्ति प्रतिस्थापित की जाती थी। इस प्रकोष्ठ के चारों ओर स्तंभ होते थे। इन स्तंभों के शीर्ष अनेक प्रकार के होते थे। इन स्तंभों की यह शैली यहां की वास्तुकला की विशेषता थी। इस बात का ध्यान रखा गया कि इन मंदिरों

पार्थेनन

का प्रत्येक भाग दूसरे भागों के अनुरूप हो। एथीना का मंदिर पार्थेनन यूनानी वास्तुकला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

यूनान के निवासी मानव के सौन्दर्य और साहस का बहुत आदर करते थे। इसलिए उनकी मूर्तिकला में हम इन्हीं दो गुणों की सुंदर अभिव्यक्ति पाते हैं। मानव-सौन्दर्य को उभारने के लिए उन्होंने सुगठित, स्वस्थ और मांसल शरीरों को पत्थरों में उतारा। अधिकतर मूर्तियां देवताओं या खिलाड़ियों की बनाई जाती थीं। देवताओं को भी मानव रूप में ही दर्शाया गया है। प्राचीन यूनान के दो प्रसिद्ध शिल्पी माइरन और फिडियस थे। माइरन की प्रसिद्ध कृति डिस्कस फेंकने वाले की मूर्ति है। फिडियस की सबसे प्रसिद्ध कृति हर्माज की वह मूर्ति है जिसमें उसे शिशु डायोनीसस को लिए हुए दिखाया गया है। पेरीक्लीज ने एथेंस में एक्रोपोलिस के निर्माण के निरीक्षण का भार फिडियस को सौंपा था।

प्राचीन यूनानियों की उपलब्धियां मानव की सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण अंग हैं। उन्होंने विश्व को 'सौन्दर्य' दिया, और दिया आज़ादी का एक आदर्श—आज़ादी विचारों की, मन-मस्तिष्क के अनुसार कहने व लिखने की, किसी भी बात में विश्वास करने या न करने की और जीवन में आनंद का अनुभव करने की।

रोम की सभ्यता

रोम की सभ्यता का मुख्य केन्द्र इटली था। इटली ने यूनान और यूरोप की संस्कृतियों को मिलाने में एक कड़ी का कार्य किया। यूनानी तथा उसके भी पूर्व की पश्चिमी एशिया की सभ्यताओं के विचार इटली होकर ही यूरोप पहुंचे।

इटली के सर्वप्रथम निवासी

इटली के सर्वप्रथम निवासी उत्तरी अफ्रीका, स्पेन और फ्रांस से आकर यहां बसे थे। 200 ई० पू० के कुछ बाद भारत-यूरोपीय-भाषाओं को बोलने वाले कुछ मनुष्य आल्प्स पर्वतों को पार करके यहां आकर बसने लगे। बाद में बहुत से यूनानी दक्षिणी इटली में आकर बस गए। एट्रस्कन नामक जाति के लोग भी इटली के एक भाग में बस गये। इटली के निवासी इन्हीं सब जातियों के वंशधर थे।

इटली के प्रारम्भिक निवासियों ने यूनानियों से बहुत-सी बातें सीखीं। उन्होंने यूनानी वर्णमाला, धार्मिक विश्वासों और कला को ग्रहण किया। इतालिया शब्द भी यूनानी भाषा का ही था। रोम की सभ्यता के विकास का प्रारंभ लगभग छठी शती ई० पू० में हुआ और जब यूनानी सभ्यता का पतन हो गया, तो यह सभ्यता उन्नति के शिखर पर पहुंच गई।

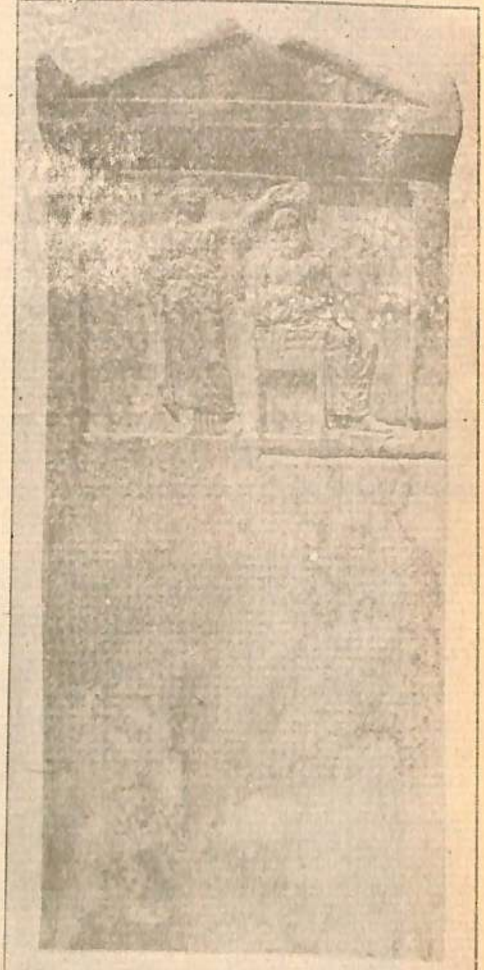

एथेंस में ईसा पूर्व 336 का "निरंकुश शासन के विरुद्ध" लेख। इस लेख में कहा गया है, "यदि कोई व्यक्ति संपूर्ण सत्ता हथियाने के लिए जनता के विरुद्ध खड़ा होता है अथवा एथेंस के गणतंत्र को उखाड़ फेंकने का प्रयास करता है, उसका वध करने वाला व्यक्ति निर्दोष होगा"

रोम का आरंभिक इतिहास

रोम नगर की स्थापना टाइबर नदी के दक्षिण में लैटियम नाम के ज़िले में लगभग 1000 ई० पू० में हुई। प्राचीन रोम के निवासियों की भाषा लैटिन का नाम लैटियम के नाम पर ही पड़ा है। रोम का गढ़ एक ऊंची पहाड़ी पर बना था। वह नगर इस क्षेत्र के अन्य नगरों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण बन गया।

प्राचीन रोम में एक राजा, एक सभा (Assembly) और एक सीनेट (Senate) होती थी। सभी पुरुष नागरिक जिनकी अवस्था सैनिक सेवा करने योग्य होती, सभा के सदस्य होते थे। सीनेट में सभी कुलों के नेता सम्मिलित होते थे। सबसे अधिक शक्ति सीनेट के हाथ में थी। वह राजा और सभा के प्रस्तावों को अस्वीकार कर सकती थी।

छठी शती ई० पू० के अंत में राजा का पद समाप्त कर दिया गया और गणतंत्र की स्थापना हुई। गणतंत्र शासन में रोम वालों ने इटली प्रायद्वीप के अन्य भागों पर अधिकार कर लिया। 265 ई० पू० तक इटली पर उनका अधिकार हो गया।

रोम के गणतंत्र की शासन-प्रणाली में सीनेट व सभा और दो कांसल होते थे। कौंसॅल का चुनाव सभा दो वर्ष के लिए करती थी। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, सीनेट के हाथ में सबसे अधिक शक्ति थी। वह सभा के निर्णयों का निषेध कर सकती थी। सार्वजनिक कोष का नियंत्रण भी सीनेट के हाथ में था। कांसॅल युद्ध में सेना का नेतृत्व करते, कानूनों को लागू करते और न्याय करते थे।

रोम का समाज दो वर्गों में बंटा था–पैट्रिशियन और प्लीबियन। पैट्रिशियन उच्चवर्ग माना जाता था जिसमें धनी लोग और वे जमींदार सम्मिलित थे जिनके हाथ में सीनेट की पूरी शक्ति थी। प्लीबियन वर्ग में मज़दूर, छोटे किसान, कारीगर, छोटे व्यापारी और योद्धा सम्मिलित थे। प्लीबियन लोगों के बहुत कम अधिकार थे, उन्हें बहुत से कर देने पड़ते थे और बहुधा उनको अनुचित दंड दिया जाता था। पांचवीं शती ई० पू० के आरंभ में उन्होंने विद्रोह किया और पैट्रिशियनों को उन्हें कुछ अधिक अधिकार देने पड़े। उन्हें ट्रिब्यून चुनने का अधिकार मिल गया जो कौंसॅलों और सीनेट के उन निश्चयों का निषेध कर सकते थे जिनका संबंध प्लीबियनों से होता।

454 ई० पू० में कानूनों की संहिता तैयार की गई। यह प्लीबियनों की दूसरी विजय थी। इन कानूनों को लकड़ी की तख्तियों पर लिखा गया। ये बारह तख्तियों के कानून कहलाते थे। इससे अधिकतर व्यक्तियों को अपने कानूनी अधिकारों की जानकारी हो गई और सरकारी कर्मचारियों के लिए कानून का उल्लंघन करना कठिन हो गया।

कार्थेज से युद्ध

इटली की विजय के पश्चात् रोम वालों की नए प्रदेशों पर अधिकार करने की लालसा बढ़ी। इसी कारण उन्हें अफ्रीका के उत्तरी तट पर स्थित कार्थेज नगर के निवासियों से कई युद्ध करने पड़े। कार्थेज की स्थापना नवीं शती ई० पू० में **फिनीशिया** के निवासियों ने की थी, किन्तु बाद में वह स्वतंत्र हो गया था। मिस्र, यूनान, स्पेन और अन्य भूमध्य सागरीय देशों के सामान का व्यापार कार्थेजवासियों के हाथों में था। फिनीशिया के निवासी कुशल नाविक थे और उनके द्वारा नवीन विचार अनेक देशों में फैले। कार्थेज के निवासियों को ये बातें पैतृक संपत्ति के रूप में फिनीशिया वालों से मिली थीं। यूनानियों ने फिनीशिया के निवासियों से बड़े अक्षर (Capital letters) सीखे थे और यूनानियों से रोम वालों ने। इन अक्षरों का प्रयोग अब भी होता है।

सिसिली के संबंध में रोम और कार्थेज में वैमनस्य हो गया जिसके कारण दोनों में युद्ध हुआ। सिसिली की भूमि उर्वरा थी और वहां कुछ यूनानी बस्तियां फल-फूल रही थीं। रोम-निवासियों को भय था कि कार्थेज के निवासी सिसिली पर अधिकार कर लेंगे, इसलिए उन्होंने कार्थेज पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण की कड़ी में 264 से 146 ई० पू० तक चलने वाले युद्ध प्युनिक युद्ध कहलाते हैं। कार्थेज वाले अपने सेनापति हैन्नीबाल के नेतृत्व में बड़ी वीरता से लड़े किंतु अंत में उनकी पराजय हुई और रोम के निवासियों ने कार्थेज के नगर में आग लगा दी और कार्थेज के हजारों निवासियों को दास बनाकर बेच दिया।

पहली शती ई० पू० के आरंभ तक रोम निवासियों ने यूनान और एशिया माइनर पर अधिकार कर लिया और मिस्र को भी अपने संरक्षण में ले लिया।

रोमन समाज पर युद्धों का प्रभाव

इन सभी युद्धों का रोम की सभ्यता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। विजित प्रदेशों के लाखों निवासी रोम के निवासियों के दास बना लिए गए। इसलिए रोम के समाज में अधिकतर या तो दास थे या उनके स्वामी। दास खेती करने, खान खोदने, और सड़क बनाने का काम करते थे और कारखानों

दासों को मामूली अपराधों के लिए भी अमानवीय यातनाएं दी जाती थीं। यातना का एक आम साधन टिकठी था जिसे ऊपर दिखाया गया है। यह एक तरह का लकड़ी का चौखट होता था जिसमें दासों के सर और हाथ को फंसा दिया जाता था

व जहाजों पर भी उन्हें काम करना होता था। उनका पाशविक रूप से शोषण किया जाता था और वे अल्प आयु में ही पंगु हो जाते थे। इस शोषण के कारण ही रोम के निवासी भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते थे। धनी लोग अपने धन का भद्दा प्रदर्शन करने के लिए एक दूसरे से होड़ लगाते थे। इसके कारण समाज का नैतिक पतन हो गया। तलवार चलाने वाले दो योद्धाओं में युद्ध या एक तलवार चलाने वाले और एक जंगली पशु से युद्ध इस काल में रोम के निवासियों के प्रिय मनोविनोद हो गए। इन प्रतियोगिताओं के लिए विशेष अखाड़े व रंग-भूमियां बनवाई गईं। सबसे बड़े अखाड़ों में एक था—कोलोसियम। इसके खंडहर आज भी रोम में विद्यमान हैं।

रोम का इस काल का इतिहास अनेक संकटों और षड्यंत्रों से भरा पड़ा है। रोम के उन निर्धन निवासियों ने विद्रोह किए जिनकी भूमि रोम के धनी निवासियों ने छीन ली थी। जनता द्वारा निर्वाचित ट्रिब्यूनों ने, हर व्यक्ति की भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करने और शेष भूमि को भूमिहीन निवासियों में बांटने का प्रयत्न किया। यद्यपि इस प्रयत्न में बहुत से ट्रिब्यूनों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा, फिर भी वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हुए। इस काल में दासों के भी विद्रोह हुए। दासों का सबसे महत्वपूर्ण विद्रोह 73 ई० पू० में हुआ। इसका नेता स्पार्टाकस था। लगभग 70,000 दासों ने इस विद्रोह में भाग लिया और रोम की पूर्णतया प्रशिक्षित सेनाओं को इसका दमन करने में एक वर्ष से अधिक समय लग गया। इस दमन के पश्चात् जो हजारों दास जीवित बचे उनकी हत्या कर दी गई। स्पार्टाकस की वीरता के कारण उसका गुणगान बहुत-सी वीरगाथाओं में किया गया है।

युद्धों के कारण सेनापतियों की राजनीतिक शक्ति बढ़ गई। सभा की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती गई और सेनापति अधिक महत्वपूर्ण बन गये। दासों के विद्रोह के दमन के पश्चात् सत्ता हथियाने के लिए पांपी और जूलियस सीजर नाम के दो सेनापतियों में विरोध बढ़ गया। उन दोनों में युद्ध हुआ और पांपी के शत्रुओं ने मिस्र में उसकी हत्या कर दी। सीजर कुछ काल तक मिस्र में रहा, क्योंकि वह मिस्र की अत्यंत सुन्दर रानी क्लिओपेट्रा पर आसक्त हो गया था। 46 ई० पू० में रोम लौटने पर वह तानाशाह बन बैठा। मगर राजा बनने का आरोप लगाकर 44 ई० पू० में सीनेट की एक बैठक में सीज़र की हत्या कर दी गई।

रोम का साम्राज्य

सीज़र की हत्या के बाद राज्य सत्ता उसके दो मित्रों, मार्क एंटनी और लेपिडस और उसके भाई के पोते ऑक्टेवियन के हाथों में आ गई। उन्होंने चुन-चुनकर उन सब व्यक्तियों का वध कराया, जिन्होंने सीज़र के विरुद्ध षड्यंत्र रचा था। षड्यंत्र के नेता ब्रूटस और कैसियस थे। वे

रोम स्थित "कोलोसियम"। इस विशाल रंगशाला का निर्माण ईसा की प्रथम शताब्दी में हुआ। दर्शकों के मनोरंजनार्थ ग्लेडिएटरों में तथा उनमें और जंगली जानवरों की खूनी लड़ाई के लिए किया जाता था। इसमें लगभग 45,000 दर्शकों के बैठने की व्यवस्था थी।

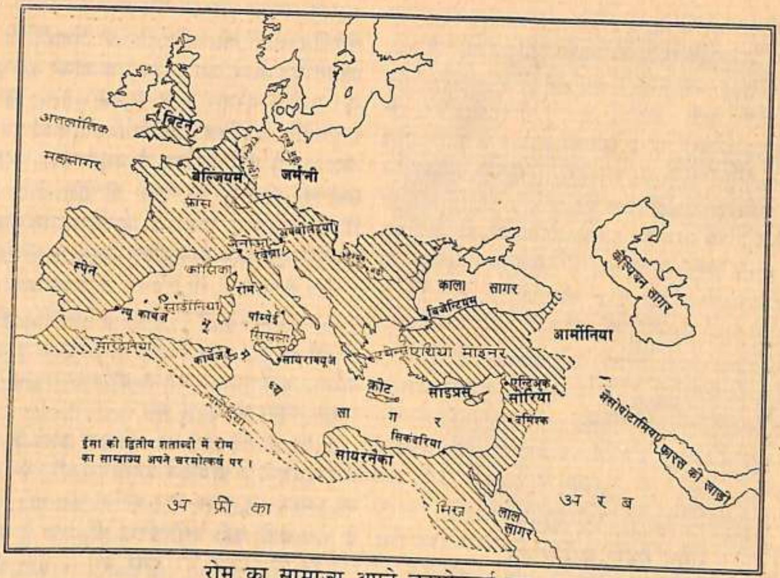

रोम का साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर

देश से भाग गए और उन्होंने एक बड़ी सेना का संगठन किया। किन्तु अंत में उन्हें पकड़ लिया गया और उनका वध कर दिया गया।

सैंतीस ई० पू० में ऑक्टेवियन रोम के साम्राज्य का सर्वाधिक शक्तिशाली व्यक्ति हो गया। उसने ऑगस्टस और इंपेरेटर उपाधियों से 24 वर्ष तक रोम के साम्राज्य पर शासन किया। ऑगस्टस का अर्थ 'पवित्र' और इंपेरेटर का 'विजयी सेनापति' होता है। वह अपने को प्रिंसेप अर्थात् 'राज्य का प्रथम नागरिक' भी कहता था। रोम के इतिहास में उसके राज्य काल से 284 ई० तक का समय प्रिंसपेट कहलाता है। उसने बहुत से आवश्यक सुधार किए। उसने विजित प्रदेशों के शासन को पुनः संगठित किया, भ्रष्टाचार और लूटमार को रोका और शांति तथा व्यवस्था स्थापित की। उसका और उसके बाद का राज्य काल शांतिपूर्ण था। इस काल को इतिहास में 'पैक्स रोमाना' कहते हैं जिसका अर्थ है 'रोम की शांति'।

ऑगस्टस के अधिकतर उत्तराधिकारी अत्याचारी थे। इनमें एक योग्य शासक मार्कस ऑरिलियस था। उसने 161 ई० से 180 ई० तक शासन किया। वह योग्य सेनापति, दार्शनिक और प्रशासक था। किन्तु उसके बाद अनेक अयोग्य उत्तराधिकारी हुए। 50 वर्ष की अवधि में 26 शासक हुए जिनमें से 25 की हत्या षड्यंत्रकारियों ने की। अंत में 284 ई० में डायोक्लीशियन शासक बना। उसने कहने को भी गणतंत्र नहीं रहने दिया। प्रजा के सभी व्यक्तियों को उसके सामने दंडवत होना पड़ता था। सीनेट के सभी अधिकार छीन लिए गए और रोम का सम्राट पूर्णतया निरंकुश हो गया।

इसी समय से रोम की सभ्यता का पतन तेजी से प्रारंभ हो गया। डायोक्लीशियन के उत्तराधिकारियों में कांस्टेनटाइन नाम का एक सम्राट हुआ। उसने बिजेण्टियम नाम के प्राचीन नगर के स्थान पर कुस्तुनतुनिया नाम की नई राजधानी बनवाई। कुछ दिनों बाद रोम के साम्राज्य का पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में विभाजन हो गया। पूर्वी भाग को बिजैण्टाइन साम्राज्य कहते थे। इसके विषय में तुम अगले अध्याय में पढ़ोगे। पश्चिमी भाग के शीघ्र ही टुकड़े-टुकड़े हो गए। सन् 476 ई० में उत्तर से आने वाले असभ्य आक्रमणकारियों के एक नेता ने अपने को रोम का राजा घोषित कर दिया और कभी शक्तिशाली रह चुका साम्राज्य समाप्त हो गया।

रोम के निवासियों का जीवन व उनकी संस्कृति

रोम के प्रारंभिक निवासी अधिकतर कृषि करते, भेड़ व गाय-बैल पालते, अपने कपड़े सन और ऊन से स्वयं बनाते, और मिट्टी या लकड़ी के बर्तन काम में लाते थे। यूनानी और

रोमन सम्राट कांस्टेटाइन

भारतीय आर्यों की भांति रोम के निवासी भी सादे कपड़े पहनते थे। उनके यहां पारिवारिक जीवन का विशेष महत्व था। प्रत्येक परिवार चूल्हे की देवी—वेस्ता की पूजा करता था, क्योंकि रोम निवासियों का विश्वास था कि वह घर की रक्षा करती है। परिवार में यद्यपि पिता और पति का सर्वोच्च अधिकार था, फिर भी रोम के निवासी अपनी स्त्रियों का आदर करते थे। ये स्त्रियां निःसंकोच रूप से राजनीतिक में और अपने पतियों के सभी कार्यों में भाग लेती थीं

रोम के निवासी भी लगभग उतने ही देवी-देवताओं की पूजा करते थे, जितने कि यूनान के निवासी। जुपिटर उनकी फसलों के लिए वर्षा करता, मार्स युद्ध में उनकी सहायता करता, जूनो उनकी स्त्रियों की रक्षा करता, और मर्करी उनके संदेश ले जाता था।

संसार के बड़े भाग पर अधिकार करने के पश्चात् रोम के निवासियों के जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गए। रोम का समाज इस समय चार वर्गों में बंटा था। अभिजात वर्ग के पास बड़ी-बड़ी जमींदारियां थीं, तथा वे उच्च पदों पर नियुक्त किए जाते थे। दूसरे वर्ग में धनी व्यापारी और

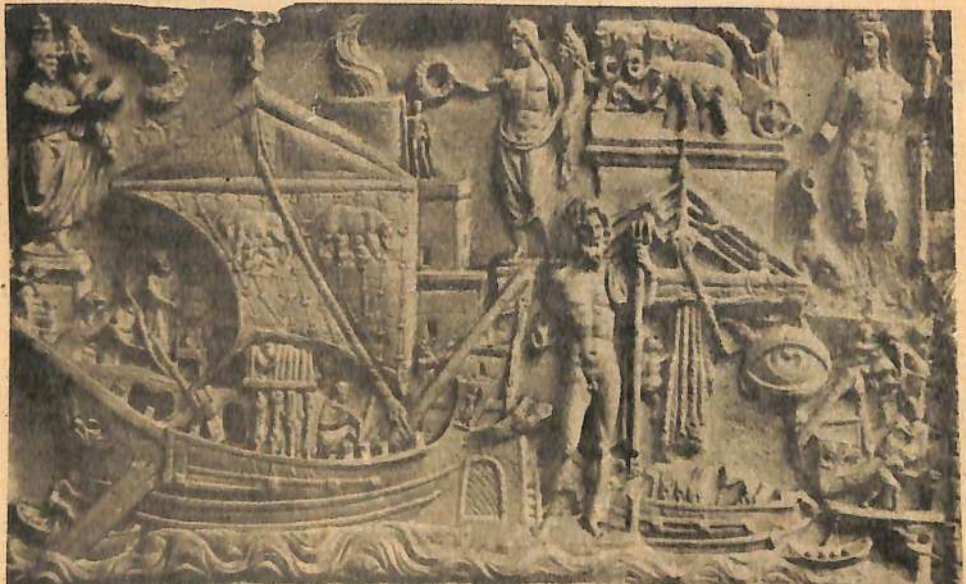

लगभग 200 ई० के आसपास का शिलां खण्ड, जिसमें दो जहाजों के बीच समुद्र के रोमन देवता नेप्चून को चित्रित किया गया है

साहूकार थे। तीसरे वर्ग प्लीबियन में छोटे स्वतंत्र किसान और शहरों के निवासी थे जिनमें से बहुतों के पास कोई काम न था। चौथे वर्ग में दास थे, जो सही मायनों में सारा काम करते थे।

कालांतर में मध्यवर्गीय निवासी कामचोर हो गए, श्रम से घृणा करने लगे और श्रम को दासों का ही कार्य समझने लगे और वे जीवन-निर्वाह के लिए राज्य से आर्थिक सहायता मांगने लगे। जूलियस सीजर के शासन संभालने के समय रोम के 320,000 निवासियों का भरण-पोषण राज्य किया करता था।

दासों का जीवन बहुत कठिन था। कितने ही घंटे कार्य करने के पश्चात् उन्हें बहुधा कोठरियों में बंद कर दिया जाता था। बहुत से दासों को कार्य करते व सोते समय भी लोहे की बेड़िया पहननी पड़ती थीं। कुछ दासों का जीवन दूसरे दासों के जीवन से बेहतर था। उदाहरणार्थ जो दास धनी लोगों के निजी सेवक या संगीतज्ञ या अध्यापक थे, उनका जीवन इतना कष्टमय न था। इन दासों में से कुछ अपने स्वामियों से भी अधिक शिक्षित तथा निपुण थे।

उच्च वर्ग के अभिजात व्यक्ति और धनी व्यापारी महलों में रहते थे और अपना अधिकतर समय भोग-विलास पूर्ण हमामों, प्रीति भोजों और मनोविनोद में बिताते थे। नगरों की साधारण जनता और धनी वर्ग दोनों ही ग्लेडिएटरों (तलवारबाजों) की प्रतियोगिताओं और रथों की दौड़ों को देखने जाते थे। उच्च पदों के उम्मीदवार बहुधा ग्लेडिएटरों के प्रदर्शनों का आयोजन करते थे। इनके द्वारा वे जनता का मनोविनोद करते और इस प्रकार लोकप्रिय बनकर अधिक मत प्राप्त करते थे। पराजित ग्लेडिएटर का जीवन दर्शकों की इच्छा पर निर्भर था। वे अधिकतर चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे कि विजयी ग्लेडिएटर उसे मार दे। ग्लेडिएटर की प्रतियोगिताओं और रथों की दौड़ों, दोनों में बहुत रक्तपात होता था।

रोम निवासियों की देन

रोम के शासकों ने मिस्र, बेबीलोन, यूनान, पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार रोम तथा पश्चिमी संसार के निवासी पूर्व की सभ्यताओं के उत्तराधिकारी हुए। रोम वालों ने उत्तराधिकार के विचारों को दूसरे देशों से लेकर उनमें अपना योगदान दिया।

कानून और सरकार : संसार को रोम की सबसे बड़ी देन रोम के कानून और शासन करने के सिद्धांत हैं। रोम में इसका प्रारंभ बारह तख्तियों के कानूनों से हुआ। कालांतर में रोम के कानून का विकास तीन शाखाओं में हुआ—दीवानी कानून, जिसका प्रयोग रोम के नागरिकों के मुकद्दमों में किया जाता था। जनसाधारण का कानून, जिसका प्रयोग साम्राज्य की समस्त जनता के साथ किया जाता था और प्राकृतिक कानून, जिसका संबंध न्यायालयों के मुकद्दमों से न होकर अधिकतर कानून के दर्शन से था। अनेक देश अपने-अपने देशों की कानून-प्रणाली का विकास करने के लिए रोम के विचारों के ऋणी हैं।

रोम के शासक अधिकतर अपने कानून और शासन-प्रणाली के कारण ही अपने इतने बड़े विस्तृत साम्राज्य में केन्द्र शासित सुव्यवस्था स्थापित कर सके और नियंत्रण रख सके, जबकि यूनानी लोग ऐसा करने में समर्थ नहीं हुए। कानूनों के कारण यात्रा और व्यापार को प्रोत्साहन मिला जिससे रोम की वस्तुएं और रोम का प्रभाव दूसरे देशों में फैला। पहले सड़कें मुख्य रूप से सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए बनवाई गई थीं। बाद में इन्हीं सड़कों के द्वारा संसार के दूर-दूर के देशों जैसे भारत और चीन तक की व्यापारिक वस्तुओं का विनिमय होने लगा। दक्षिण भारत में मद्रास के निकट एरिकमेडु नामक स्थान रोम के व्यापार की चौकी था। साम्राज्य के सभी भागों से जोड़ने वाली रोम की सड़कों की व्यवस्था इतनी अच्छी थी कि यह अंग्रेजी कहावत चल पड़ी कि सभी सड़कें रोम को जाती हैं। ब्रिटेन और स्पेन से लेकर बेबीलोन तक इन मार्गों पर अनेक नए नगर बस गए।

वास्तव में रोम के निवासियों ने ही गणतंत्र की भावना का विकास किया था। गणतंत्र की भावना इतनी प्रबल रही कि रोम के शासकों ने बहुत दिनों तक शाही पदवियां धारण नहीं कीं। वे अपने को राज्य का सेवक ही कहते थे। यद्यपि रोम में तानाशाह राज करने लगे थे, तथापि शताब्दियों तक सीनेट और सभा का रूप ज्यों का त्यों चलता रहा। हां, यह जरूर है कि रोम के शासक विजित जनता को अपना दास बना लेते थे, इसलिए वहां वास्तविक लोकतंत्र का विकास न हो सका।

भाषादर्शन तथा साहित्य : रोम के निवासियों ने यूनानियों से जो वर्णमाला सीखी थी उसके आधार पर उन्होंने अपनी वर्णमाला का विकास किया और लैटिन भाषा पश्चिमी यूरोप में सभी शिक्षित व्यक्तियों की भाषा बन गई। विज्ञान

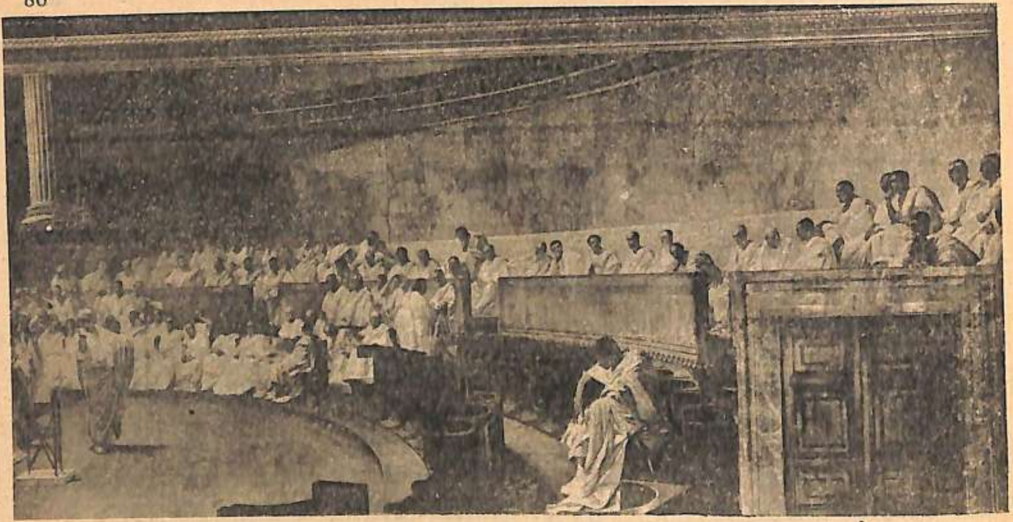

सीनेट की एक बैठक। सीनेट रोम की सर्वाधिक शक्तिशाली संस्था थी जो राज्य में रहने वाले लाखो लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णय लेती थी। उन्नीसवीं शताब्दी में मक्कारी द्वारा बनाए गए इस चित्र में सिसरो को भाषण करते हुए दिखाया गया है।

में अब भी लैटिन भाषा के बहुत से शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं। कई यूरोपीय भाषाओं, विशेष रूप से फ्रांसीसी, स्पैनिश और इतावली का आधार लैटिन है।

रोम निवासियों ने यूनानी दर्शन को भी ग्रहण किया। एपीक्यूरियन और स्टोइक दर्शन रोम में बहुत लोकप्रिय थे। ल्यूक्रीटियस जिसने 'ऑन दि नेचर ऑफ थिंग्स (वस्तुओं के स्वरूप पर) नाम की कविता लिखी, एपीक्यूरियन दर्शन का ही अनुयायी था। उसका मत था कि दैवी शक्तियों में विश्वास रखने से आध्यात्मिक शांति में बाधा पड़ती है। वह आत्मा के अस्तित्व में भी विश्वास नहीं रखता था, किन्तु शांति और पवित्र हृदय का समर्थक था, भोगविलास का नहीं। सिसरो एक प्रसिद्ध वक्ता था। वह स्टोइक दर्शन के अनुयायियों की भांति चित्त की शांति को सर्वश्रेष्ठ भलाई समझता था और उसका मत था कि मनुष्य को कष्ट और दुःख के प्रति उदासीन रहना चाहिए। उसकी बड़ी देन राजनीतिक तथा प्राकृतिक नियम की उसकी संकल्पना थी। सिसरो के अनुसार प्राकृतिक नियम वह कानून था जिसको तर्क द्वारा ज्ञात किया जा सके और जिसके द्वारा सभी मनुष्यों के प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा की जा सके। सीनेट में दिए उसके भाषण, अपनी अत्युत्तम शैली के कारण आज भी बहुत से वक्ता उसका अनुकरण करते हैं।

मार्कस ऑरीलियस भी, जिसके विषय में तुम पहले पढ़ चुके हो, स्टोइक दर्शन का मानने वाला था। उसने 'मैडिटेशन' (चिन्तन) नाम की पुस्तक लिखी। जीवन किस प्रकार बिताना चाहिए, इस विषय पर उसने इस पुस्तक में अपने विचार व्यक्त किए हैं। उसका मत था कि जीवन का उद्देश्य सुख नहीं, अपितु चित्त की स्थिरता है, जिसका अर्थ किसी भी परिस्थिति में तर्क और संतुलन पर आधारित जीवन व्यतीत करने की सामर्थ्य है। वह उन सब बातों पर आचरण करता था जिनका वह उपदेश देता था। यद्यपि उसकी शक्तियां अपार और संपत्ति असीम थी, तो भी उसने कभी भोग-विलास का जीवन नहीं बिताया। उसने लिखा है 'यदि कोई व्यक्ति यह सिद्ध कर दे कि मेरे विचार या मेरे कार्य ठीक नहीं हैं तो मैं अपने को बदल लूंगा क्योंकि मैं सत्य को खोजता हूं। जो भूल और अज्ञान में पड़ा रहता है उसे कष्ट भोगना पड़ता है।' स्टोइक दर्शन को मानने वाला एक अन्य विद्वान सेनेका था। उसका मत था कि संसार में जो भी कुछ होता है वह सर्वशक्तिमान द्वारा पहले से ही निश्चित है। और ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है।

रोम की सभ्यता में साहित्य का भी विकास हुआ और कविता के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। होरेश की कविता में एपीक्यूरियन और स्टोइक विचारधारा का समन्वित दार्शनिक रूप मिलता है। उसके एक गीत की कुछ पंक्तियो का आशय निम्नलिखित है :

"विपत्तियों में साहसी बनो, दुःख का निर्भीक साहस के साथ सामना करो, किन्तु जब असीम सुख का समय आए तब पहले से कम बुद्धिमान मत बनो और उस प्रवाह में बह मत जाओ।"

वर्जिल भी एक महान् कवि था। उसकी 'ईनीड' नाम की रचना बहुत प्रसिद्ध है। इसकी शैली यूनानी महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' जैसी है। ईनीड में ट्रॉय के इनीस नामक पौराणिक वीर नायक के देश-विदेश में घूमने और उसके साहसपूर्ण कार्यों का वर्णन है। रोम का सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार टैसिटस था। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तकों 'एनल्स' और 'हिस्ट्रीज' में अपने समय की अराजकता और भ्रष्टाचार का वर्णन किया है।

वास्तु कला तथा अन्य कलाएं: रोम के निवासी कुशल निर्माता थे। शासन और कानून में उन्होंने बहुत सफलता प्राप्त की थी, परंतु वास्तुकला और इंजीनियरी के कार्यों में भी उनकी दक्षता कम न थी। उन्होंने सबसे पहले कंक्रीट का प्रयोग आरंभ किया और वे ईंटों और पत्थरों के टुकड़ों को मजबूती से जोड़ सकते थे। उन्होंने वास्तुकला में डाट और गुंबद बनाकर दो महत्वपूर्ण सुधार किए। रोम के भवनों में दो-तीन मंजिलें होती थीं, और इनमें डाटें ठीक एक के ऊपर दूसरी बनाई जाती थीं। उनकी डाटें गोल होती थीं। ये डाट नगर के द्वारों, पुलों, बड़े भवनों और विजय स्मारकों के बनाने में काम में लाई जाती थीं। डाटों का प्रयोग कोलोजियम बनाने में भी किया गया, जहां ग्लेडिएटरों की प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थीं। ये डाटें नहर बनाने में भी काम में लाई जाती थीं। इनमें से बहुत-सी नहरें आज भी विद्यमान हैं।

गुंबद औंधे कटोरे के समान भवन की छत होती थी। इस प्रकार का गुंबद रोम के प्रसिद्ध मंदिर पेन्थियन में देखा जा सकता है।

रोम की इंजीनियरिंग कला के श्रेष्ठ उदाहरण उसकी जल-व्यवस्था, स्नानागार और सड़कें हैं। ईसवी सन् के प्रारंभ में रोम की जनसंख्या लगभग दस लाख थी। रोम तथा अन्य नगरों के निवासियों को पानी देने के लिए पानी के पाइप लगाए गए थे जिनके द्वारा पहाड़ी झरनों से ढालों पर होकर शहरों में पानी लाया जाता था। इन पाइपों में से कुछ तो 70 किलोमीटर तक लंबे थे।

रोम निवासियों ने यूनानियों की मूर्तियों के अनुरूप अपनी मूर्तिकला का विकास किया किन्तु उनमें एक अंतर भी था।

यह 40 किमी लंबा अक्वेडक्ट था जिसके माध्यम से फ्रास के नाइम्स शहर में पानी ले जाया जाता था।

रोम में त्राजन का स्तंभ। इस स्तंभ का निर्माण सन् 113 ई० में त्राजन की विजयों की स्मृति में किया गया।

यूनानी लोग अपने आदर्शों को व्यक्त करने के लिए मूर्तियां बनाते थे, किन्तु रोम के निवासी इस कला का उपयोग मनुष्य को यथावत मूर्त्त करने के लिए करते थे। भवनों में अनेक मूर्तियां और उच्चित्र (Reliefs) बनाए गए। रोम के निवासी केवल शरीर की बनावट को ही ठीक-ठीक अपनी मूर्तियों में चित्रित नहीं करते थे, वे मनुष्यों के चरित्र को व्यक्त करने का भी प्रयत्न करते थे। अधिकतर मूर्तियां सम्राटों की थीं। ये उनके अधिकार (Authority) और शक्ति को दर्शाने के लिए नगर के चौराहों पर लगाई जाती थीं। रोम के निवासियों ने भित्ति-चित्रों (Murals) के बनाने की कला का भी विकास किया, जिसके द्वारा पूरी की पूरी दीवाल चित्रित कर दी जाती थी।

विज्ञान: लोक सेवाओं में रोम ने पहल की। उन्होंने ही सबसे पहले निर्धन रोगियों को मुफ्त औषधि देने का प्रबंध किया। इन बातों के अतिरिक्त विज्ञान के क्षेत्र में उनकी कोई उल्लेखनीय देन नहीं है। ज्येष्ठ प्लिनी और स्टोइक

त्राजन के स्तंभ में दिखलाया गया युद्ध का एक दृश्य

दार्शनिक सेनेका, दोनों ने एक-एक विश्वकोश बनाए। किंतु इन विश्वकोशों में कोई मौलिक विचार न थे। चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में सेल्सस ने एक पुस्तक लिखी जिसमें शल्यचिकित्सा का वर्णन है। इटलीवासी यूनानी वैज्ञानिक गैलेन ने चिकित्साशास्त्र का विश्वकोश तैयार किया और कुछ निजी शोध कार्य भी किया। वह उन लोगों में से था जिन्होंने पहली बार रक्त संचालन प्रणाली का पता लगाया।

रोम निवासियों की दूसरी देन थी उनका पंचांग (कैलेण्डर) जो थोड़े परिवर्तित रूप में आज तक अनेक देशों में काम में लाया जाता है। किन्तु इस पंचांग में उनकी मौलिक देन कुछ नहीं थी क्योंकि इसके आधारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन मिस्र और चीन के निवासी कर चुके थे।

आधुनिक पाश्चात्य पंचांग में कुछ महीनों के नाम सीजर लोगों के नामों से लिए गए हैं। जूलियस सीज़र के नाम पर जुलाई, ऑगस्टस के नाम पर अगस्त के नाम रखे गए। सितंबर, अक्टूबर, नवंबर और दिसंबर के नाम लैटिन भाषा के उन शब्दों पर रखे गए हैं, जिनका अर्थ सातवां, आठवां, नवां और दसवां होता है। ये नाम तभी सार्थक थे जब रोम का नया वर्ष मार्च में प्रारंभ होता था।

रोम की सभ्यता का पतन क्यों हुआ

रोम की सभ्यता के पतन के सभी कारणों का संबंध साम्राज्यवाद से है। साम्राज्यवाद के कारण लोकतंत्र की समाप्ति हुई, और दासता को प्रोत्साहन मिला। नगरों में जन-समुदाय आलसी हो गया। राजनीतिक संघर्ष हुए और भ्रष्टाचार फैला। दासों के श्रम से कृषि और उद्योगों की उन्नति नहीं हो सकती थी, क्योंकि सब उत्पादन अभिजातवर्ग के मनुष्यों और बड़े जमींदारों के लिए किया जाता था। दासों को उसमें क्या रुचि हो सकती थी? कोई भी सेना, चाहे कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, दासों को अधिक उत्पादन करने के लिए विवश नहीं कर सकती थी और न ही वह विद्रोहों को रोक सकती थी।

रोम में ईसाई धर्म के फैलने से दासों पर आधारित इस साम्राज्य में सम्राटों की शक्ति कुछ कम हो गई। ईसाई धर्म के समानता और प्रेम के आदर्श रोम के पीड़ित वर्ग को बहुत अच्छे लगे। ईसाई धर्म ने इन लोगों को इतना आकर्षित किया कि इस धर्म के प्रति आस्थावान व्यक्ति सम्राटों के अत्याचारों को सहन करने और अपनी बलि तक देने के लिए तैयार हो गए। कान्स्टेंटाइन पहला सम्राट था जिसने चौथी शती ई० में ईसाइयों को गिरजाघर बनाने और छिपकर पूजा करने के बजाय खुले तौर पर पूजा करने का अधिकार दे दिया। रोम के साम्राज्य पर अंतिम प्रहार उत्तर के हमलावरों ने किया। वे गॉथ, फ्रैंक, विसीगॉथ व वैंडल नामक जर्मन कबीलों के थे। वे बहुत दिनों से रोम की सीमाओं पर हमले कर रहे थे। इसके बाद उन्होंने रोम नगर पर हमले किए। अंततः 476 ई० में वैंडल लोगों के एक आक्रमण ने पश्चिमी साम्राज्य के सम्राट को उखाड़ फेंका और उनका सरदार रोम का राजा बन बैठा।

यहूदी धर्म और ईसाई धर्म

तुम अब तक प्राचीन भारत, ईरान, चीन, यूनान और इटली के जनगणों के धर्मों और धार्मिक विश्वासों के बारे में पढ़ चुके हो। इनमें से कुछ धर्म, उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म, अपनी जन्मभूमि से बाहर दूर देशों में फैले और उन्होंने अनेक देशों की जीवन और संस्कृति को प्रभावित किया। प्राचीन काल में पश्चिम एशिया में दो प्रमुख धर्मों का उदय हुआ और उन्होंने विश्व इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। ये हैं: यहूदी धर्म और ईसाई धर्म। इन दोनों धर्मों का जन्म फिलिस्तीन में हुआ।

यहूदी धर्म

यहूदी धर्म यहूदियों अथवा हिब्रू लोगों का धर्म है। हिब्रू लोग अब्राहम के नेतृत्व में मैसोपोटामिया में रहते थे। वहां से वे धीरे-धीरे फिलिस्तीन जा बसे। जब फिलिस्तीन में दुर्भिक्ष पड़ा तो 1700 ई० पू० के बाद बहुत से हिब्रू कबीले मिस्र चले गए। जब मिस्र के शासक ने उन पर बहुत अत्याचार किए तब वे ई० पू० की 13वीं शताब्दी में मूसा के नेतृत्व में फिलिस्तीन चले गए। मूसा के पहले हिब्रू कबीलों के अनेक देवता थे। मूसा ने विभिन्न कबीलों को संगठित किया। उन लोगों ने एक देवता के रूप में यहवे या जेहोवा को अपना भगवान माना। यहूदियों का विश्वास है कि स्वयं ईश्वर ने मूसा के माध्यम से दस उपदेश दिए थे। इन उपदेशों में एक ईश्वर में आस्था प्रगट की गई है। साथ ही 'विशिष्ट प्रजा', जैसा कि हिब्रू अपने आपको कहते हैं, के जीवन को निर्देशित करने वाले नियमों के प्रति भी इन उपदेशों में आस्था प्रगट की गई है।

फिलिस्तीन में हिब्रू लोगों ने राजतंत्रात्मक शासन पद्धति वाले एक संयुक्त राज्य की स्थापना की। इस राज्य की राजधानी जरुसलम में बनाई गई। एक रोचक बात यह है

कि जरुसलम नगर संसार के तीन बड़े धर्मों के लिए पवित्र भूमि बन गया। ये तीनों हैं—यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, और इस्लाम धर्म। हिब्रू राजाओं में सॉलोमन बहुत विख्यात है। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार वह बहुत बुद्धिमान और न्यायी राजा था। हिब्रुओं का संयुक्त राज्य आगे चल कर दो राज्यों में बंट गया—इजरायल और जूदा। ई० पू० की छठी शताब्दी तक दोनों राज्यों को अधीन किया जा चुका था—इजरायल को असीरियाइयों द्वारा और जूदा को बाबुल वालों द्वारा। बाद के वर्षों में फिलिस्तीन पर पहले ईरानियों द्वारा और बाद में सिकंदर द्वारा कब्जा किया गया। आगे चलकर वह रोम के प्रभाव क्षेत्र में आ गया और 70 ई० में रोम साम्राज्य का एक प्रदेश बन गया। इस काल अवधि में यहूदियों की एक बड़ी संख्या ने फिलिस्तीन छोड़ दिया और वे संसार के विभिन्न भागों में जा बसे।

धार्मिक विश्वास

यहूदी धर्म की बुनियादी शिक्षा एक ईश्वर में विश्वास है। यह ईश्वर यहवा है जो अपनी प्रजा से प्रेम करता है किंतु जब वे कुमार्ग पर चलते हैं तो उनसे बदला लेता है। यहूदियों के कुछ परवर्ती धर्मोपदेशकों (पैगंबरों) ने कहा कि ईश्वर मानव मात्र से प्रेम करता है और पश्चाताप करने वाले पापी को क्षमा कर देता है। यहूदी धर्म न्याय, दया और विनम्रता सिखाता है। यहूदियों का एक महत्वपूर्ण विश्वास यह है कि उनको पवित्र करने और संसार को पाप एवं दुष्टता से मुक्त कराने के लिए मसीहा (त्राणकर्ता) एक दिन पृथ्वी पर अवतरित होगा। ईसाइयों का विश्वास है कि ईसा ही यह मसीहा थे और इसी से वे ईसा को 'क्राइस्ट' या खीष्ट और 'मसीह' कहते हैं। किंतु यहूदियों का विश्वास है कि मसीहा ने अभी तक जन्म नहीं लिया है। यहूदी धर्म ने ही परवर्ती एकेश्वरवादी ईसाई और मुस्लिम धर्मों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

हिब्रू (यहूदियों के) धर्मग्रंथ

वे विभिन्न कृतियां ही जो 'ओल्ड टेस्टामेंट' और 'ऐपोकृफा' का निर्माण करती हैं, यहूदियों की पवित्र धर्म-पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों में यहूदियों का इतिहास है और वह धार्मिक-नैतिक नियमावली है जिसका उन्हें पालन करना चाहिए। इनमें पुराण, आख्यान और कविताएं तो हैं ही, साथ ही चिकित्सा और ज्योतिष की बातें भी हैं। ये पुस्तकें यहूदियों और ईसाइयों दोनों के लिए पवित्र व पूज्य हैं।

ईसाई धर्म

ईसाई धर्म के संस्थापक जीसस एक यहूदी थे। उनका जन्म जरुसलम के निकट बैथलहम नामक स्थान पर हुआ था। उनकी माता का नाम मेरी था। जीसस के जीवन के पहले 30 वर्षों के विषय में हमारा ज्ञान बहुत अपूर्ण है। इस समय वे अपना उपदेश सीधे-सादे शब्दों में कहानियों के द्वारा दिया करते थे। उनके इन उपदेशों को साधारण व्यक्ति सरलता से समझ लेते थे। वे बहुत से रोगों की चिकित्सा भी सफलतापूर्वक कर लेते थे। इस बात की सब जगह प्रसिद्धि हो गई। उनके सादा जीवन, आकर्षक व्यक्तित्व, सबके लिए अत्यधिक प्रेम और सहानुभूति के कारण बड़ी संख्या में लोग उनके अनुयायी हो गए।

जीसस निर्भीक होकर उन बातों की कटु आलोचना करते थे जिन्हें वे बुरा समझते थे। इस कारण बहुत से धनी और प्रभावशाली लोग उनके शत्रु हो गए। इन लोगों ने फिलिस्तीन के रोमन गवर्नर पोण्टियस पाइलेट से जीसस के विरुद्ध शिकायत की कि जीसस अपने को यहूदियों का राजा कहता है। और इस प्रकार यहूदियों को रोमन शासकों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए भड़का रहा है। इस पर जीसस को बंदी बना लिया गया और, उन्हें क्रॉस पर प्राणदंड दिया गया। इसी कारण ईसाई क्रॉस को पवित्र चिन्ह मानते हैं। ईसाइयों का विश्वास है कि क्रॉस पर बलिदान होने के तीसरे दिन जीसस जीवित हो गए। इसी को मृत्यु के पश्चात् पुनर्जीवित होना कहा जाता है। प्रति वर्ष इसी घटना की स्मृति में ईसाई लोग ईस्टर का त्यौहार मनाते हैं। 'गुड फ्राइडे' वह दिन समझा जाता है, जिस दिन जीसस की मृत्यु हुई थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पुनर्जीवन के बाद चालीस दिन तक वे अपने मित्रों व शिष्यों के बीच में रहे और अंत में स्वर्ग चले गए। बड़े दिन को ईसाई उनके जन्म के उपलक्ष में मनाते हैं।

ईसाई संवत् 1 ईसवी से प्रारंभ होता है। परंपरा के अनुसार इसे जीसस के जन्म का वर्ष माना जाता है। ए.डी. अर्थात् एनो डोमिनी का अर्थ है स्वामी के संवत् में। सत्य तो यह है कि जीसस के जन्म की तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि जीसस का जन्म 1 ईसवी से कुछ वर्ष पूर्व हुआ था। बी. सी. का अर्थ है बिफोर क्राइस्ट,, अर्थात् ईसा से पूर्व। हम ईसा के जन्म से पूर्व की तिथियों को बी.सी. (ई० पू०) लिखकर प्रकट करते हैं।

जीसस बहुधा ईश्वर के राज्य की चर्चा किया करते थे।

इससे उनका यह अभिप्राय था कि पृथ्वी पर ईश्वर की सत्ता ही सबसे अधिक बलवती है। वे कहते थे कि ईश्वर का राज्य शीघ्र ही स्थापित होने वाला है और मनुष्य ईश्वर प्रेम से पवित्र होकर और उसमें पूर्ण आस्था रखकर उस ईश्वर के राज्य की स्थापना कर सकता है। वे ईश्वर को पिता और अपने को ईश्वर का पुत्र कहते थे। वे मनुष्य मात्र से प्रेम करते थे। मनुष्यों को अपने पड़ोसियों से प्रेम करने की शिक्षा देते थे।

ईसाई धर्म के अनुसार इस पृथ्वी पर जीसस क्राइस्ट का जन्म ईश्वर का उद्देश्य पूरा करने के लिए हुआ था। मनुष्यों का पाप से उद्धार करने के लिए वे इस संसार में रहे और इसीलिए उन्होंने अत्यंत कष्टपूर्ण मृत्यु झेली। ईसाइयों का विश्वास है कि जीसस मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहे। इसीलिए उन्होंने सब मनुष्यों को आशा दिलाई कि जो कोई पापों के लिए पश्चाताप करेगा और ईश्वर कृपा के लिए प्रार्थना करेगा उसकी ईश्वर अवश्य रक्षा करेंगे।

जीसस की सीधी-सादी शिक्षाएं मनुष्यों के हृदयों में घर कर गईं। उन्होंने उनमें नवीन आत्म-विश्वास और साहस का संचार किया। धीरे-धीरे रोम में ईसाई धर्म का प्रचार बढ़ा और सेण्ट पीटर गिरजाघर का बड़ा पादरी इस संसार में जीसस क्राइस्ट का प्रतिनिधि माना जाने लगा। ईसाई लोग उसे पोप अर्थात् पिता कहने लगे।

कहा जाता है कि रोम का सम्राट कान्स्टेंटाइन भी ईसाई बन गया। चौथी शताब्दी के अंत तक ईसाई धर्म रोम के साम्राज्य का धर्म बन गया था। इस समय तक ईसाई चर्च का संगठन धर्मतंत्रात्मक रीति से होने लगा था।

इंजील

ईसाइयों की धर्म-पुस्तक 'बाइबिल' अथवा 'इंजील' है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'पुस्तक'। इंजील के दो मुख्य भाग हैं। पहले भाग में जिसे ओल्ड टेस्टामेण्ट कहते हैं, यहूदियों के धार्मिक विश्वासों का इतिहास है। न्यू टेस्टामेण्ट में जीसस क्राइस्ट का जीवन चरित्र और शिक्षाएं दी हुई हैं। इंजील पहले यहूदियों की भाषा हिब्रू में लिखी गई थी। बाद में इसका यूनानी भाषा में अनुवाद किया गया। इंजील का अंग्रेजी अनुवाद, जिसका अब साधारणतया सर्वत्र प्रयोग किया जाता है, सत्रहवीं सदी के शुरू में इंग्लैंड के राजा जैम्स प्रथम की आज्ञानुसार तैयार किया गया था।

ठीक-ठीक यह कहना संभव नहीं है कि मानव इतिहास का प्राचीन काल कब समाप्त हो गया। आम तौर से यह कहा जा सकता है कि प्रथम सहस्राब्दि ई० के उत्तरार्द्ध के दौरान विश्व के अनेक भागों के सामाजिक-आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे। वे परिवर्तन इतने दूरगामी थे कि कहा जा सकता है कि उन्होंने इतिहास में एक नया युग आरम्भ किया। मगर वे न तो एक समान थे और न ही सारे संसार में उनकी रफ़्तार एक सी थी। तुम देख चुके हो कि पश्चिम में रोमन साम्राज्य बर्बर लोगों के आक्रमणों के कारण किस प्रकार नष्ट हो गया। दास-प्रथा भी, जो रोम की सभ्यता की एक विशेषता थी, लुप्त हो गयी। कुछ अन्य क्षेत्रों में जो परिवर्तन हुए वे इतने स्पष्ट नहीं थे कि अतीत से उन्हें उसी तरह अलग कर दें जैसा रोमन सभ्यता के संबंध में देखा गया था। परन्तु परिवर्तनों का जो भी स्वरूप और उनकी जो भी रफ़्तार रही हो, लगभग 500 ई० के बाद जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाएं उदित होने लगीं वे पिछले काल की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न थीं। इनमें से कुछ के बारे में तुम अध्याय 5 में पढ़ोगे।

कुछ क्षेत्रों में प्राचीन सभ्यताओं की उपलब्धियां आगे के विकास का आधार बनीं। दूसरे क्षेत्रों, जैसे पश्चिम यूरोप में यूनानी और रोमन सभ्यताओं की उपलब्धियों को भुला दिया गया। उन्हें लगभग एक हजार वर्ष बाद ही फिर ढूंढ़ निकाला गया। अगले काल में सभ्यता के अनेक नये केंद्र विकसित हुए। प्राचीन सभ्यताओं की कुछ उपलब्धियों को सभ्यता के इन नये केंद्रों की संस्कृतियों में समाविष्ट कर लिया गया और वहां से अन्य क्षेत्रों को दिया गया।

अभ्यास

जानने योग्य तथ्य

1. सभ्यता के विकास में लोहे का महत्व बतलाओ।
2. निम्नलिखित महापुरुषों का किन सभ्यताओं से संबंध था? प्रत्येक महापुरुष की प्रमुख उपलब्धियां भी बतलाओ: पेरिक्लीज, जूलियस सीज़र, चीन सम्राट, क्लिस्थेनीज, कनफ्यूशियस, चंद्रगुप्त प्रथम, ऑगस्टस, अशोक, मार्कस ऑरेलियस, हर्ष, सोलन, दारा प्रथम, ज़रथुष्ट्र, आर्देशिर।
3. उन पुरुषों तथा सभ्यताओं के नाम बतलाओ जिनके समय में निम्नलिखित साहित्यिक या कलात्मक कृतियों की रचना हुई:
   अथर्ववेद, इलियड, अजंता, एक्रोपोलिस, पार्थेनन, उपनिषद्, इनीड, ओडिपस रैक्स, पंचतंत्र, धर्मशास्त्र, रिपब्लिक (ग्रंथ), हर्मीज, डायोनीसस, मेडिटेशन्स, पैन्थियन और अवेस्त-ए-जेंद।
4. रोम निवासियों की कानून और शासन के क्षेत्र में जो देन है, उसके उदाहरण दो। शासन के क्षेत्र में यूनान के निवासियों की सबसे बड़ी देन क्या है? और हान सम्राटों की?
5. कला और वास्तुकला के क्षेत्र में ईरानी सभ्यता के योगदान का वर्णन करो।
6. किन बातों, स्थानों या व्यक्तियों से हमें पता लगता है कि प्राचीन सभ्यताओं के निवासी विज्ञान की प्रगति के साथ धीरे-धीरे प्रकृति, स्वास्थ्य और रोगों के विषय में अपने मिथ्या-विश्वासों को छोड़ने लगे?
7. निम्नलिखित पदों का अर्थ बतलाओ: ध्वन्यात्मक लिपि, हेलेन, टायरेण्ट, डेमोस, लोकतंत्र, स्वल्पतंत्र, गणतंत्र, लिरिक, पैट्रीशियन, प्लीबियन, राजतंत्र, मातृ-तंत्र, पितृ-तंत्र,पैक्स रोमाना, स्टोइक, श्रेणियां, शूद्र, भूकंप-विज्ञान, मन्दरिन (mandarin)।

करने के लिए कार्य

1. जिन जातियों ने 1500 ई० पू० और 600 ई० के बीच भारत पर आक्रमण किए, उनकी सूची बनाओ। यह भी लिखो कि इन आक्रमणों का भारतीय संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा।
2. यूरोप, एशिया और उत्तरी अफ्रीका का एक संयुक्त मानचित्र बनाओ। उसमें प्राचीन काल के प्रमुख नगरों की स्थिति दिखलाओ। यह भी दिखलाओ कि किस प्रकार इन देशों की उपज और विचार पूर्व से पश्चिम गए और पश्चिम से पूर्व आए।
3. 500 शब्दों में निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर निबंध लिखो—
   1200 ई० पू० से 600 ई० तक मानव की प्रगति।
   या
   प्राचीन जातियों ने विचारों और आविष्कारों का विकास किया और दूसरों के विचारों तथा आविष्कारों को अपने अनुकूल बनाकर ग्रहण किया।

सोचने और विचार-विमर्श के लिए

1. ईरानी, यूनानी, रोमन, भारतीय और चीनियों के प्राचीन कालीन धर्मों की तुलना करो। इन धर्मों और यहूदी तथा ईसाई धर्म के समान सिद्धांतों की विवेचना करो।
2. चारों सभ्यताओं के समाज का जो वर्गों में विभाजन हुआ उसका अध्ययन करके बतलाओ कि इस वर्गीकरण में क्या समानताएं और क्या अंतर हैं?

3. निम्नलिखित व्यक्तियों की रुचि को ध्यान में रख कर लिखो कि यदि ये एक दूसरे से मिल पाते तो किन विषयों पर विचार-विमर्श करते–
   - क) प्लेटो और कनफ्यूशियस
   - ख) चरक और हिप्पोक्रेटिस
   - ग) स्सु-मा च्येन और हेरोडोटस
   - घ) कालिदास और होरेस
   - ङ) बुद्ध और स्पार्टाकस
   - च) अश्वघोष और एकिल्न
4. पांचों सभ्यताओं पर प्रवासों का क्या प्रभाव पड़ा–विवेचना करो। इन सभ्यताओं ने किन विभिन्न रीतियों से एक दूसरे को प्रभावित किया?

अध्याय 4

अमरीका और अफ्रीका की प्राचीन सभ्यताएं

एशिया और यूरोप में सभ्यताओं के विकास के साथ ही अफ्रीका और अमरीका में कई सभ्यताएं तथा संस्कृतियां विकसित हुईं। उनमें से अनेक बड़े साम्राज्यों के रूप में विकसित हुई, और उनकी अपनी अनोखी विशेषताएं भी विकसित हुईं।

अमरीका और अफ्रीका की आदि सभ्यताओं की जानकारी हमारी अज्ञानता और गलतफहमियों के कारण अपूर्ण रही है। पंद्रहवीं शताब्दी के अंत तक शेष दुनिया को अमरीकी महाद्वीप के अस्तित्व के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। जिन यूरोपवासियों ने अमरीका की खोज की और उसे जीता उन्होंने वहां की उन सभ्यताओं को नष्ट कर दिया, जो वहां कई शताब्दियों में विकसित हुई थीं। उनके इतिहास और उपलब्धियों की खोज बाद में आरंभ हुई हैं।

आदि अफ्रीकी संस्कृतियों और सभ्यताओं की हमारी जानकारी मुख्यतः हमारी अज्ञानता और गलत धारणाओं के कारण अपूर्ण रही है।

तुम उत्तरी अफ्रीका के कुछ इलाकों के इतिहास के कतिपय पहलुओं से परिचित हो क्योंकि वे एशिया और यूरोप के इतिहास से प्राचीन काल और मध्यकाल में संबद्ध थे। किंतु अभी हाल तक विशाल अफ्रीका महाद्वीप के शेष भागों के बारे में नाममात्र ही मालूम था। इनमें सहारा के आसपास के क्षेत्र शामिल हैं जिन्हें कभी-कभी काला अफ्रीका कहते हैं। उनके बारे में जो भी नाममात्र की जानकारी होने का दावा किया जाता था वह गलत धारणाओं पर आधारित था। सहारा के आसपास के अफ्रीका की खोज यूरोप वासियों ने 15वीं शताब्दी में आरंभ की। खोज की प्रक्रिया से दास-व्यापार जुड़ा हुआ था। लाखों की संख्या में अफ्रीका वासियों को गुलाम बनाया गया। उन्हें अपने घरों से उजाड़ा गया। उन्हें यूरोपीय दास व्यापारी अमरीका में बागानों पर काम करवाने के लिए ले गए। 19वीं शताब्दी तक दास-व्यापार अंतिम रूप से खत्म हो गया परंतु उस समय तक विभिन्न यूरोपीय शक्तियों ने अफ्रीका को जीत लिया था। यहां इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि खोज, दास-व्यापार और विजय की प्रक्रिया ने न सिर्फ एक संपूर्ण महाद्वीप के जनगणों के जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया बल्कि उसने अफ्रीकी जनगणों के इतिहास के बारे में अनेक गलत धारणाएं भी पैदा कर दीं। कहा गया कि यूरोप निवासियों के आने से पहले अफ्रीकी जनगण आदिम अवस्था में थे। यूरोप निवासियों ने वहां आकर उन्हें सभ्य बनाया तथा सुव्यवस्थित जीवन जैसी चीजों से परिचित कराया। अफ्रीकी संस्कृतियों और सभ्यताओं के संबंध में हमारे ज्ञान के पूर्ण होने में लंबा समय लगेगा। उनकी जो कहानी हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं वह थोड़े पहलुओं और क्षेत्रों से ही संबंधित है।

आदि अमरीकी सभ्यताएं

कुछ वर्षों पहले तक यह विश्वास किया जाता था कि अमरीका में सभ्यताओं का इतिहास प्राचीन काल से नहीं आरंभ होता। यह धारणा थी कि मध्य और दक्षिण अमरीका की सभ्यताओं के सुविदित अवशेष एशिया, उत्तरी अफ्रीका और यूरोप की आदि सभ्यताओं के बाद के समय के हैं। अमरीका में मानव के प्रकट होने के संबंध में भी यही बात कही जाती थी। विश्वास किया जाता था कि संसार के इस भाग में मानव काफी बाद में आया। अब हमें

मालूम है कि अमरीका में मानव निश्चित रूप से 10,000 ई० पू० तक संभवतः साइबेरिया से आ चुका था। कुछ विद्वानों की धारणा है कि मानव 20,000 वर्ष से भी अधिक पहले अमरीका आ चुका था। वहां की सुप्रसिद्ध सभ्यताओं का एक लंबा इतिहास था। उनमें से कुछ मध्य और दक्षिण अमरीका में 16वीं शताब्दी में भी फल-फूल रही थीं।

हम यह भी जानते हैं कि 2500 ई० पू० से ई० सन् की आरंभिक शताब्दियों के बीच कई संस्कृतियां विद्यमान थीं जिन्होंने अपनी छाप उन सभ्यताओं पर छोड़ी जो अंततोगत्वा बड़े साम्राज्यों के रूप में विकसित हुईं। इनमें अधिक प्रसिद्ध मध्य अमरीका की माया और एज़टेक सभ्यताएं तथा दक्षिण अमरीका के ऐंडीज में इंका सभ्यता है। फिर भी, मेक्सिको में कई अन्य संस्कृतियां भी थीं जिन्होंने बाद की संस्कृतियों पर गहरा प्रभाव डाला। वस्तुतः माया लोगों ने अपनी सभ्यता के प्रारंभिक काल में पहले की संस्कृतियों की विशेषताओं को ग्रहण कर लिया।

आदि संस्कृतियां

आदि संस्कृतियों में अधिक महत्वपूर्ण वेरा क्रूज और टाबासको की अधित्यकाओं की ऑलमेक, मॉन्टे अल्बान और पुएब्ला की जापोटेक, मिक्सटेक तथा मध्य वेरा क्रूज की टोटोनाक संस्कृतियां हैं। इन संस्कृतियों की कुछ समान विशेषताएं थीं जैसे स्मारकों की वास्तुकला, पंचांग का ज्ञान और जटिल धार्मिक कर्मकांड का प्रचलन। ये संस्कृतियां मक्का की खेती पर निर्भर थीं। वे मुख्य फसल के रूप में मक्का ही उगाते थे। बाद की मध्य अमरीकी संस्कृतियों में भी ये विशेषताएं मिलती हैं। दक्षिण अमरीका में आदि संस्कृतियों में अधिक प्रमुख और पेरू की उत्तरी अधित्यका में फलने-फूलने वाली चैविन (Chavin) संस्कृति है। चैविन संस्कृति का अंत 300 ई० पू० के आसपास हो गया और उसकी जगह पर, मोचीका (Mochica) संस्कृति पेरू के उत्तरी तट पर, पाराकास (Paracas) और नाजका संस्कृतियां पेरू के दक्षिण तट पर तथा टियाहुनाको संस्कृति बोलिविया के पठार में आईं।

इन संस्कृतियों और सभ्यताओं की उन्नति के पीछे विकास का एक लंबा इतिहास था। अमरीका में जो सबसे आदि अवशेष मिले हैं वे प्रागैतिहासिक मानव के औजार हैं। ये औजार 10,000 से 12,000 वर्ष पुराने हैं। आदिम मानव के औजर खुले स्थानों या जगहों में मिले हैं जहां शिकार उपलब्ध थे। वे गुफाओं में भी मिले हैं। इन औजारों में भाले की नोकें, खुरचनियां, कुठार और चाकू हैं।

मानव 5000 और 2500 ई० पू० के बीच खाद्य पदार्थों का उत्पादन करने लगा यानी उसने खेती-बाड़ी शुरू कर दी। हम 2500 ई० पू० के बाद अनेक उन्नत संस्कृतियों को मक्का, गोर्द (रस वाला एक फल), आलू और सेम जैसी कई फसलों को उगाते हुए पाते हैं। बाद की संस्कृतियों में मक्का न सिर्फ उनकी कृषि का आधार था बल्कि धार्मिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। इन संस्कृतियों के बारे में एक दिलचस्प तथ्य यह है कि वे कृषि तो करती थीं मगर उन्होंने पशुपालन नहीं सीखा था। सिर्फ मध्य एंडियन क्षेत्र की संस्कृतियां इसका अपवाद थीं। मगर उन्होंने केवल दो ही पशुओं—लामा और अल्पाका—को ही पाला था। लामा ऊंट जैसा होता है। फर्क सिर्फ यही है कि लामा ऊंट से छोटा होता है—और उसके कूबड़ नहीं होता। अल्पाका लामा की ही एक जाति होती है। उसके बाल लंबे और पतले होते हैं। इन पशुओं का इस्तेमाल केवल सामान ढोने तथा उनकी ऊन के लिए होता है। हल और पहिए का इस्तेमाल भी इन संस्कृतियों को नहीं मालूम था और उनके औज़ार पूरी तरह पत्थर के बने होते थे। वस्तुतः बहुत लंबे समय तक पत्थर के औजारों का इस्तेमाल हुआ। यहां तक कि स्मारकों की वास्तुकला तथा महान अमरीकी सभ्यताओं की सुंदर नक्काशीदार मूर्तियां भी केवल पत्थर के औजारों से तैयार की गई थीं। धातु का प्रयोग केवल आभूषण बनाने के लिए ही शुरू हुआ। फिर भी उन्होंने बर्तन निर्माण, बुनाई, पंख-मोजेक और मोती बनाना जैसे शिल्पों में बड़ी दक्षता हासिल कर ली थी।

धर्म की भूमिका और महत्व में धीरे-धीरे जो वृद्धि हुई उसे इन संस्कृतियों की पुरानी इमारतों में देखा जा सकता है। ये इमारतें देवताओं को खुश करने तथा बलि चढ़ाने के कार्यों से संबद्ध थीं। नक्षत्र विद्या और लेखन की प्रणालियों का विकास भी इसी काल में हुआ। मध्य अमरीकी संस्कृतियों का यह प्रारंभिक काल 2500 ई० पू० के आसपास आरंभ हुआ और ईसवी सन् के प्रारंभ तक रहा। इस काल के दौरान मध्य अमरीका में जनजातियों और राज्यों का भी क्रमिक विकास हुआ।

आदि संस्कृतियों ने उन सभ्यताओं की नींव डाली जो अमरीका में प्रकट हुईं। तुम तीन प्रसिद्ध अमरीकी संस्कृतियों के संबंध में इस अध्याय में पढ़ोगे। ये तीन संस्कृतियां हैं : माया, एज़टेक और इंका

माया सभ्यता

माया सभ्यता का इतिहास 1500 ई० पू० से आरंभ होता है। यह सभ्यता 300 ई० और 900 ई० के बीच में अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंच गई। यह मध्य अमरीका के एक बड़े भाग पर फैली हुई थी। इसके अंतर्गत ग्वातेमाला, मेक्सिको, होण्डुरास और युकातान के भाग आते थे।

इस शक्तिशाली सभ्यता के अवशेष अनेक स्थलों पर पाए गए हैं। कुछ प्रसिद्ध स्थल हैं ग्वातेमाला में टिकाल, पालेंक और बोनामपाक तथा होण्डुरास में कौपान। बाद में 10 वीं शताब्दी में युकाटान में चिचेन इट्ज़ा माया सभ्यता के मुख्य केन्द्र बन गए। इन स्थलों को, वहां जिस प्रकार के अवशेष मिले हैं उनको देखते हुए सही ढंग से मंदिर, नगरी या समारोह केन्द्र कहा जा सकता है। इन अवशेषों में पिरामिड, बड़े चौक, वेधशालाएं और मंदिर शामिल हैं। इन इमारतों में से कुछ बड़ी ही भव्य हैं। इमारतों को पत्थर की मूर्तियों और गचकारी से काफी सजाया गया था। कभी-कभी उन्हें चित्रों से सुसज्जित किया जाता था। कोपान में बनी इमारतों में एक वेधशाला थी। कोपान तथा अन्य कई स्थलों पर पत्थर की पट्टियां मिली हैं जिन पर हेरोग्लिफ्स बने हुए हैं। ये प्रस्तर पट्ट हमें बतलाते हैं कि उन्हें कब स्थापित किया गया था।

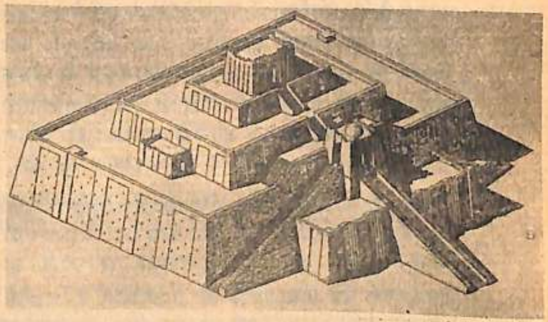

पालेक में माया सभ्यता के एक मंदिर का पुनर्निमित दृश्य

माया सभ्यता के लोगों की ये इमारतें जमीन से खोदकर निकाले गए पत्थरों से बनाई गई थीं। इन पत्थरों को जमीन से निकाल कर वांछित आकार देने तथा इनसे मूर्तियां बनाने के लिए पत्थर की कुल्हाड़ी का इस्तेमाल किया

कोपान के खुबसूरत पिरामिड़ों, मंदिरों और अन्य भवनों का दृश्य

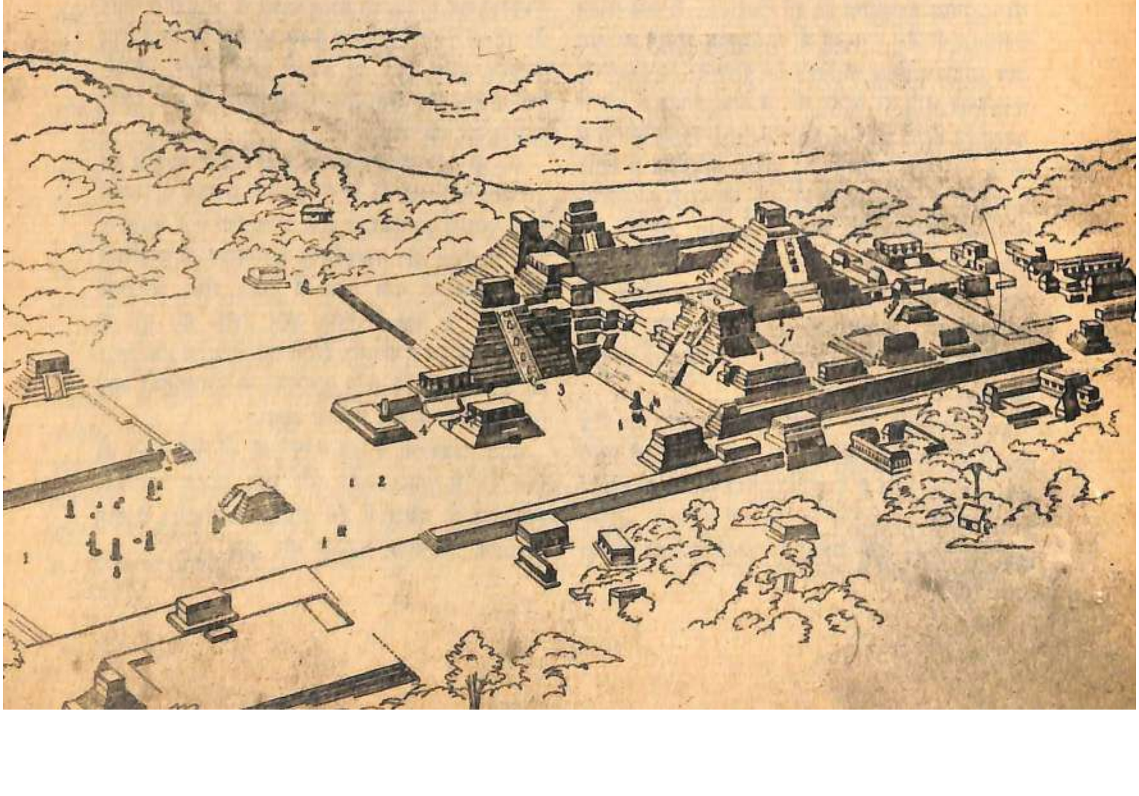

चित्र के मध्य में गेंद के साथ आदमी दिखाया गया है। मानव आकृति के चारों तरफ चिन्ह हैं, जो माया पचांग में समय मापन को बताते हैं।

गया। इन इमारतों के निर्माण में चूने के गारे का इस्तेमाल किया गया।

माया सभ्यता की अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं पूर्ण पंचांग, गणित का ज्ञान, हेरोग्लिफिक लेखन और कागज का इस्तेमाल। सौर पंचांग की तरह माया वर्ष में भी 365 दिन होते थे। साल में 18 महीने होते थे तथा प्रत्येक महीनें में 20 दिन थे। शेष पांच दिनों को दुर्भाग्यपूर्ण काल समझा जाता था। याद रहे कि मिस्री पंचांग में 12 महीने होते थे और हरेक महीने में 30 दिन थे। शेष पांच दिनों का इस्तेमाल समारोहों के लिए होता था। माया सभ्यता के लोगों के पास शून्य के लिए भी एक प्रतीक था। माया लिपि अंशतः विचार चित्रात्मक तथा अंशतः ध्वन्यात्मक थी। माया लेखन के उदाहरण प्रस्तर पट्टों पर उत्कीर्ण अभिलेखों और भोजपत्रों की पुस्तकों में पाए गए हैं। इनको कोडिसेज (Codices) कहते हैं। इनमें शासकों से संबंधित घटनाएं और खगोल विद्या संबंधी सूचनाएं दर्ज की जाती थीं।

कोपान के निकट के स्थान क्यरीगुआ में माया सभ्यता की एक मूर्ति

धार्मिक कृत्यों और कर्मकाण्ड की माया सभ्यता के लोगों के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका थी। संभवतः पंचांग का

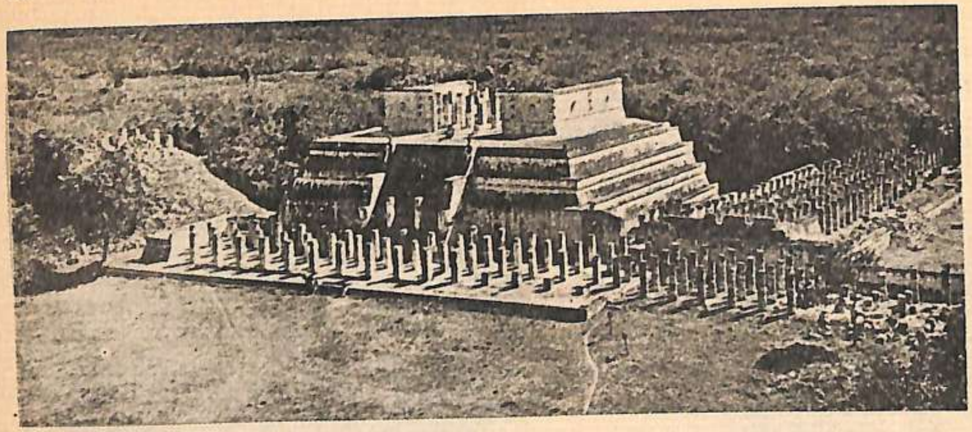

चिचेन एट्ज़ा में टोलटेक्स द्वारा निर्मित "योद्धाओं का मंदिर"

विकास इन धार्मिक कार्यों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए किया गया। माया सभ्यता के लोग अनेक देवताओं की पूजा करते थे और पुरोहित का समाज में उच्च स्थान था। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि चढ़ाई जाती थी। मानव-बलि की भी प्रथा थी। माया सभ्यता के देवताओं में अग्नि-देवता, वर्षा-देवता और मक्का-देवता शामिल थे। मक्का-देवता में विश्वास से माया सभ्यता के जनजीवन में मक्के का महत्व स्पष्ट है। एक दिलचस्प धार्मिक कृत्य गेंद का खेल था जिसमें रबर की गेंद का इस्तेमाल किया जाता था।

माया सभ्यता के अनेक नगर पाए गए हैं मगर लगता है कि उनमें से कोई भी उस सभ्यता का केन्द्र या राजधानी नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि माया सभ्यता में अनेक नगर-राज्य थे जो एक दूसरे से समान भाषा, संस्कृति, धर्म के सूत्र में बंधे हुए थे।

माया अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित थी। भोजन में मुख्य रूप से मक्का, सेम, आलू, पपीता, स्कावाश और मिर्च शामिल थे। माया सभ्यता के निवासियों का प्रयत्न भरपूर मात्रा में मक्का प्राप्त करना होता था और इसलिए वे देवताओं को प्रसन्न करना चाहते थे।

आम लोग अनाज के खेतों के पास बस्तियों में रहते थे। उनके वस्त्र सूती कपड़े से बने होते थे। माया सभ्यता के लोगों को कपड़ों की रंगाई के बारे में मालूम था। मिट्टी के बर्तन घुमावदार रस्सी की प्रणाली द्वारा बनाए जाते थे क्योंकि वे कुम्हार के चाक से अपरिचित थे।

मेक्सिको की घाटी में 900 ई० के आसपास नए जनसमूह आए। उनमें सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली टुला (Tula) के टोलटेक (Toltecs) थे जिन्होंने ट्यूटीहुआकान को रौंद दिया तथा अनेक इलाकों में माया सभ्यता के लोगों को अपने अधीन कर लिया। फिर भी उन्होंने विजित सभ्यता की अनेक विशेषताओं को अपना लिया। इन विशेषताओं में स्मारकों की वास्तुकला मूर्तिकला और कर्मकाण्ड शामिल थे। उन्होंने अपना साम्राज्य मेक्सिको तथा मध्य अमरीका के दक्षिणी भागों में बढ़ाया। उन्होंने धातुओं का इस्तेमाल भी आरंभ किया। किन्तु 12वीं शताब्दी में वे भी पृष्ठभूमि में चले गए और एज़टेक सामने आए। उस समय तक माया सभ्यता के लोग युकातान अंतरीप में ही सीमित हो चुके थे और जब स्पेन वाले आए तब उनके अधिकार में युकातान का केवल एक भाग रह गया था।

एज़टेक

एज़टेक लोगों को टेनोका भी कहते हैं। वे 1200 ई० के करीब एक कबीले के रूप में प्रकट हुए। अगली दो शताब्दियों में वे मेक्सिको के अधिपति बन गए। उनकी दो राजधानियां टेनोक्टिट्लान और ट्लाटेलोकों थीं जिनकी स्थापना उन्होंने 1325 ई० में की। एज़टेक लोगों ने एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की जिसका क्षेत्रफल 2 लाख वर्ग किलोमीटर था। साम्राज्य 38 प्रांतों में बंटा था। प्रत्येक प्रांत का शासन एक गवर्नर करता था। गवर्नर की

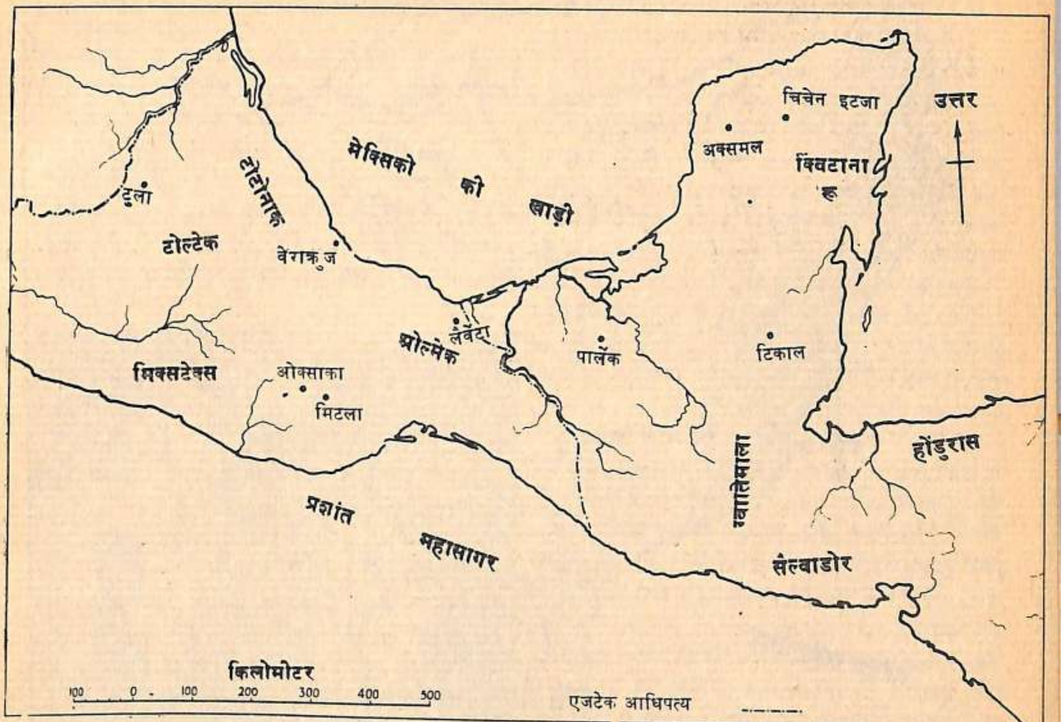

मध्य अमरीका की संस्कृतियां

सहायता के लिए फौज की टुकड़ी तथा कर वसूल करने वालों का एक दल होता था। वे कई देवताओं की पूजा करते थे जैसे सूर्य देवता और अन्न-देवी । अन्न-देवी को देवताओं की जननी समझा जाता था। उन्होंने एक टोल्टेक देवता को भी अपना लिया था। वे उसकी पूजा विद्या और पुरोहित के देवता के रूप में करते थे।

विशाल एज़टेक साम्राज्य का आधार अपने अधीन किए गए कबीलों से वसूला गया कर था। चिनांपा या 'तैरते उपवन' उनकी प्रसिद्ध नवीन उपलब्धियां हैं। उन्होंने नरम धातुओं को पिघलाना और विभिन्न रूप देना सीख लिया था किन्तु वे धातु के सरल औज़ार ही बनाते थे। उनके मिट्टी के बर्तन काफी विविधता दिखलाते हैं तथा पंखों व सूती कपड़े की बुनाई संबंधी दस्तकारियां, काफी उच्च सोने के काम तथा मूल्यवान धातुओं जैसे जेड और फीरोज़ा के इस्तेमाल ने सबको मात कर दिया।

एज़टेक लोगों की भाषा नाहुआट्ट थी। यह आज भी एक जीवित भाषा के रूप में वर्तमान है। कोडिसेज में उनकी जो लिखित चीजें वर्तमान हैं वे चित्रात्मक हैं। उनके कोडिसेज उनके इतिहास की घटनाओं के महत्वपूर्ण अभिलेख हैं और वे उनके बारे में बहुमूल्य सूचना देते हैं। एज़टेक पंचांग के अनुसार साल में 260 दिन थे। उनका पंचांग धार्मिक समारोहों से संबंधित था। एज़टेक लोगों की राजधानी—टेनोक्टिट्लान या 'टेनोका का प्रासाद'—मध्य अमरीका के अत्यंत शानदार शहरों में थी।

स्पेनवासियों द्वारा मेक्सिको विजय के दौरान बर्नार्ड डियाज़ क्रोटे के साथ था। उसने इस नगर के बारे में बड़ा ही दिलचस्प विवरण छोड़ा है। स्पेन के नीरस नगरों के विपरीत हरे-भरे बागों और श्वेत भवनों वाला नगर टेनोक्टिट्लान स्वर्ग लगता था। उसने लिखा : '' इन अद्भुत दृश्यों को एकटक देखकर हमें समझ में नहीं आता था कि

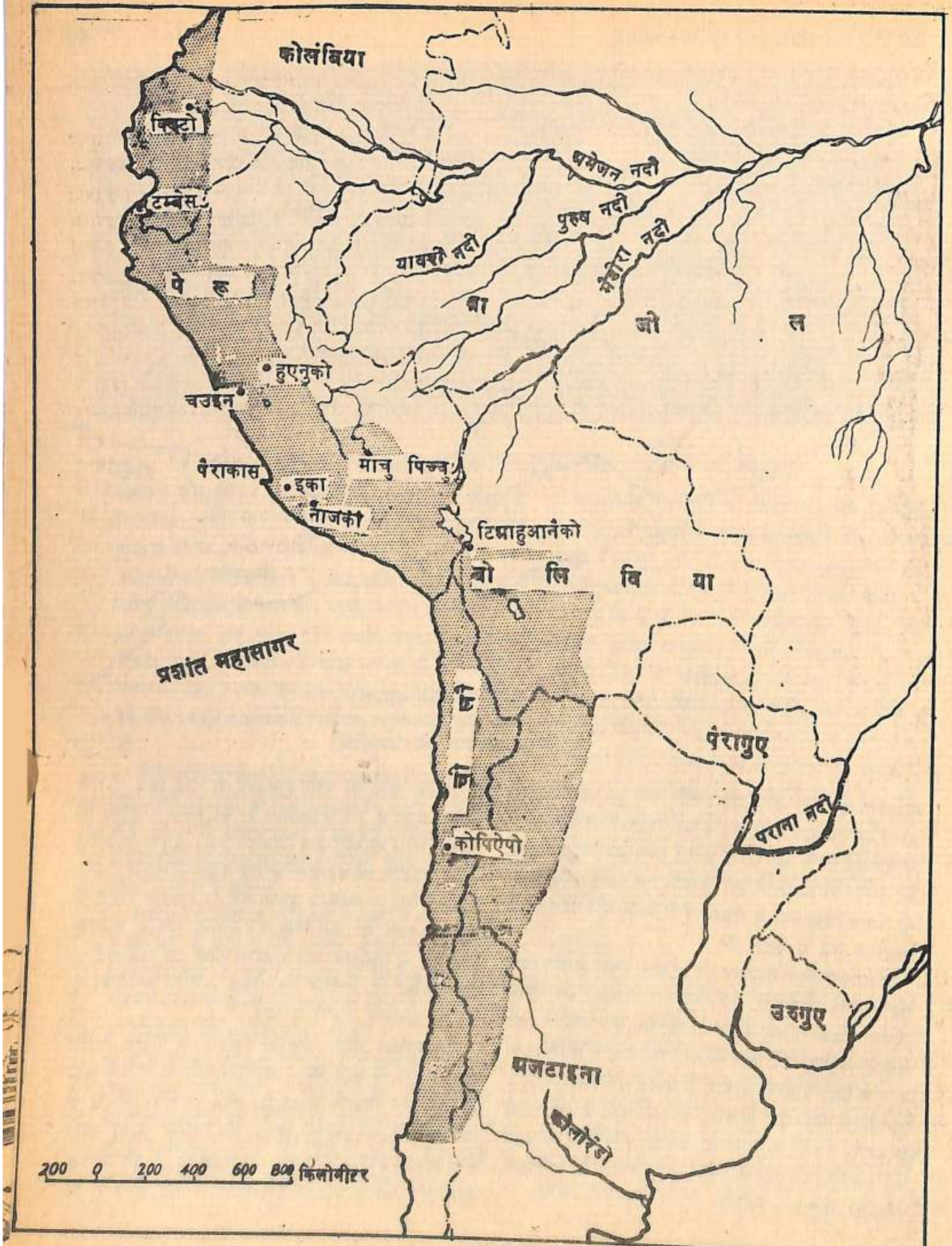
कोलंबिया
क्विटो
टम्बेस
पे रू
अमेजन नदी
पुरुष नदी
यावरी नदी
मेदीरा नदी
ब्रा जी ल
हुएनुको
चउइन
पैराकास
इका
नाजका
माचु पिच्चु
टिआहुआनैको
बो लि वि या
प्रशांत महासागर
चि ल
पैरागुए
पराना नदी
कोपिऐपो
उरुगुए
अर्जेंटाइना
कोलोरेडो
200 0 200 400 600 800 किलोमीटर
इंका साम्राज्य

हम क्या कहें या जो कुछ हमारे सामने था वह सचमुच वास्तविक था।"

कोर्टेस के नेतृत्व में स्पेन के विजेता 1519 ई० में टेनोक्टिट्लान में घुसे और शक्तिशाली एज़टेक साम्राज्य 1521 ई० में खत्म हो गया।

इंका लोग

इंका लोग उस अत्यंत शक्तिशाली और प्रसिद्ध सभ्यता के सृष्टा थे जो 14 वीं और 15 वीं शताब्दियों के दौरान दक्षिण अमरीका के एंडियन क्षेत्र में फली-फूली। जैसा कि तुमने पढ़ा है, उनके पहले कई संस्कृतियां हो चुकी थीं जिनमें से कुछ का इतिहास प्राचीन काल से आरंभ होता है।

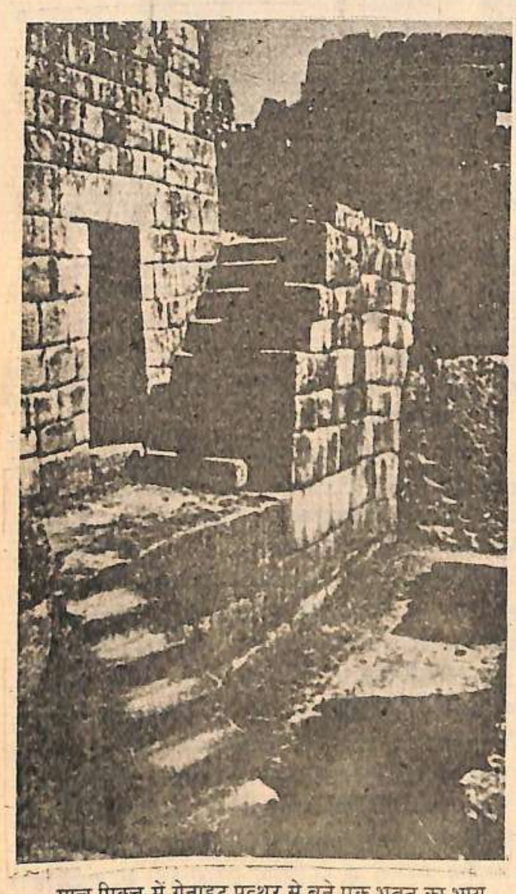

माचू पिक्चू में ग्रेनाइट पत्थर से बने एक भवन का भाग

इंका साम्राज्य पश्चिमी दक्षिण अमरीका में एंडीज के बहुत बड़े भाग—इक्वाडोर, पेरू और चिली में फैला हुआ था। इस विशाल क्षेत्र में, जो समुद्र के तट के साथ 5,000 किलोमीटर की लम्बाई पर फैला हुआ था, ऊंचे पहाड़ तथा गहरी घाटियां थीं। इंका साम्राज्य अमरीका में सबसे बड़ा था। इसके ऊपर दक्षिण-मध्य पेरू में स्थित कुज्को नामक शहर से शासन किया जाता था। यह शहर 3,500 मीटर की ऊंचाई पर बसा था। इस साम्राज्य में शहरों की भरमार थी और वह चार भागों में बंटा था। प्रत्येक भाग पर कोई कुलीन पुरुष शासन करता था। इंका के शहरों में विशाल इमारतें थीं जिनमें महल, मंदिर, सरकारी भंडारागार और किले थे। सड़कों की एक श्रृंखला कुज्को को साम्राज्य के सभी भागों से जोड़ती थी। इंका लोग अपने इंजीनियरिंग कौशल के लिए प्रसिद्ध हैं। पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़ों से बिना गारे का इस्तेमाल किए बनी उनकी इमारतें, उनकी सिंचाई व्यवस्था और सीढ़ीदार खेती, प्रपाती खड्डों पर बने उनके पुल तथा उनके विशाल किले अनोखे हैं। **माचू पिच्चू** नामक एक इंका शहर दक्षिण-मध्य पेरू में लगभग 3,500 मीटर की ऊंचाई पर स्थित था। वह शहर एक बड़ा गढ़ जैसा था जिसमें मकान, मंदिर और महल थे जो एक दूसरे से पत्थर की सीढ़ियों द्वारा संबद्ध थे। किसानों और साधारण नागरिकों के मकान धूप में सुखाई गई ईंटों से या पत्थरों पर मिट्टी पोतकर बनाए गए थे।

इंका के सम्राट को सूर्य का वंशज समझा जाता था। समाज में सम्राट के बाद कुलीनों और पुरोहितों का स्थान था। किसान और दस्तकार साधारण लोग थे। जमीन के ऊपर राज्य का अधिकार था और राज्य उसे किसानों के बीच परिवार के आकार के अनुसार बांटता था। राज्य के पास अनाजों के बड़े गोदाम थे जिनसे कुलीनों, पुरोहितों और राज्याधिकारियों का पोषण होता था। अगर फसल खराब हो जाती थी तो इन्हीं गोदामों से जनता को अनाज दिया जाता था।

ऊंचे-नीचे पहाड़ों में सीढ़ीदार खेती की जाती थी। मक्का, आलू और शकरकंद मुख्य कृषि-उत्पादन थे। कलाएं और दस्तकारियां काफी विकसित थीं। इन दस्तकारियों में मिट्टी के बर्तनों का निर्माण, कपड़े बनाना और लामा तथा अल्पाका से ऊन प्राप्त करना शामिल था। इंका काल के पेरू के कपड़ों में डिजायन की दृष्टि से

इंका सभ्यता के लोगों के मिट्टी के चित्रित बर्तन

विविधता थी। यह उन्नति की उच्च अवस्था की सूचक है। इन कपड़ों को औरतें करघों पर तैयार करती थीं। कुम्हार के चाक का इस्तेमाल किए बिना मिट्टी के जो बर्तन बनते थे वे विभिन्न प्रकार और आकार के होते थे। उन्हें सुंदर डिजायनों से सजाया जाता था। इंका सभ्यता वाले कांसे के औजार और हथियार बनाते थे तथा सोना, चांदी और तांबे के आभूषण तैयार करते थे। उनकी कोई लेखन-प्रणाली नहीं थी। वे अपने अभिलेख क्विपु (quipu) युक्ति से बनाते थे। इनसे चीजों को याद रखने में सहायता मिलती थी। यह एक डंडा होता था जिस पर विभिन्न रंगों की रस्सियों में गांठ लगाकर एक शृंखला में बांधा जाता था। कई खोपड़ियां मिली हैं जो दिखलाती हैं कि चिकित्सा और शल्य शास्त्र दोनों काफी विकसित थे।

मानव-आकृतियों की तरह इंका सभ्यता के लोगों के निर्मित मिट्टी के बर्तन

फ्रांसिस्को पिज्जारो के नेतृत्व में स्पेन के विजेताओं ने इस क्षेत्र में 1532 ई० में प्रवेश किया और अगले दो सालों के दौरान सारे साम्राज्य को रौंद दिया। अंतिम इंका सम्राट को पकड़कर मौत के घाट उतार दिया गया। इंका लोगों के स्वर्ण-आभूषणों को लूट लिया गया और पिघलाकर सिल्लियों में बदल दिया गया। इंका शिल्पकारों द्वारा परिश्रमपूर्वक बनाया गया एक भी स्वर्ण आभूषण ज्यों-का-त्यों स्पेन नहीं भेजा गया।

अमरीका की आदि सभ्यताएं 16 वीं शताब्दी के मध्य तक खत्म हो गईं। उन्हें आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया। वे आक्रमणकारी यूरोप के अन्वेषकों के साथ या उनके बाद आए थे। अगली शताब्दियों के दौरान जब यूरोप के अधिकाधिक लोग वहां बस गए तब अमरीका के स्थानीय जनगणों की संस्कृतियां नष्ट हो गईं। इस अध्याय में उल्लिखित शक्तिशाली सभ्यताओं के अतिरिक्त अनेक

आयताकार स्वर्ण-फलक जिस पर पुजारी की आकृति उकेरी गई है।

अन्य संस्कृतियां, और शिकारियों तथा किसानों के समुदाय थे। इन लोगों को इनकी जमीनों और शिकार की जगहों से हटा दिया गया तथा उनमें से अनेक लोगों को मार दिया गया। विकसित सभ्यताएं अपने स्मारक छोड़ गई हैं, मगर अन्य सभ्यताओं ने बहुत थोड़ी निशानियां छोड़ी हैं। कुछ इलाकों में जहां कभी किसानों तथा शिकारियों के समुदाय रहते थे वहां किसी को मूल निवासियों की कोई निशानी नहीं मिलती। दूसरे क्षेत्रों में विजेता स्थानीय जनसंख्याओं से घुल-मिल गए और पुरानी संस्कृति के कुछ पहलू जिन्दा रह गए। कुछ देशों विशेषकर मध्य और दक्षिण अमरीका, में स्थानीय लोग जो कोलम्बस के कारण भारतीय कहलाये, वहां की जनसंख्या में अच्छी-खासी तादाद में हैं। यूरोपीय उपनिवेश बनाने वालों और बसने वालों की गतिविधियों के परिणामस्वरूप सोलहवीं शताब्दी से एक बिल्कुल भिन्न प्रकार की सभ्यता का उदय होने लगा। कुछ ही शताब्दियों में सम्पूर्ण महाद्वीप इस प्रकार बदल गया कि उसे पहचानना कठिन हो गया।

मध्य और दक्षिण अमरीका में जन-आंदोलनों के पनपने के साथ-साथ अमरीका के मूल निवासी यूरोपीय बाशिंदों के वंशजों के साथ बराबरी के अधिकार पाते जा रहे हैं। मूल निवासी और यूरोपीय बाशिंदों के वंशज इन देशों में जहां इस अध्याय में उल्लिखित सभ्यताएं फलीं-फूलीं, अपनी विगत उपलब्धियों को समान गर्व से देखते हैं। जब मेक्सिको एक गणतंत्र बना तब एज़टेक देवता के प्रतीक को देश के सरकारी प्रतीक के रूप में अपनाया गया। इंका लोगों की भाषा क्विचुआ (Quichua) पेरू की द्वितीय सरकारी भाषा है। यूरोपीय विजय के पहले के अमरीकी जनगणों की अनेक उपलब्धियां सम्पूर्ण मानवजाति की मूल्यवान अर्जित संपत्ति हो गयी है। कतिपय कृषि और वन-उत्पादनों में, जो पहले अमरीका से बाहर नहीं मालूम थे और अभी सारे संसार में अपनाये गये हैं, मक्का, आलू, टमाटर, कुम्हाड़ा कद्दू, अनानास, स्ट्राबेरी और तम्बाकू हैं।

अफ्रीका की प्राचीन संस्कृतियां और सभ्यताएं

यूरोप वाले और जगहों की अपेक्षा अफ्रीकी महादेश में बहुत बाद में आए, उन्होंने इसे 'अज्ञात महाद्वीप' कहा। अफ्रीका जाने और उसके बारे में लिखने वाले यूरोपीयों में सबसे पहले पुर्तगाल वालों का नाम आता है। इनमें से बहुतों ने अपने वृतांत में इस बात का जिक्र किया है कि वहां शक्तिशाली राज्य और सभ्यताएं थीं। लेकिन जब उन्नीसवीं शताब्दी में अफ्रीका पर यूरोपियों का पूरी तरह से आधिपत्य हो गया, तो इन वृतांतों को भुला दिया गया। यूरोपियों ने यह कहना शुरू कर दिया कि भौगोलिक अलगाव के कारण अफ्रीकी जनगण तब तक अपनी आदिम अवस्था से ऊपर नहीं उठ सके जब तक कि यूरोप वाले वहां नहीं पहुंचे। उपनिवेशवादी शासकों ने तो जैसे इस बात की रट सी लगा दी कि वे अफ्रीकियों को सभ्य बनाने और उन्हें अवमानवीय स्थितियों से उबार कर मानवीय स्थिति तक पहुंचाने के लिए वहां आए हैं। एक और भ्रांत धारणा यह थी कि उष्णकटिबंधी अफ्रीका के किसी भी हिस्से में न तो व्यवस्थित समाज थे न वहां किसी प्रकार की विकसित, राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियां ही थीं। अतैव यूरोपियों ने इस बात का दावा किया कि अफ्रीकियों ने उनके औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत की बस्ती बसाकर रहने की कला सीखी और खेती, वाणिज्य एवं उद्योगों में लगे।

अफ्रीका के अतीत के बारे में हुई नई खोजों ने अफ्रीकी जनगणों के ऐतिहासिक पिछड़ेपन की इन धारणाओं को

अब खत्म कर दिया है। ये खोजें विभिन्न सूत्रों से हुई हैं। एक महत्वपूर्ण स्रोत पुरातत्व है। अफ्रीका के विभिन्न भागों में पुरानी जगहों का उत्खनन पुरातत्व शास्त्रियों ने कराया है। इन उत्खननों के परिणामों से हमें प्रस्तर युग से वर्तमान युग तक के अफ्रीका के अतीत का पुनर्निर्माण करने में सहायता मिलती है। पुनर्निर्माण के इस कार्य में गांव और कबीलों के बड़े-बूढ़ों द्वारा जबानी सुनाई गई ऐतिहासिक परंपराओं से बहुत मदद मिली है। जबानी परंपराओं और पुरातात्विक खोजों और अनेक अन्य तथ्यों व जानकारियों की पुष्टि में प्राचीन यात्रियों और व्यापारियों द्वारा लिखे गए वृत्तांतों से भी मदद मिलती है। अफ्रीका के अनेक भागों के बारे में सातवीं शताब्दी से अरब यात्री, व्यापारी और विद्वानों द्वारा लिखे गए बहुत से विवरण आज उपलब्ध हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के बाद के अनेक यूरोपीय यात्रियों व व्यापारियों (जिनमें सबसे पहले पुर्तगाल वाले आते हैं) के लिखित वृतांत भी मिलते हैं।

अफ्रीका के जनगण

अफ्रीका में बोली जाने वाली भाषाओं के तीन मुख्य परिवार हैं। इन्हीं तीन भाषा परिवारों के आधार पर अफ्रीकी जनगणों के तीन बड़े जनगण बनते हैं। पहले जनगण में **सूडानी** भाषाएं बोलने वाले लोग आते हैं। ये लोग सूडान के विशाल क्षेत्र में बसे हुए हैं। सूडान सहारा और विषुवत रेखा के बीच का वह प्रदेश है जो सेनेगेल नदी के मुहाने से अपर गिनी कोस्ट और पूर्व में इथियोपिआ की सीमाओं तक फैला हुआ है। दूसरे जनगण में **बांटू** भाषाएं बोलने वाले लोग आते हैं जो सूडान के दक्षिण में महाद्वीप के लगभग संपूर्ण आधे दक्षिणी भाग में बसे हुए हैं। तीसरे जनगण में वे लोग हैं जो **सेमिटिक** एवं **हैमिटिक** भाषाएं बोलते हैं और सूडान के उत्तरी व उत्तर-पूर्वी भूभाग तथा इथियोपिआ, सोमाली और कीनिया के एक भाग में रहते हैं। ये जनगण अपने इतिहास के हजारों वर्षों की पूरी अवधि भर एक दूसरे में घुलते मिलते रहे हैं। तुम तीसरे जनगण के कुछ लोगों, विशेष कर मिस्रवासियों की सभ्यता के बारे में पहले ही पढ़ चुके हो। इस अध्याय में तुम सूडानी और बांटू लोगों की कुछ सभ्यताओं और संस्कृतियों के बारे में पढ़ोगे। उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका के कुछ भागों के कुछ सेमिटिक-हैमिटिक लोगों के इतिहास का भी संक्षेप में उल्लेख किया जाएगा।

यहां यह याद रखना चाहिए कि यद्यपि अफ्रीका के कुछ भीतरी भाग संसार के शेष भागों से अलग होकर कुछ कट से गए थे, फिर भी उसके दूसरे हिस्सों के, खास कर समुद्र तट वाले प्रदेशों के विश्व के अनेक भागों से बड़े पुराने संबंध थे। बहुत प्राचीन काल से ही अफ्रीका के कई प्रदेशों की संस्कृति को संसार के दो महान धर्मों ने प्रभावित किया था।

ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में ईसाई धर्म उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका में फैला। इस्लाम आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में शुरू हुआ और सोलहवीं शताब्दी तक फैलता रहा। बहुत प्राचीन काल से ही अफ्रीका के अनेक भागों का विश्व के अनेक दूरस्थ भागों से व्यापार होता था।

पुरा पाषाण युग से लौह युग के प्रारंभ तक

तुम पहले अध्याय में आदिम मानव की विभिन्न जातियों (स्पिसीज) के बारे में पढ़ चुके हो। उनमें से एक, जिंजानथ्रोपस, जिसने सबसे पहले औज़ार बनाए, आज से दस लाख वर्ष पूर्व उत्तरी तंजानिया में रहता था। आज का मानव होमो सेपियंस उपजाति (स्पिसीज) का है। उत्तर पुरा पाषाण युग की संस्कृति का सृष्टा होमो सेपियंस मानव ही था। अनेक विद्वानों का मत है कि पहले होमो सेपियंस अफ्रीका में ही रहते थे और इस तरह अफ्रीका मानवता रूपी शिशु का पालना था।

आहार-उत्पादन की अवस्था निचली नील घाटी में लगभग 7000 वर्ष पहले शुरू हुई। सहारा के दक्षिण के प्रदेशों में आहार-उत्पादन की अवस्था लगभग 5000 वर्षों पूर्व शुरू हुई और धीरे-धीरे दक्षिणी अफ्रीका के विभिन्न प्रदेशों में फैल गई। फिर भी अनेक भौगोलिक कारणों से

अयस्क पिघलाने के लिए एक प्राचीन अफ्रीकी भट्ठी

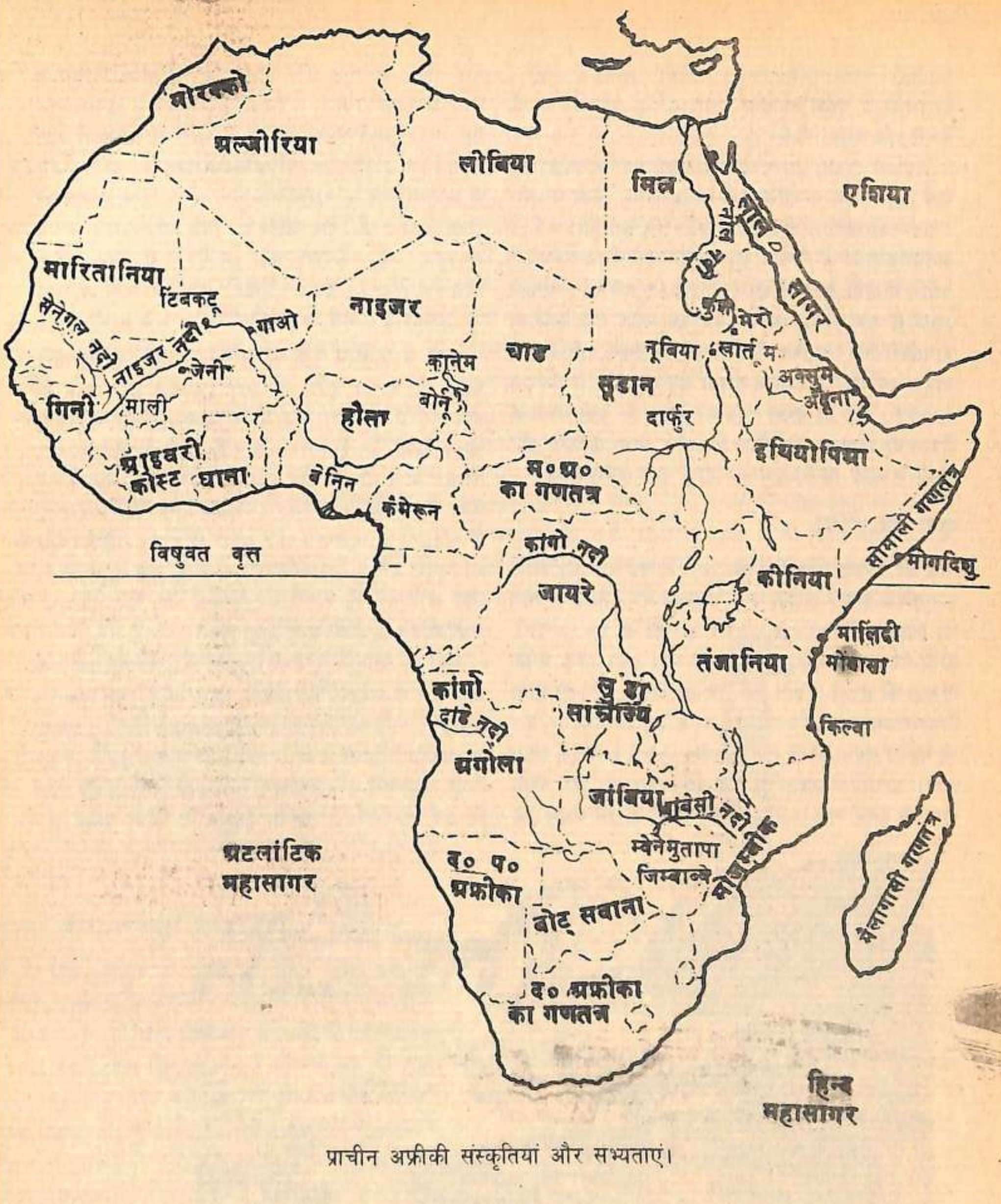

प्राचीन अफ्रीकी संस्कृतियां और सभ्यताएं।

अफ्रीका के एक बहुत बड़े भूभाग में खेती करने की कला के आने में बहुत समय लग गया। अफ्रीका की अधिकांश धरती बहुत उर्वर नहीं है और कुछ पैदा करने के लिए उसमें बहुत गुड़ाई-जुताई की जरूरत पड़ती है जबकि नदी घाटियों की जमीन ऐसी नहीं है। अफ्रीका में खेती योग्य जमीन बनाने के लिए जंगलों को साफ करने की जरूरत भी

पड़ती है। इसलिए, अधिकांश अफ्रीकी इलाकों में, लोहे के इस्तेमाल से पहले, आहार-संग्रह अथवा पशु-पालन की स्थिति ही बनी रही।

लगभग 2000 वर्ष पहले, अफ्रीका वालों ने लौह धातु कर्म की विभिन्न प्रक्रियाओं—निकालना, गलाना और गढ़ाई—को जानना शुरू किया और तब यह ज्ञान तेजी से अनेक इलाकों में फैला। लौह उपकरणों के इस्तेमाल से जमीन में खेती करने के काम का प्रसार हुआ। और कृषि के प्रसार से सभ्यता का आविर्भाव हुआ। लौह धातु कर्म की जानकारी संभवतः मिस्र से ईसा पूर्व की प्रथम सहस्राब्दी में आई। अफ्रीकी इतिहास में ईसवी सन् के प्रारंभ से लगभग 1200 ई० तक का समय बहुत महत्वपूर्ण है। इसी समय के दौरान ही लौह धातु अफ्रीका के अनेक भागों में फैली और उसने सभ्यता के विकास की नींव वहां जमाई।

कुश का राज्य

मिस्र की सभ्यता के बारे में तुम पहले ही पढ़ चुके हो। इसके व्यापारिक संबंध दक्षिण के इलाकों से थे—नूबिया से सोने का व्यापार होता था और दूसरे इलाकों से धूप (अगरु), हाथी-दांत अ[illegible] चमड़े जैसी चीजों का। कहा जाता है कि नूबिया की खानों से प्रति वर्ष लगभग 40,000 किलो सोना निकाला जाता था। मिस्र के दक्षिण के इस प्रदेश में ई० पू० की पहली सहस्राब्दी में एक सशक्त, स्वतंत्र राज्य का उदय हुआ। आधुनिक सूडान में कुश का राज्य था। यह चौथी शताब्दी ईसवी तक एक हजार वर्ष से भी अधिक समय तक बना रहा। ई० पू० की आठवीं शताब्दी में थोड़े समय के लिए कुश के राजाओं ने मिस्र पर भी शासन किया। तब यह राज्य विश्व शक्ति बन गया। उसी शताब्दी में कुश राजाओं ने अपनी राजधानी को मेरो में बनाया जो कि आज के खार्तूम नगर से 160 कि० मी० उत्तर में था। कुश का राज्य दक्षिण की ओर और भी फैला और उसने अपनी स्वतंत्रता और शक्ति को काफी दिनों तक बनाए रखा—असीरियाई, ईरानी, यूनानी और रोम वालों के मिस्र पर कब्जा कर लेने के काफ़ी दिनों बाद तक भी।

कुश के राज्य में लोहे की अति महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसके ही कारण कृषि की इतनी उन्नति हुई। लोहे के हथियारों से ही कुश राजाओं ने विजय के युद्ध लड़े और अपने राज्य का विस्तार सूडान के कुछ भागों तक कर लिया। आज भी हम इस बात के प्रमाण देख सकते हैं कि कुश में लोहे का अपरिमित इस्तेमाल होता था। मेरो नगर के खंडहरों के आसपास लौह कचरे के पहाड़ खड़े हैं। एक महत्वपूर्ण मंदिर, जिसके खंडहर आज भी देखे जा सकते हैं, लोहे के कचरे की पहाड़ी पर ही बना था। मेरो को मध्य अफ्रीका का बर्मिंघम कहा जाता है।

कुश की संस्कृति मिस्र की सभ्यता से अत्यधिक प्रभावित थी। मेरो के खंडहरों को देखकर मिस्री लोगों द्वारा बनवाए भवनों की याद आ जाती है। कुश के देवता लगभग वही हैं जो प्राचीन मिस्रियों के थे। राजपद की उनकी संकल्पना भी मिस्री संकल्पना से प्रभावित है। मिस्र के राजाओं की तरह ही कुश के राजाओं को भी दैवी हस्ती माना जाता था।

मेरो के पिरामिडों के खंडहर

प्राचीन मिस्र की चित्रलिपि का इस्तेमाल कुश के अभिलेखों में भी पाया जाता है। कुश के लोगों ने अपनी स्वयं की भी एक लिपि विकसित कर ली थी जिसको मेरोइटिक लिपि कहते हैं। दुर्भाग्य से इसे अभी तक पूर्णतः पढ़ा नहीं जा सका है। तुम्हें यह जानकर अच्छा लगेगा कि कुश के लोगों का व्यापार संभवतः भारत से भी होता था क्योंकि यह पता चला है कि भारत के कपड़े का इस्तेमाल वहां हुआ था। वहां एक ऐसी मूर्ति मिली है जिसमें एक राजा को हाथी पर बैठा दिखाया गया है। इससे कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कुश की कला भी भारत की कला से प्रभावित थी।

अफ्रीका के इतिहास में, विशेषकर मध्य और पश्चिमी भागों के इतिहास में, कुश के राज्य की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसका सबसे बड़ा योगदान तो यही था कि इसने लोहे के निर्माण और उपयोग के ज्ञान को अफ्रीका के अनेक दूसरे भागों में बांटा।

कुश के राज्य के पतन के बाद दो नए राज्यों का आविर्भाव हुआ—उत्तर में नूबिया और दक्षिण में अक्सुम। लगभग 300 ई० में अक्सुम ने 'आधुनिक इथोपिया' कुश के राज्य को पराजित कर दिया और मेरो नगर ध्वंस हो गया। एक इतिहासकार ने कुश के राज्य की तुलना एथेंस के नगर-राज्य से की है। दोनों ही लगभग समकालीन रहे हैं। एथेंस की ही तरह कुश भी कला का बहुत बड़ा केन्द्र था और उसके अनेक देशों से व्यापारिक संबंध थे। एथेंस की ही तरह कुश का प्रभाव भी दूर-दूर तक फैला और अपने अस्तित्व के बाद भी बहुत दिनों तक वह दूसरों को प्रभावित किए रहा।

नूबिया और अक्सुम के राज्य

नूबिया और अक्सुम के राज्यों का उदय ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में हुआ। जैसा कि ऊपर बताया गया है, अक्सुम राज्य ने कुश की सत्ता 300 ई० में समाप्त कर दी और अपनी राज्य सीमा दक्षिण में और भी बढ़ा ली। इन दोनों राज्यों के शासकों ने चौथी शताब्दी में ईसाई धर्म को अपना लिया। अरबों के निरंतर बढ़ते असर के फलस्वरूप नूबिया के शासक तेरहवीं शताब्दी में मुसलमान बन गए लेकिन अक्सुम वाले ईसाई ही बने रहे और उन्होंने अपनी एक विशिष्ट संस्कृति विकसित की। उनकी अपनी लिपि और भाषा भी थी जिसे गियज कहते हैं। इन दोनों राज्यों के जीवन में व्यापार ने विशेष भूमिका निभाई। अक्सुम का मुख्य बंदरगाह अदूना था जो कई शताब्दियों तक पूर्वी अफ्रीका और सुदूर के भारत व यूनान जैसे देशों के बीच होने वाले व्यापार का प्रमुख केन्द्र बना रहा। अक्सुम विश्व के विविध देशों को हाथी दांत, सुवर्ण चूर्ण, कच्चा चमड़ा और लोबान जैसी सुगंधियों का निर्यात किया करता था।

दोनों राज्यों में अक्सुम ज्यादा ताकतवर था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी इसका अधिक महत्व है। अक्सुम में सूडानी, हैमिटिक और अरब तत्वों का ऐसा अंतर्मिलन हुआ था कि वहां के लोगों का एक अलग ही विशिष्ट व्यक्तित्व था। इस्लाम धर्म के उत्थान और अरबों की शक्ति के बढ़ने पर अक्सुम दक्षिण की ओर फैलकर वह आज के इथियोपिआ देश के निर्माण की ओर अग्रसर हुआ। यहां उन इथियोपिआई आख्यानों का जिक्र कर देना अच्छा रहेगा जिनके अनुसार बाइबिल में उल्लिखित शीबा राज्य ही इथियोपिआ था। शायद तुम्हें मालूम हो कि बाइबिल में शीबा की एक रानी का जिक्र आता है जो फिलिस्तीन के राजा सोलोमन से मिलने गई थी। इथियोपिआई आख्यानों के अनुसार राजा सोलोमन से शीबा की रानी का विवाह हो

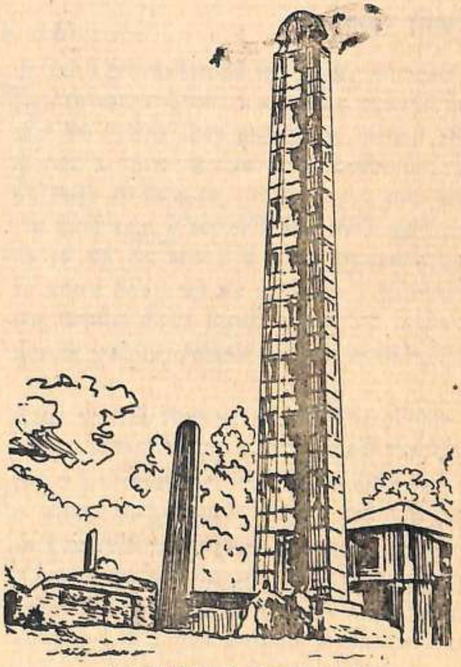
अक्सुम का एक सूच्याकार स्तंभ

गया था और एक लड़का भी हुआ था जिसके वंशज ही प्राचीन इथियोपिआ के राजे बने।

अक्सुम के राजाओं ने शानदार स्मारक भवन बनवाए थे जो हमें प्राचीन मिस्र के स्मारकों की याद दिलाते हैं। अनेक महलों, मंदिरों, सूच्याकार स्तंभों और किलों के अवशेष ढूंढ़ निकाले गए हैं। सूच्याकार स्तंभों पर बहुत ही खूबसूरत मूर्तिकला उकेरी गई है। अक्सुम के लोग गारा-मसाला का इस्तेमाल किए बिना ही पत्थरों की बड़ी-बड़ी इमारतों के बनाने की कला में माहिर थे।

सोमाली का समुद्र तट बहुत प्राचीन काल से ही व्यापार का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहता आया था। प्राचीन काल के यूनानी और रोमी नाविक इसे 'सुगंधित क्षेत्र' कहते थे क्योंकि यहीं से लोबान और राल का निर्यात सुगंधित द्रव्य बनाने के लिए होता था। यह इलाका बहुत दिनों से अक्सुम का ही भाग था। इस इलाके में आठवीं शताब्दी में, अनेक छोटे-छोटे राज्यों का आविर्भाव हो गया जिन्होंने विश्व के बहुत से देशों के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबंध कायम रखे।

सूडानी राज्य

सूडानी भाषाएं बोलने वाले जनगण जिन क्षेत्रों में रहते थे, वहां लौह धातु कर्म के ज्ञान के फैलने से कई सशक्त राज्यों और साम्राज्यों का आविर्भाव हुआ। इनमें से कई राज्य उतने ही शक्तिशाली थे जितने उस जमाने के विश्व के दूसरे देशों के कई राज्य थे। इन राज्यों का पार्थिव एवं सांस्कृतिक जीवन विभिन्न पहलुओं से बहुत उन्नत था। अनेक महत्वपूर्ण लक्षणों में ये राज्य एक जैसे थे। इन समानताओं के आधार पर हम एक सूडानी सभ्यता का नामकरण कर सकते हैं जिसमें सूडानी जनगणों द्वारा निर्मित विभिन्न राज्यों की संस्कृतियां समाविष्ट हो जाती हैं।

सूडानी राज्यों की एक महत्वपूर्ण विशेषता उनकी राजनीतिक विचार धाराओं व कार्य प्रणालियों की समानता थी। इन राज्यों के शासकों को ईश्वरीय शक्तियों से युक्त माना जाता था। इन राज्यों में केन्द्र शासित प्रशासन था और सरकार राजा द्वारा नियुक्त कुशल अधिकारियों की मदद से राज चलाती थी। अधिकारियों के पदों पर नियुक्ति पीढ़ी दर पीढ़ी के हिसाब से नहीं होती थी। ये अधिकारी ही करों और खिराज की वसूली का प्रबंध करते थे। कारीगरों और शिल्पियों को समाज में उच्च स्थान मिला हुआ था क्योंकि व्यापार की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी।

नया धर्म इस्लाम बड़ी तेजी से अधिकांश राज्यों में दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दियों में और कुछ राज्यों में पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दियों में फैला। इस प्रकार धर्म भी इन राज्यों में से अधिकांश की प्रमुख समान विशेषता बन गया। ये राज्य भी इस्लामी सभ्यता के भाग बन गए। इससे व्यापार की बढ़ोत्तरी में मदद मिली और फलस्वरूप संस्कृति का विकास हुआ। इन राज्यों का अरब से घनिष्ठ संबंध था, इससे अरब यात्रियों और विद्वानों के लिखे हुए इन राज्यों से संबंधित अनेक विवरण हमें आज भी मिलते हैं।

सूडान में जिन बड़े राजघरानों और राज्यों का उदय हुआ उनमें से कुछ हैं घाना, माली, सोंधे, कैनेम, बोर्नू, होसा के राज्य और दार्फुर।

घाना

नाइजर नदी के ऊपरी बहाव के उत्तर-पश्चिम में स्थित घाना पहला राज्य था जिसका आविर्भाव पश्चिमी अफ्रीका में हुआ। इस राज्य का प्रारंभ ईसवी सन् की कई शताब्दियों पूर्व हुआ था। खेती में और हथियार बनाने में लोहे के इस्तेमाल द्वारा आठवीं शताब्दी तक घाना एक सशक्त राज्य बन गया। घाना के उत्तर में वे क्षेत्र थे जहां नमक भरा पड़ा था और उसके दक्षिण में सोने की खानें थीं। घाना ने सोने वाले इलाकों पर कब्जा कर रखा था। इससे घाना के व्यापार में सोना प्रमुख हो गया, फलस्वरूप घाना की संपन्नता और शक्ति बहुत बढ़ गई। वह 'सोने का देश' कहलाने लगा। अभी कुछ बरसों पहले अंग्रेजी राज से आजादी पाने के समय तक घाना देश का एक बड़ा भाग गोल्ड कोस्ट (सोने का तट) कहलाता था।

माली और सोंधे

माली राजघराने की स्थापना तेरहवीं शताब्दी में हुई थी। शीघ्र ही उनका एक बड़ा साम्राज्य बन गया जिसके अंतर्गत पश्चिमी सूडान का एक बड़ा भूभाग आता था। माली राजाओं ने दक्षिण के सोने और उत्तर के नमक भंडार पर कब्जा कर रखा था। इस राज्य का पतन पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ, और इसकी जगह पर सोंधे के राजघराने का उदय हुआ। सोलहवीं शताब्दी में इस राजघराने के सितारे सबसे ज्यादा बुलंद थे। लेकिन शताब्दी समाप्त होने तक यह राजघराना भी डूब गया।

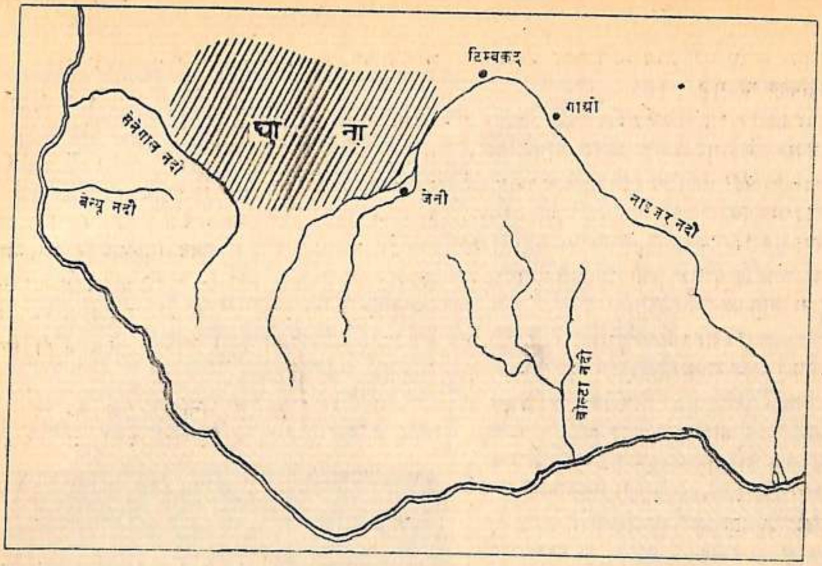

घाना का राज्य

कंकन मूसा के शासन काल में माली का राज्य

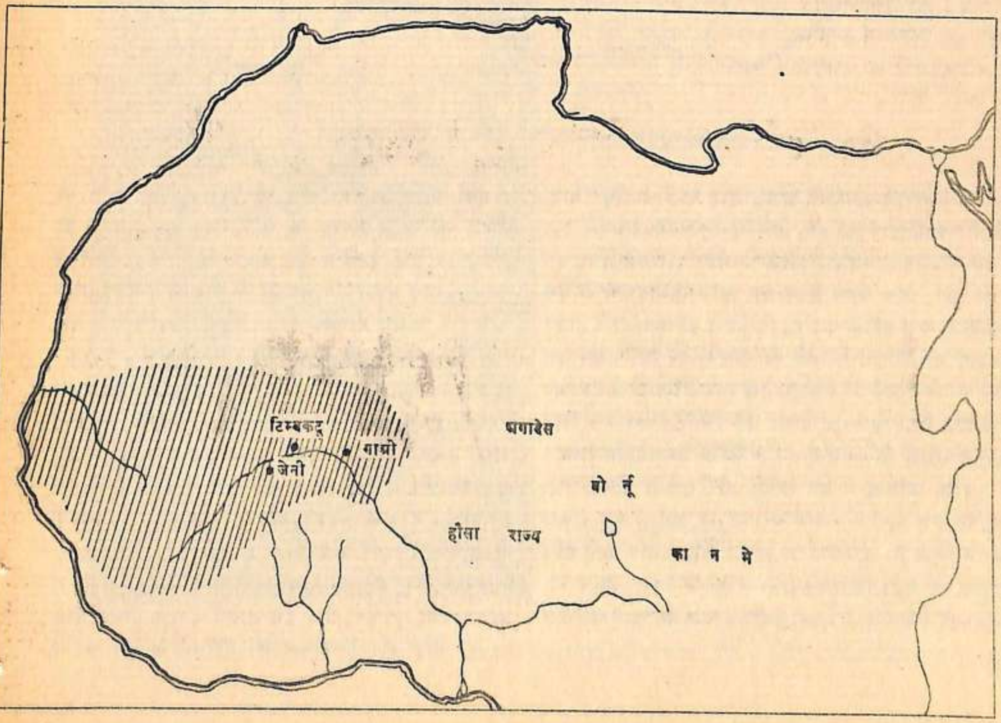

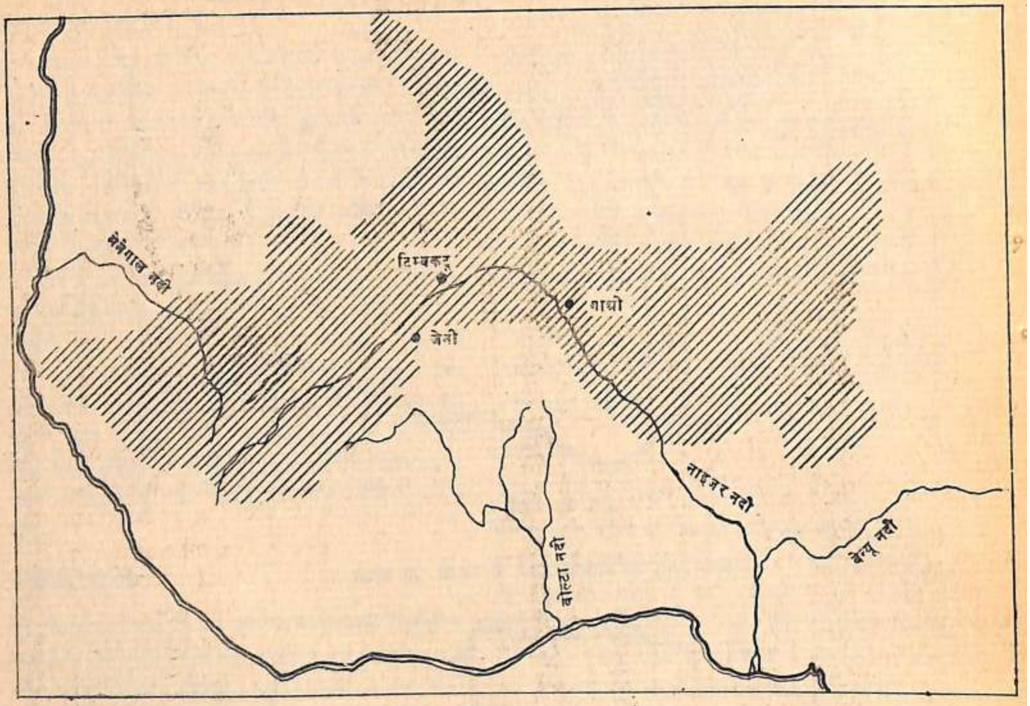

अस्किया मुहम्मद के शासन काल में सोंघे का राज्य

माली घराने का सबसे प्रसिद्ध राजा मंसा (अर्थात् सम्राट) कंकन मूसा था। वह हज करने के लिए मक्का गया। वहां उसकी शान व शौकत देखकर समस्त इस्लामी जगत दंग रह गया। कहा जाता है कि वह अपने साथ इतना अधिक सोना ले गया था कि जब 1324 ई० में वह काहिरा से होकर गुजरा तो काहिरा में सोने का भाव काफी गिर गया। इस घटना की नकल पर प्रसिद्ध सोंघे शासक अस्किया मुहम्मद भी हज पर गया और संसार को प्रभावित करने के लिए उसने उससे भी अधिक तड़क-भड़क का प्रदर्शन किया।

अरब यात्रियों ने इन राज्यों और उनकी दौलत तथा शक्ति एवं वहां की सामान्य दशा के बारे में बड़े रोचक वर्णन लिखे हैं। मोरक्को का प्रसिद्ध विद्वान और यात्री इब्न बतूता जो मुहम्मद तुगलक के जमाने में भारत आया था, चौदहवीं शताब्दी के मध्य में माली राज्य की यात्रा पर गया था।

इब्न बतूता ने 'अद्वितीय सौन्दर्य' के लिए माली की स्त्रियों की बड़ी प्रशंसा की है जिनकी वहां 'पुरुषों की अपेक्षा अधिक इज्जत' की जाती थी। उसने माली में प्रचलित मातृ सत्तात्मक प्रणाली की चर्चा की है जिसे उसने 'संसार में सिवाय मलाबार के भारतीयों के, और कहीं नहीं देखा' था। वह माली में पाई जाने वाली सुव्यवस्था और सुरक्षा से बहुत प्रभावित हुआ था और वहां के लोगों की प्रशंसा करता हुआ वह लिखता है, वे शायद ही कभी अन्याय करते हैं और दूसरे लोगों की बनिस्बत उनके दिल में बेइंसाफी के लिए ज्यादा खौफ़ है। इनके देश में पूर्ण सुरक्षा है। यहां के निवासी और यात्री को डाकू या उपद्रवी लोगों से डरने की कोई गुंजाइश नहीं है।'

माली और सोंघे राज्यों के नगरों में वाणिज्य-व्यापार के कारण बड़ी संपन्नता थी। उस जमाने के कुछ प्रसिद्ध नगर गाओ, जेनी और टिम्बकटू थे। वैसे तो ये मूल रूप से

व्यापारिक केन्द्र थे, पर इस्लामी दुनिया में इनकी प्रसिद्धि इसलिए भी थी कि यहां संसार के दूसरे भागों से बड़े-बड़े विद्वान आया करते थे क्योंकि ये ज्ञान और विद्या के गढ़ थे। टिम्बकटू नगर विशेष रूप से अपनी मस्जिदों और विद्या के केन्द्रों के लिए प्रसिद्ध था।

सूडान के अन्य राज्य

मध्यवर्ती सूडान में भी कई सशक्त राज्यों का आविर्भाव हो चुका था। इनमें सबसे बड़ा नील और नाइजर नदियों के बीच का कानेम का राज्य था। इसके पतन के बाद बोर्नू का राज्य, महत्वपूर्ण हो उठा। बोर्नू का राजघराना आठवीं शताब्दी में अस्तित्व में आया था और यह सत्रहवीं शताब्दी तक बना रहा। इसके पास बहुत बड़ी सेना थी और अपने घुड़सवारों के लिए यह विशेष प्रसिद्ध था। घुड़सवार कवच या जिरह बक्तर पहनते थे। उनके घोड़ों के बचाव की भी व्यवस्था होती थी। सामने की ओर से उनका मुंह ढका होता था और बगल में पीतल का कवच लगा रहता था। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में दार्फुर के बड़े राज्य का आविर्भाव हुआ। यह बीसवीं शताब्दी के शुरू के दशकों तक बना रहा। अपर गिनी के लोगों का बेनिन राज्य भी एक महत्वपूर्ण राज्य था। ईसवी सन् की प्रथम सहस्राब्दी के अंत में उत्तरी नाइजीरिया के हौसालैंड में कई राष्ट्र राज्यों का उदय हुआ। यद्यपि हौसा के ये राज्य राजनीतिक रूप से कभी भी एक न हो सके, तथापि दक्षिणी सूडान में वे इस मामले में निराले थे कि यहां अति उन्नत उद्योग थे। कपड़े बनाने व रंगने, चमड़े का काम करने, कांच और धातुओं की तरह-तरह की चीजें बनाने में वे विशेष रूप से माहिर माने जाते थे। ये राज्य व्यापार में भी खूब बढ़े चढ़े थे। पश्चिमी अफ्रीका की संस्कृति को प्रभावित करने में इनका बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। सूडान के अधिकांश राज्यों की तरह हौसा के लोगों ने भी पंद्रहवीं शताब्दी में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उनके सांस्कृतिक प्रभाव और उनके व्यापार की महत्ता इस तथ्य से आंकी जा सकती है कि उनकी भाषा संपूर्ण अफ्रीका में लोगों की संपर्क भाषा बन गई।

बेनिन से प्राप्त हाथी दांत का मुखौटा

बांटू के जनगणों की सभ्यताएं

विषुवत रेखा के दक्षिण में रहने वाले अफ्रीकी जनगणों के लोग जो भाषाएं बोलते हैं वे आपस में मिलती-जुलती हैं। वे भाषाएं बांटू भाषा परिवार की हैं। बांटू शब्द का अर्थ 'मनुष्य' होता है।

कृषि, धातु, विज्ञान और व्यापार की उन्नति के फलस्वरूप दक्षिणी अफ्रीका के अनेक भागों में शक्तिशाली राज्यों का उदय हुआ। पूर्वी अफ्रीका के सागर तटवर्ती नगरों और राज्यों को छोड़कर इस क्षेत्र के इतिहास की जानकारी के हमारे स्रोत सूडानी राज्यों के इतिहास-स्रोत की तुलना में कम हैं।

कांगो का राज्य

पुराने जमाने में कांगो नदी के मुहाने तक फैले अंगोला के सागर तटवर्ती इलाके में कई राज्यों का आविर्भाव हुआ था। पंद्रहवीं शताब्दी तक ये सभी राज्य मिलकर कांगो के राज्य

के रूप में एक बड़े राज्य का रूप ले चुके थे। जिस समय इस क्षेत्र में पुर्तगाली पहली बार पहुंचे तो उन्होंने पाया कि कांगो राज्य उस समय अपनी शक्ति सामर्थ्य की उच्चतम सीमा पर पहुंचा हुआ था। वहां केन्द्र शासित कुशल प्रशासन था। यद्यपि कांगो के राजाओं को दैव सम्मान मिला हुआ था और वे राज्य की समस्त भूमि के मालिक समझे जाते थे, तथापि राजा की गद्दी पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली नहीं थी। अनेक अभिजात घरानों में से राजा चुना जाता था। उसके हाथ में संपूर्ण सत्ता नहीं होती थी। लोगों की समितियां होती थीं जिनके हाथ में अनेक अधिकार होते थे। दासता की प्रथा अवश्य विद्यमान थी किन्तु उसके कुछ अलग ही लक्षण थे। सामान्यतः युद्धबंदियों, अपराधियों अथवा कर्ज़ में डूबे हुए लोगों को ही दास बनाया जाता था, किन्तु उन्हें खरीदा या बेचा नहीं जाता था। वे स्वामी के साथ परिवार के सदस्य जैसे ही होकर रहते थे। वे जमीन-जायदाद के भी मालिक बन सकते थे। पंद्रहवीं शताब्दी के बाद जब पुर्तगाली व्यापारी कांगो में आए तो धोखाधड़ी और बर्बरता से वहां की शांति और संपन्नता खत्म हो गई और राज्य ढह गया।

लुंडा साम्राज्य

दक्षिणी अफ्रीका के सबसे ज्यादा शक्तिशाली राज्यों में से एक लुंडा साम्राज्य भी था। इसके अधीन काफी विशाल प्रदेश आता था जिसमें पूर्वी अंगोला और कटांगा (अब ज़ेर गणतंत्र का एक प्रांत) भी शामिल था। बड़े पैमाने पर खेती करने, मछली मारने व शिकार करने के लिए यह एक आदर्श प्रदेश था। खनिज भंडारों के लिए भी यह बड़ा संपन्न इलाका था। प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र के लोग शिल्प वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत विकसित थे। ऐसे बहुत से स्थान उत्खनन के बाद मिले हैं जो यह साबित करते हैं कि सातवीं व आठवीं शताब्दी में भी कटांगा में तांबा खानों से खोद कर निकाला जाता था। शिल्प विज्ञान और कृषि की उन्नति से ऐसी परिस्थितियां बनीं जिनमें सशक्त राज्य विकसित हुआ। लुंडा साम्राज्य का नाम वहां बोली जाने वाली भाषा 'लुंडा' के नाम पर रखा गया है।

लुंडा साम्राज्य वाले अपने लोहे और तांबे के विस्तृत धातु कर्म द्वारा ही इतने शक्तिशाली बन सके। लुंडा नगरों में लोहार, जुलाहे, कुम्हार, टोकरी बनाने वाले, कलाल (शराब बनाने वाले), लकड़ी पर डिज़ाइन खोदने वाले बढ़ई जैसे बड़े कुशल शिल्पकार और व्यापारी होते थे। साम्राज्य की राजनीतिक प्रणाली लगभग वैसी ही थी जैसी कांगो में लेकिन इसके कुछ अपने अलग ही लक्षण थे। कांगो की ही तरह लुंडा साम्राज्य में भी शक्तिशाली और लोकप्रिय समिति होती थी जो सम्राट तक को गद्दी से उतार सकती थी। मातृ सत्तात्मक प्रथा ने साम्राज्य की राजनीतिक प्रणालियों को प्रभावित किया था। राज्य में साम्राज्य का शासन करने के लिए दो सत्ताएं थीं। एक तो म्वाता याम्वू अर्थात् राजा था, दूसरा लुकोकेशा जिसका शाब्दिक अर्थ 'सबकी मां' होता है। म्वाता याम्वू मृत राजा के पुत्रों में से ही चुना जाता था। इसी तरह लुकोकेशा मृत राजा की पुत्रियों में से चुनी जाती थी। आचार और शिष्टाचार आदि की एक विस्तृत प्रथा निश्चित थी जिसका पालन म्वाता याम्वू, लुकोकेशा और दूसरे लोगों को करना ही पड़ता था। साम्राज्य में व्यापार का बोलबाला था। वस्तुतः राज्य का यह मुख्य कार्य था कि वह व्यापार को संगठित करे और उसकी उचित रूप से देखभाल रखे।

म्वेनेमुतेपा का राजघराना

दसवीं शताब्दी के एक अरब यात्री ने अफ्रीका के दक्षिण पूर्वी सागर तट और भारत तथा चीन के बीच होने वाले सोने व हाथीदांत के बहुत बड़े व्यापार का उल्लेख किया है। इस व्यापार की शुरूआत जिंबाब्वे के पठार में हुई जहां दसवीं शताब्दी तक एक बड़ी सभ्यता का आविर्भाव हो चुका था। पंद्रहवीं शताब्दी के पुर्तगाली व्यापारी इस क्षेत्र के एक महान और शक्तिशाली राज्य की विशाल संपदा का जिक्र किया करते थे। इस राज्य का शासक म्वेनेमुतेपा था। इसको पुर्तगाली मोनोमोतापा भी कह देते थे। यह क्षेत्र खेती, पशुपालन और सोने के भंडार की दृष्टि से बहुत संपन्न था। यहां के निवासियों ने व्यापार के उद्देश्य से सागर तटवर्ती इलाकों से अपने संबंध स्थापित कर रखे थे। कालांतर में उन्होंने संभवतः सागर तटवर्ती नगरों का नियंत्रण अपने हाथ में लिया और सोने तथा हाथीदांत के समुद्री व्यापार में लग गए।

इस सभ्यता का केंद्र महान जिंबाब्वे का प्राचीन नगर था जिस के प्रस्तर-खंडहर विश्वप्रसिद्ध हैं। इस नगर की पत्थर की दीवालें दस मीटर ऊंची और सात मीटर चौड़ी होती थीं। इसी प्राचीन स्थान पर म्वेनेमुतेपा के राजघराने की राजधानी थी। ऐसा माना जाता है कि यह राज्य तेरहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के बीच फल-फूल रहा था और मोज़ाबिक तथा जिंबाब्वे के अधिकांश इलाकों पर फैला

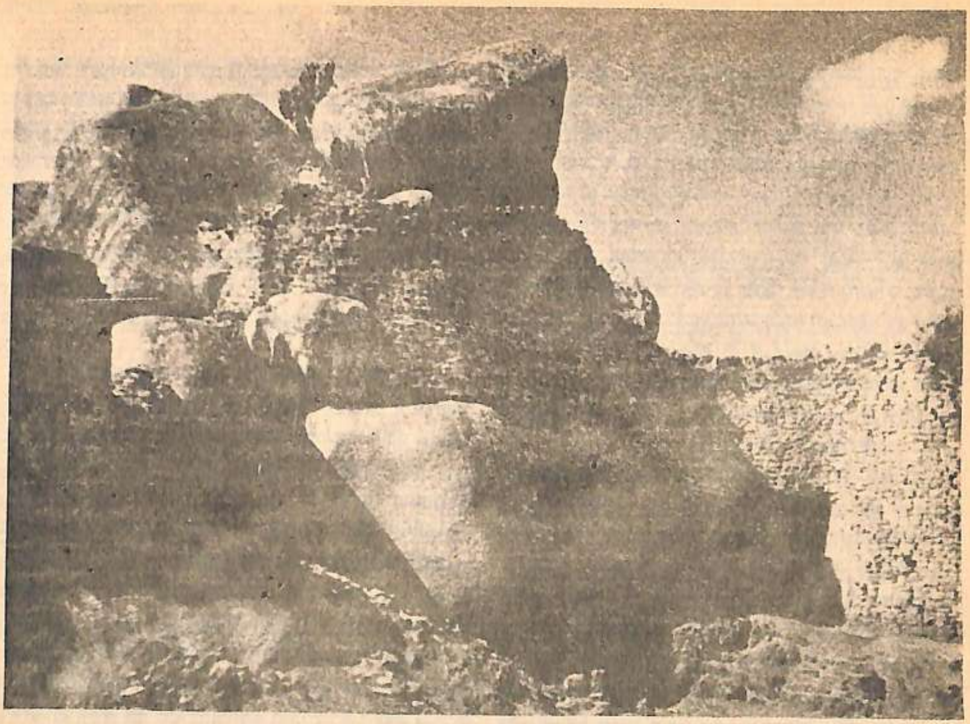

महान जिंबाब्वे में दीवार के खंडहर

हुआ था। स्वतंत्रता के पूर्व जिंबाब्वे जिस पर कुछ ही दिन पहले तक एक गोरे अल्पसंख्यक वर्ग का शासन था। दक्षिण रोडेशिया कहलाता था।

पूर्वी अफ्रीका के समुद्र तटवर्ती इलाके

बहुत प्राचीन काल से ही बांटू अफ्रीका का पूर्वी समुद्र तटवर्ती इलाका बाहरी वाणिज्य में लगा हुआ था। इस क्षेत्र की व्यापारिक बस्तियों के बारे में यूनानी भूगोल वेत्ताओं को पहली शताब्दी में ही जानकारी थी। सुदूर स्थित भारत और चीन के साथ इन इलाकों के व्यापारिक संबंध थे। व्यापार की मुख्य वस्तुएं सोना, हाथीदांत और लोहा थीं। अरब उपनिवेशियों के साथ हुए संबंधों के फलस्वरूप प्राचीन नगर सातवीं शताब्दी के बाद व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र बन गए। इस काल के कुछ महत्वपूर्ण नगर किल्वा,

महान जिंबाब्वे में गुम्बदों के खंडहर

मोगादिशू, मालिंदी और मांवासा हैं। इस क्षेत्र के निवासी इस्लाम धर्म के अनुयायी थे। जहां के सागर तटवर्ती शहरों की संपन्नता दिनों-दिन बढ़ती ही गई थी। चीनी मिट्टी के सुंदर बर्तन जैसे महंगे पदार्थ चीन जैसे दूरस्थ देशों से यहां मंगाए और इस्तेमाल किए जाते थे। किल्वा के शासकों ने अपनी चलन मुद्रा के लिए टकसालें बनवाई थीं। भारत के साथ होने वाला व्यापार बहुत महत्वपूर्ण था। वस्तुतः भारत में बनने वाली चीजों का यहां बड़ी तादाद में आयात होता था, साथ ही यहां बनने वाली चीज़ों का भारत को निर्यात भी बड़ी संख्या में ही होता था। यह क्षेत्र बढ़िया किस्म के लौह अयस्क की खानों की दृष्टि से भी बड़ा संपन्न था। यहां के व्यापारी इस अयस्क को भारत तक पहुंचाते थे जहां उसकी तलवारें बनती थीं।

इस क्षेत्र की संस्कृति पर अरब व्यापारियों (जिनमें से बहुत से अब यहां बस चुके थे) के साथ बने सांस्कृतिक व व्यापारिक संबंधों का गहरा प्रभाव पड़ा था। इस बात को उन मस्जिदों और मकबरों को देखकर समझा जा सकता है, जो यहां पर बनवाई गई थीं और जो अब भी यहां विद्यमान हैं। इन संबंधों का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम एक नई भाषा के विकास के रूप में प्रकट हुआ है। यह भाषा 'स्वाहिली' है और यह शब्द अरबी भाषा का है जिसका अर्थ होता है 'सागर तट की'। बाहर से आने वाली भाषा अरबी और यहां की मूल भाषा बांटू के मिलने से यह नई भाषा विकसित हुई है। यह अब भी पूर्वी अफ्रीका के बहु संख्यक वर्ग में प्रचलित भाषा है।

दक्षिणी अफ्रीका के बहुत से अन्य भागों में इस बात के प्रमाण मिले हैं कि वहां व्यापर, वाणिज्य, शिल्प विज्ञान बहुत उन्नत दशा में था और वहां के राज्यों में बहुत विकसित राजनीतिक व्यवस्थाएं थीं। आज जिस स्थान पर दक्षिणी यूगांडा, उत्तरी-पूर्वी तंजानिया, रुआंडा, बुरुंडी और जायरे गणतंत्र के पर्वी भाग हैं वहां प्राचीन काल में कई राज्यों का आविर्भाव हुआ था। इन राज्यों के इलाके प्रायः ही अपनी राजधानियों के चारों ओर सैंकड़ों मीलों तक फैले होते थे।

अभी हाल के कुछ वर्षों में इतिहासकारों और पुरातत्व वेत्ताओं ने जो काम किए हैं उनसे हमें अफ्रीका में सभ्यता के विकास को समझने में सहायता मिली है। यद्यपि अफ्रीका के कुछ भाग बाहर की दुनिया से कट गए थे, फिर भी अधिकांश भागों के संसार के अनेक देशों के साथ व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध थे। किन्तु सोलहवीं शताब्दी में अफ्रीका और बाहरी दुनिया के बीच जिस प्रकार के संबंध विकसित होने शुरू हुए, उन्होंने अफ्रीका समाज और उनकी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियों को बिल्कुल तहस-नहस करके रख दिया। उत्तरी व दक्षिणी अमरीका, यूरोप और अरब के बाजारों में लाखों की संख्या में दास बेचे गए। मानव रूपी माल का यह वाणिज्य चार शताब्दियों तक चलता रहा। जब यूरोपीय ताकतों ने अफ्रीका का बंटबारा किया, तब तक अफ्रीका की शानदार परंपराएं अतीत के गर्भ में भुला दी गई थीं।

अभ्यास

जानने योग्य तथ्य

1. आदि अमरीकी सभ्यताओं की मुख्य सामान्य विशेषताओं का वर्णन करो।
2. माया लोगों की अति महत्वपूर्ण उपलब्धियां क्या थीं?
3. प्राचीन मिस्र और माया पंचांगों की तुलना करो।
4. इंका और एज़टेक सभ्यताओं की उपलब्धियों का वर्णन करो।
5. संसार के कुछ भागों की अपेक्षा अफ्रीका के कुछ भागों में भोजन उत्पादन की अवस्था बाद में क्यों शुरू हुई?
6. कुश सभ्यता प्राचीन मिस्री सभ्यता से किस प्रकार से प्रभावित हुई थी? कुंश को मध्य अफ्रीका का बर्मिंघम क्यों कहते हैं?
7. सूडानी सभ्यता के प्रमुख केंद्र कहां-कहां थे?

8. अफ्रीका की भाषाओं के कौन-से तीन मुख्य परिवार हैं? निम्नलिखित सभ्यताओं के लोग जिस भाषा वर्ग के हों, उनका उल्लेख करो—अक्सुम, माली, कांगो, हौसा के राज्य, घाना, म्वेनेमुतेपा, बोर्नू।
9. अफ्रीका में इस्लाम का प्रसार कब हुआ? अफ्रीकी सभ्यताओं पर उसका क्या प्रभाव रहा?
10. अफ्रीका में सभ्यताओं के विकास में लोहे का महत्व बताओ।

करने के लिए कार्य

1. आधुनिक मध्य व दक्षिण अमरीका का एक मानचित्र लो और उस पर वह/वे देश दिखाओ जहां इंका, माया और एज़टेक सभ्यताएं फलीं-फूलीं।
2. नीचे प्राचीन अफ्रीकी राज्यों और नगरों के नाम लिखे हैं। हरेक के सामने उस देश/उन देशों का नाम लिखों जहां वे स्थित थे—

कुश	महा जिंबाब्वे
अक्सुम	दार्फुर
घाना	टिम्बकटू
माली	हौसा के राज्य
सोंघे	कांगो का राज्य
लुंडा साम्राज्य	म्वेनेमुतेपा

सोचने और विचार-विमर्श के लिए

1. अमरीकी सभ्यताओं की भौतिक संस्कृतियां किन मुख्य अर्थों में प्राचीन एशियाई और यूरोपीय सभ्यताओं से भिन्न है?
2. अफ्रीकी सभ्यताओं के विकास में लोहे और विदेशी व्यापार का महत्व बताओ।

अध्याय 5

मध्यकालीन विश्व

अब तक इस पुस्तक में हमने उन कुछ सभ्यताओं के बारे में पढ़ा है जो प्राचीन काल में एशिया, यूरोप, अमरीका और अफ्रीका में पनपी थीं। एशिया और यूरोप के भागों में सभ्यता के विकास की कहानी ई० सन् की प्रारंभिक शताब्दियों यानी प्राचीन काल के अंत तक बतलाई गई हैं, मगर अमरीका और अफ्रीका की सभ्यताओं के बारे में काफी बाद के काल तक, मोटे तौर पर इन महाद्वीपों में यूरोपीय लोगों के आने के समय तक बतलाया गया है। इस अध्याय में तुम मुख्य रूप से एशिया और यूरोप में प्राचीन काल के बाद होने वाले सभ्यता के विकास को, जो करीब 600 ई० से करीब 1500 ई० तक हुआ है, पढ़ोगे। यह प्राचीन और आधुनिक काल के बीच की अवधि है। इस अवधि को आमतौर से मध्ययुग कहा जाता है। फिर भी, यह शब्द संसार के उन सभी हिस्सों के इतिहास में एक ही समय को सूचित नहीं करता जिनके बारे में इस अध्याय में चर्चा की गई है।

बर्बर जातियों के आक्रमणों के कारण 500 ई० तक पश्चिम में रोम का साम्राज्य समाप्त हो गया था, किन्तु पूर्वी रोमन साम्राज्य, जिसकी स्थापना 500 ई० से पहले हो चुकी थी, लगभग 1000 वर्ष बाद तक चलता रहा। उस समय पश्चिमी यूरोप बहुत से छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था, किन्तु कुछ विजेताओं ने उन छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना करने के प्रयत्न किए।

भारत में उस समय गुप्त वंश के राजा शासन कर रहे थे। थोड़े दिनों पश्चात् निर्बल राजाओं के शासन-काल में हूणों के आक्रमण के कारण उस साम्राज्य के वैभव का युग भी समाप्त हो गया। साथ ही, जैसा कि तुम्हें मालूम ही है कि सातवीं शताब्दी ईसवी के प्रारंभिक वर्षों में पैगंबर मुहम्मद साहब ने इस्लाम धर्म की स्थापना की। अरब सभ्यता मध्ययुग में संसार भर में सबसे उन्नत हो गयी।

मध्यकाल में सारे संसार में अनेक परिवर्तन हुए। प्राचीन राज्यों और साम्राज्यों के पतन और नए राज्यों के उदय के पश्चात् संसार के राजनीतिक मानचित्र में बहुत परिवर्तन हो गए। सामाजिक और आर्थिक जीवन में अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

पश्चिमी यूरोप में ये परिवर्तन अधिक स्पष्ट थे। इस काल में वहां जिस सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का विकास हुआ वह प्राचीन कालीन सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से काफी भिन्न थी। तुम पहले पढ़ चुके हो कि प्राचीन यूनान और रोम के समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता दासता थी। इन समाजों में उत्पादन का अधिकांश कार्य दास करते थे। इस काल में पश्चिमी यूरोप और बाद में चलकर यूरोप के अन्य भागों में जो व्यवस्था विकसित हुई उसे सामन्तवाद कहा जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक जीवन मुख्यतया ग्रामीण था। समाज मुख्य रूप से किसानों और सामंती लॉर्डों के बीच बंटा हुआ था। किसान खेतों पर काम करते थे और सामंती लॉर्ड किसानों के उत्पादन का एक हिस्सा ले लेते थे या किसानों से, बिना उन्हें भुगतान किये, अपनी ज़मीन पर काम करवाते थे। अधिकांश उत्पादन का उपभोग स्थानीय तौर पर ही हो जाता था। जनजीवन में नगरों और व्यापार की भूमिका नाममात्र की थी। इस व्यवस्था के बारे में तुम विस्तार से पढ़ोगे।

संसार के अन्य अनेक भागों में जनता के सामाजिक और आर्थिक जीवन में होने वाले परिवर्तन उतने स्पष्ट नहीं थे।

उदाहरण के लिए, संसार के कुछ भागों में, यूरोप की तरह व्यापार और नगरों की अवनति नहीं हुई। इसी प्रकार, जैसी संस्थाएं सामन्तवाद के अन्तर्गत यूरोप में विकसित हुई, वैसी कहीं और नहीं थीं। मगर विभिन्न समाजों में विकसित होने वाली विशिष्ट संस्थाओं में अन्तर के बावजूद उनके बीच अनेक समानताएं थीं। कृषक वर्ग का शोषण हर जगह सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता था। कुछ समाजों में जैसे पश्चिमी यूरोप में, उसने दास-कृषक व्यवस्था (serfdom) का रूप लिया। दूसरे समाजों, जैसे भारत में यद्यपि भारतीय किसान की स्थिति दास-कृषक (serf) जैसी नहीं थी तथापि जमींदार और अभिजात वर्ग किसानों के उत्पादन का एक बड़ा भाग ले लेते थे। कुछ विद्वान भारत सहित एशियाई देशों की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को भी एक प्रकार का सामन्तवाद मानते हैं यद्यपि अनेक दृष्टियों से वह यूरोपीय सामन्तवाद से भिन्न थी। उनके अनुसार मध्यकालीन समाज-व्यवस्थाओं की एक चारित्रिक विशेषता सामंतवाद थी।

मध्यकालीन यूरोप

रोम के सम्राट कॉन्स्टेनटाइन ने रोमन साम्राज्य के पूर्वी प्रदेशों की एक नयी राजधानी 330 ई० में प्राचीन यूनानी नगर बिजेण्टाइन में स्थापित की थी। इस नगर का नाम सम्राट कॉन्स्टेनटाइन के नाम पर कॉन्टेनटिनोपल (कुस्तुनतुनिया) पड़ा और वह इसी नाम से विख्यात हुआ। पश्चिम में रोमन साम्राज्य को बर्बर लोगों के आक्रमण ने नष्ट कर दिया, मगर पूर्वी भाग लगभग एक हजार सालों तक पूर्वी रोमन, या बिजेण्टाइन साम्राज्य के नाम से बना रहा। उसकी राजधानी कॉन्स्टेनटिनोपल (कुस्तुनतुनिया) थी। यह एक विशाल साम्राज्य था और कुस्तुनतुनिया यूरोप में सबसे बड़ा नगर था, जब कि लंदन और पेरिस सिर्फ गांव थे। सुदूर पूर्व के देशों के साथ बिजेण्टाइन साम्राज्य के घनिष्ट व्यापारिक संबंध थे। बिजेण्टाइन सम्राट ईसाई धर्म की जिस शाखा के अनुयायी थे, उसे पूर्वी, या ग्रीक आर्थोडिक्स चर्च कहा जाता है। आजकल भी पूर्वी देशों के अनेक ईसाई इसी शाखा के अनुयायी हैं। बिजेण्टाइन लोगों ने सुंदर गिरजाघर बनाये और उन्हे खूब सजाया। इनमें सबसे प्रसिद्ध कुस्तुनतुनिया स्थित सेंट सोफिया का गिरजाघर है। तुर्कों ने 1453 ई० में बिजेण्टाइन साम्राज्य के इलाकों को जीत लिया।

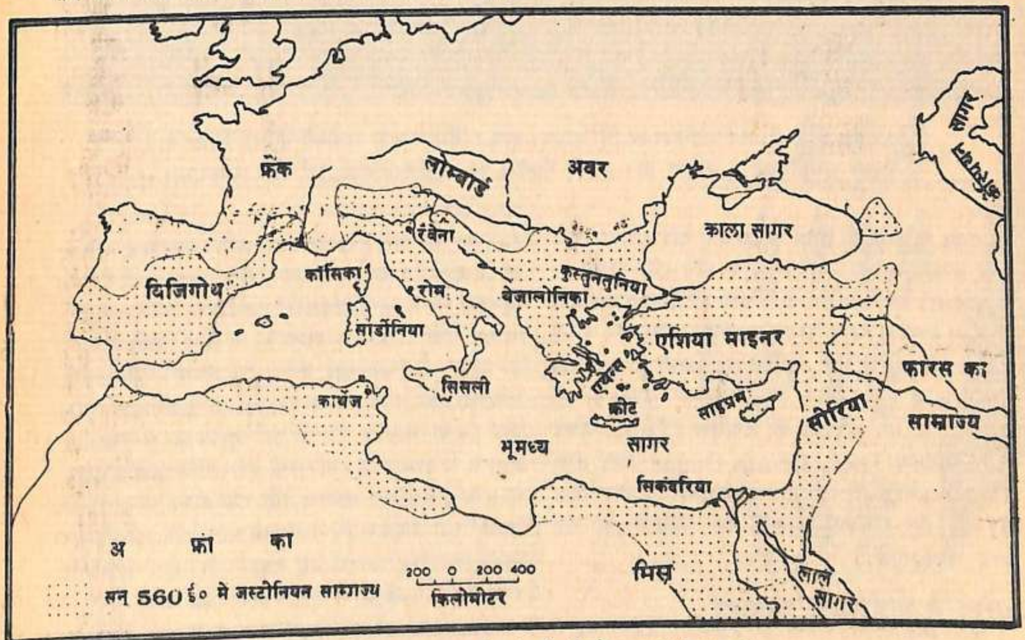

जस्टीनियन शासन के अंतर्गत बिज़ेण्टाइन (साम्राज्य)

कस्तुनतुनिया में—सेंट सोफिया का गिरजाघर। इसका निर्माण छठी शताब्दी में बिज़ेण्टाइन के सम्राट जस्टीनियन ने कराया था। इसकी मीनारों का निर्माण बाद में तुर्क लोगों ने कराया।

रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात् पश्चिमी यूरोप में बड़ी अव्यवस्था फैल गयी। अनेक छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ। सन् 800 ई० के लगभग शार्लेमेन ने एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया जिसमें आधुनिक फ्रांस और जर्मनी तथा इटली के कुछ भाग शामिल थे। उसकी मृत्यु के बाद यह साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। सन् 1000 ई० के लगभग एक नये साम्राज्य की स्थापना हुई। इसे 'पवित्र रोमन साम्राज्य' (Holy Roman Empire) कहा जाता है। इसमें जर्मनी और ऑस्ट्रिया के आधुनिक राज्य शामिल थे। धीरे-धीरे पश्चिमी यूरोप के अन्य भागों में छोटे-बड़े अन्य राज्य पनपे।

यूरोप में सामंतवादी व्यवस्था

यूरोप में मध्यकाल के दौरान जिस नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का उदय हुआ वह सामंतवादी व्यवस्था के नाम से जानी जाती है। मूलतः वह एक ग्रामीण व्यवस्था थी जिसमें किसानों को अपने उत्पादन का एक हिस्सा लगान या करों के रूप में लॉर्डों को देना पड़ता था या बिना किसी भुगतान के लॉर्डों के लिए श्रम करना पड़ता था। सामंतवादी व्यवस्था की जिन विशिष्ट संस्थाओं या प्रथाओं का वर्णन नीचे किया गया है वे पश्चिमी यूरोप के मध्यकालीन समाजों से सम्बद्ध थीं। पश्चिमी यूरोप में एक केंद्रीय सत्ता के अभाव के परिणामस्वरूप ऐसी राजनीतिक संस्थाओं का उदय हुआ जिन्हें यूरोपीय सामंतवाद की एक प्रमुख विशेषता माना जाता है। संसार के अन्य भागों में राजनीतिक संस्थाओं ने एक भिन्न ढांचा अपनाया।

'सामंतवाद' को अंग्रेजी में 'फ्यूडल सिस्टम' (Fudal System) कहते हैं। 'फ्यूडल' शब्द 'फ्यूड' से बना है,

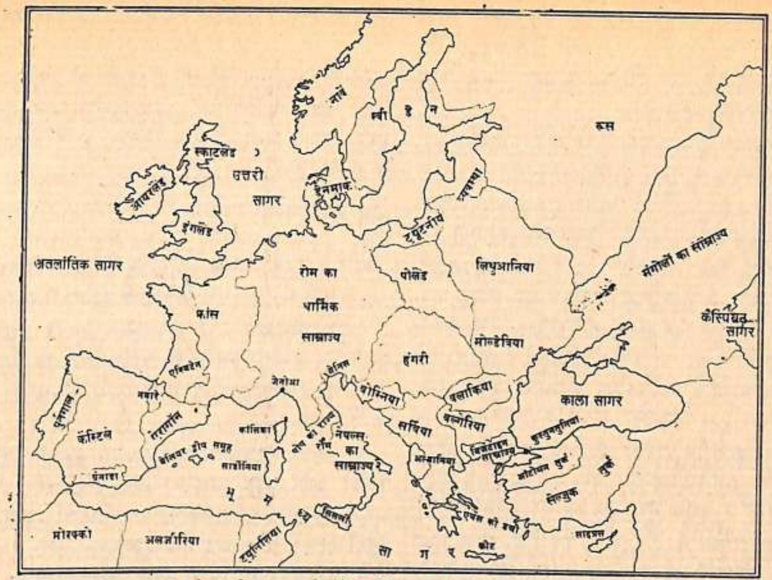

चौदहवीं शताब्दी के यूरोप का राजनीतिक विभाग

जिसका अर्थ है ऐसा कुछ भूमि-भाग (Fief) जो सेवा करने की कुछ शर्तों पर उसका स्वामी किसी सामंत को खेती के लिए देता हो। सामंती समाज में भूमि ही शक्ति का स्रोत थी।

सामंती वर्ग और निष्ठाएं

पश्चिमी यूरोप के सामंती समाज में थोड़े दिन पश्चात् एक अधिक्रम (Hierarchy) या क्रमवार संगठन की स्थापना हो गई। इस अधिक्रम में प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक निश्चित स्थान था। सबसे ऊपर राजा होता था। वह अनेक लॉर्डों को जागीरें (Fiefs) बांटता था। ये लॉर्ड ड्यूक अर्ल कहलाते थे। ये लॉर्ड अपनी जागीरों में से कुछ भाग छोटे लॉर्डों में बांट देते थे। ये छोटे लॉर्ड बैरन कहलाते थे। ये बैरन इसके बदले में ड्यूक या अर्ल को सैनिक सहायता देते थे। इस प्रकार ड्यूक और अर्ल राजा के सामंत (Vassals) होते थे और उसे प्रत्यक्ष रूप में अपना अधिपति मानते थे। बैरन ड्यूकों या अर्लों को अपना अधिपति मानते थे। सामंतों के इस अधिक्रम में सबसे छोटी श्रेणी नाइटों (Knights) की थी। साधारणतया वे बैरनों को अपना अधिपति मानते थे और उनको अपनी सैनिक-सेवा प्रदान करते थे। नाइटों के नीचे कोई सामंत नहीं थे। प्रत्येक सामंत से अपने अधिपति की सेवा करने की

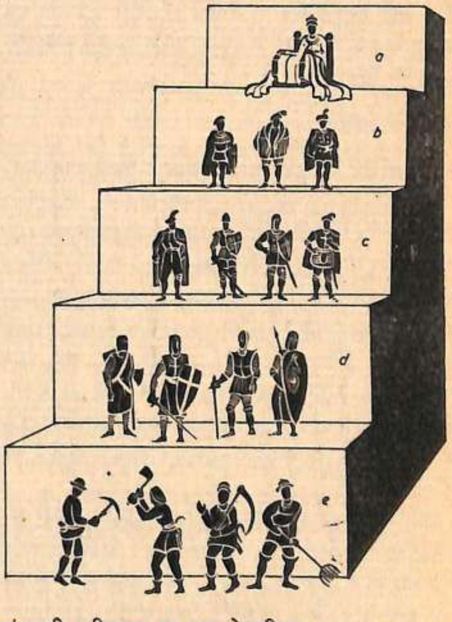

सामंतवादी अधिक्रम का एक रेखाचित्र (a) राजा (b) ड्यूक तथा अर्ल (c) बैरन (d) नाइट्स (e) कृषक

आशा की जाती थी और उसका अधिपति उसे कुछ औपचारिक अधिकार देता था।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नाइट को छोड़ कर प्रत्येक सामंत अपने से उच्च सामंत को अपना अधिपति मानता था और अपने से नीचे के सामंतों का अधिपति होता था। ऊपर से नीचे तक सारे संबंध निष्ठा पर आधारित थे। कोई भी सामंत भूमि का स्वामी नहीं था। वह अपने अधिपति की ओर से उस भूभाग का प्रबंध करता था। प्रत्येक सामंत हर प्रकार से अपने अधिपति की सेवा करने के लिए प्रस्तुत रहता था। वह अपने अधिपति के अतिरिक्त अपने ऊपर अन्य किसी व्यक्ति का अधिकार नहीं मानता था।

आवश्यकता के समय प्रत्येक अधिपति अपने सामंतों से सैनिक सहायता मांग सकता था। जैसे, युद्ध के समय राजा ड्यूकों और अर्लों से, ड्यूक और अर्ल बैरनों से, बैरन नाइटों से सैनिक सहायता लेते थे। प्रत्येक सामंत योद्धाओं की एक टुकड़ी अपने अधिपति को देता था। इन सबसे मिलकर राजा की सेना बनती थी। यह सामंती अधिक्रम इतना शक्तिशाली था कि राजा भी किसी बैरन या नाइट को सीधा नहीं बुला सकता था और न ही उससे सहायता मांग सकता था। प्रत्येक कार्य में इस अधिक्रम का पूरी सावधानी से पालन किया जाता था।

सामंती लॉर्ड

अपनी जागीर के अंदर प्रत्येक सामंती लॉर्ड सर्वशक्तिशाली होता था। उसके अपने सैनिक होते थे। जो व्यक्ति उसकी जागीर में रहते थे वह उन सब पर कर लगाता था। वह न्यायाधीश के रूप में भी कार्य करता था और जिनके विरुद्ध जो शिकायतें होती थीं उनके मुकदमे सुनकर उन्हें सजा देता था। इसका परिणाम यह हुआ कि सामंती देशों में राजनीतिक एकता का पूर्ण अभाव हो गया और शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का विकास नहीं हो सका। कभी-कभी बड़े लॉर्ड इतने शक्तिशाली हो जाते थे कि वे न तो राजा की परवाह करते थे और न ही उसके आदेशों का पालन करते थे।

कालांतर में यह प्रथा पैतृक हो गई। लॉर्ड का ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकारी होता और अपने पिता की जागीर में रहने वाले सामंतों से निष्ठा की शपथ लेता। लॉर्ड के अन्य पुत्र लॉर्ड होते और उनके सामंतों के पुत्र सामंत। इस प्रकार हिन्दुओं की जाति प्रथा के समान ही इन देशों का समाज भी जड़ीभूत (Rigid) हो गया। किसी भी व्यक्ति के लिए अपने वर्ग की परिधि से बाहर निकल पाना असंभव हो गया। उसका जन्म अधिक्रम के जिस वर्ग में होता वह उसी से बंधा रहता।

कृषक

अभी तक हमने विविध प्रकार के सामंतों का विवेचन किया है। ये सामंत अपने अधिपतियों से भूभाग लेते थे। वस्तुतः ये स्वयं खेती नहीं करते थे। कृषक इनकी ओर से खेती करते थे। सामंती समाज में इन किसानों का स्थान सबसे नीचा था, यद्यपि वे जनसंख्या में सबसे अधिक थे। किसानों के भी कई वर्ग थे।

पहला वर्ग **स्वतंत्र किसानों** का था। वे अपने अधिपति से जमीन प्राप्त करके उस पर खेती करते और इस प्रकार उसका प्रबंध करते, मानो वह उनकी भूमि हो। वे जागीरदार के लिए काम नहीं करते थे, अपितु उसे कर देते थे। किसानों का दूसरा वर्ग **कृषि-दास** (Villeins) कहलाता था। वे अपनी उपज का एक भाग जागीरदार को देते थे। कृषि-दासों को कुछ निश्चित दिन अपने जागीरदार

रेखाचित्र में कृषक द्वारा अनाज, फल और सब्जिया तथा लार्ड के लिए शराब को लाते हुए दिखाया गया है

के खेतों पर भी काम करना पड़ता था। शेष दिनों में उन्हें उन खेतों पर कार्य करने की छूट थी जो उन्हें अपने अधिपति से मिले थे।

सामंत प्रथा के अंतर्गत किसानों में अंतिम किन्तु सबसे अधिक संख्या वाला वर्ग सर्फों (Serfs) अर्थात् दास-कृषकों का था। बहुत से सर्फों के पास भूमि थी, जिसमें वे अपने लिए खेती करते थे, किन्तु उन्हें ऐसे खेतों पर भी कार्य करना पड़ता था जो पूर्णतया उनके अधिपतियों के थे। इसके अतिरिक्त सर्फों को अपने अधिपतियों के वे बहुत-से कार्य करने पड़ते थे जिन्हें करने की उनके अधिपति आज्ञा देते थे, जैसे कि मकान बनाना या उसकी मरम्मत करना या सड़क बनाना या उसकी मरम्मत करना। इस प्रकार की सेवाएं बेगार कहलाती हैं। किसानों को ऐसी सेवाओं के लिए सामंत जब चाहे बुला सकते थे। सर्फ इन सेवाओं के लिए मजदूरी नहीं मांग सकते थे। जो जमीन उन्हें अपने अधिपति से खेती के लिए मिली होती थी उसके लिए उन्हें

मध्यकालीन यूरोप में सामंती अत्याचार के विरुद्ध कृषकों के बहुत विद्रोह हुए। ऊपर दिए गए चित्र में स्पेन में हुए एक कृषक विद्रोह के बाद कृषक पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को बंदी बनाते हुए दिखाया गया है। इस विद्रोह में 20,000 कृषक मारे गए थे।

उपज का कुछ भाग अपने अधिपति को देना पड़ता था। सर्फों पर अनेक प्रतिबंध थे जिनके कारण उन्हें अनेक कष्ट झेलने पड़ते थे। वे उस भूभाग से पूर्णतया बंधे थे जिस पर वे खेती करते थे। उनका अधिपति उसी दशा में बदलता था जब वह भूमि बिक कर किसी दूसरे सामंत के पास चली जाए। वे अपनी भूमि को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते थे। यदि ऐसा करते और पकड़े जाते, तो उन्हें कठोर दण्ड दिया जाता था। किन्तु कभी-कभी जब सामत सर्फ से बहुत प्रसन्न होता तो वह उसे मुक्त कर देता और इस प्रकार वह स्वतंत्र किसान बन जाता था।

मैनर पर आश्रित सामंती जीवन

तुम पढ़ चुके हो कि सामंती जीवन कृषि पर आधारित था। गांव की कृषि योग्य भूमि मैनर (Manor) अर्थात् जागीर कहलाती थी। इसका आकार सब जगह एक-सा नहीं था। मैनर के मध्य में इसके स्वामी का मकान होता था जिसमें या तो वह रहता था या वह बहुधा जाया करता था, क्योंकि भूमिपतियों के पास कई मैनर होती थीं। मैनर में एक बड़ा कृषि-फार्म होता था। इसकी उपज से उन सब व्यक्तियों का निर्वाह होता था, जो मैनर पर रहते थे। इसमें एक चरागाह होता था जिस पर मैनर के पशु चरते थे। इसी पर कुछ जंगल होते थे, जिनसे सभी गांव वाले जलाने और मकान बनाने के लिए लकड़ी प्राप्त करते थे। मैनर पर अनेक झोपड़ियां होती थीं जिनमें साधारण व्यक्ति रहते थे, इस पर कुछ कारखाने भी होते थे, जिनमें मैनर पर रहने वालों की आवश्यकता की लगभग सभी वस्तुएं बनाई जाती थीं। वहां एक गिरजाघर भी होता था।

प्रत्येक फार्म की भूमि बहुत-सी पट्टियों में बंटी होती थी। इन पट्टियों की लंबाई खेतों की लंबाई के बराबर और चौड़ाई केवल कुछ गज होती थी। किसानों को भूमि इन पट्टियों में दी जाती थी। प्रत्येक किसान को उसके महत्व के अनुसार कुछ पट्टियां दी जाती थीं। छोटे किसानों में से प्रत्येक को दो या तीन पट्टियां और बड़े किसानों में से हरेक को 15 से 20 तक पट्टियां दी जाती थीं। सर्फ उन पट्टियों पर खेती करते थे, जिनको लॉर्ड अपने लिए रखते थे।

मध्यकाल की प्रारंभिक शताब्दियों में 'दो खेतों की प्रणाली' के अनुसार खेती की जाती थी। इसका यह अर्थ था कि कृषि-फार्म को दो भागों में बांट दिया जाता था। इनमें से कुछ पर कृषि की जाती थी और दूसरे भाग को बिना बोए छोड़ दिया जाता था। इस प्रणाली से भूमि के खाली भाग की

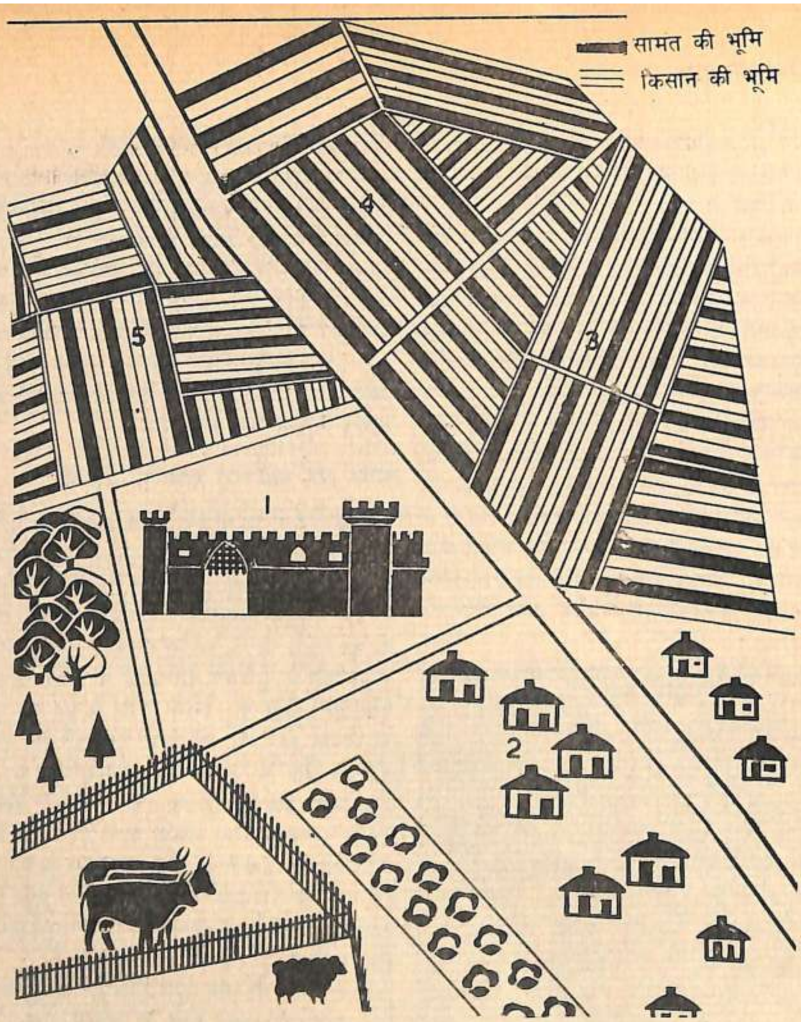

मेनर की योजना (1) मेनर गृह (2) कृषकों की झोंपड़ियां (3) शीतकालीन खेत (4) छोड़ा हुआ खेत (5) बसंत कालीन खेत। रेखाचित्र में खेत की पट्टियों को भी दर्शाया गया है

अन्न उपजाने की शक्ति बढ़ जाती थी, किन्तु खेती केवल आधे भाग पर ही हो पाती थी। कालांतर में इस प्रणाली के स्थान पर 'तीन खेतों की प्रणाली' काम में लाई जाने लगी। इस प्रणाली में खेत के तीन भाग किए जाते थे। इस प्रणाली में एक-तिहाई भाग में फसल बहुत जल्दी बोई जाती थी और एक-तिहाई भाग में काफी देर में। शेष एक-तिहाई में बीज नहीं बोया जाता था। इस प्रकार दो-तिहाई खेत में ही खेती हो सकती थी।

किसान बहुत ही सादा जीवन बिताते थे। उनके मकान मिट्टी और घास के बने होते थे जिनकी छाजन छप्पर की होती थी। साधारणतया उनमें केवल एक कमरा होता था। उनके घरों में बहुत कम फर्नीचर होता था। बर्तन लकड़ी के होते थे और पानी रखने के लिए चमड़े की बोतलें काम में लाई जाती थीं। परिवार के सभी लोग पुआल या सूखी घास का बिछौना बनाकर जमीन पर सोते थे, और अधिकतर लोग जाड़े से बचने के लिए पशुओं की खाल ओढ़ते थे।

मैनर के स्वामी का मकान इनसे अच्छा होता था। यह साधारणतया एक गढ़ की भांति पत्थर का बना होता था। इसके चारों ओर पानी से भरी खाई होती थी और एक पुल होता था, जिसे शत्रु के आने के समय खाई पर से हटाया जा सकता था। ऐसे पुल दिल्ली, आगरा और कुछ अन्य स्थानों के किलों में तुम आज भी देख सकते हो। मैनर के भवन में अनेक कमरे होते थे किन्तु उनमें खिड़कियां नहीं होती थीं। मैनर हाउस में कुछ अच्छा फर्नीचर भी होता था, जैसे खाने की मेज, आदि।

युद्ध और वीरता

सामंती युग में मनुष्य घोड़े पर चढ़कर लड़ाइयां लड़ते थे। मनुष्य और घोड़े, दोनों ही एक प्रकार का कवच धारण करते थे। योद्धाओं के पास भारी-भारी ढालें, बर्छियां, तलवारें और लड़ने के लिए कुल्हाड़ियां होती थीं। साधारण पैदल सैनिक धनुषबाण से ही लड़ते थे। प्रायः प्रत्येक मैनर का भवन एक किला होता था, इसलिए इस काल में किलों पर अधिकार करने के अनेक ढंग निकाले गए। खुली युद्ध-भूमि में लड़ने की अपेक्षा घेरा डालने की युद्ध-प्रणाली का विशेष महत्व था।

अभिजात वर्ग का व्यवसाय प्रायः युद्ध करना ही था। सरदारों के लिए विस्तृत आचरण संहिता तैयार कर ली गई थी। राजा ही अभिजात वर्ग के व्यक्ति के पुत्र को 'नाइट' की पदवी से विभूषित कर सकता था। नवयुवक को नाइट बनाने के लिए एक संस्कार किया जाता था। इस संस्कार में नवयुवक इस बात की प्रतिज्ञा करता था कि वह सामत के सब कर्त्तव्यों को निष्ठापूर्वक पूरा करेगा और निर्बल व्यक्तियों की रक्षा करेगा। तब वह अपने नाम के आगे 'सर' शब्द लगाने का अधिकारी हो जाता था। आजकल भी इंग्लैंड में जब शासक किसी को नाइट बना देता है तब वह अपने नाम के आगे 'सर' शब्द लगा सकता है। लॉर्डों की तरह नाइट भी अपने हाथों से काम करने से घृणा करते थे। वे अपना समय युद्ध करने में बिताना अधिक पसंद करते थे।

नाइट बहुधा द्वंद्वयुद्ध लड़ते थे और बहुधा ऐसी प्रतियोगिताओं का आयोजन करते थे जिनमें वे धारहीन शस्त्रों से लड़ते थे। वे स्त्रियों के प्रति बहुत शिष्टता का व्यवहार करते थे और उनका मान रखने के लिए बहुधा युद्ध करते थे। नाइटों की वीरता की अनेक दिलचस्प कहानियां प्रचलित हैं। ये भारतीय इतिहास के राजपूत वीरों की कहानियों के समान ही हैं।

सामंतवाद के द्वारा मध्यकालीन जीवन में व्यवस्था और सुरक्षा स्थापित हो सकी। इसी के कारण सामाजिक और आर्थिक जीवन बाधा-रहित चलता रहा।

सामंतवाद का एक दूसरा पक्ष भी था। सामंतवाद जड़ीभूत (Rigid) वर्ग-प्रणाली पर आधारित था। सामंतवाद के कारण ही इस वर्ग-प्रणाली का विकास हुआ। फलस्वरूप आदमी अपने को दूसरे आदमी से भिन्न समझने लगा। एक वर्ग दूसरे वर्ग से बिल्कुल अलग हो गया। इस वर्ग-प्रणाली के कारण राजनीतिक एकता कायम न हो सकी। अभिजात वर्ग साधारण मनुष्यों को घृणा की दृष्टि से देखता था। उनको विरासत में मिले अधिकार ने एक व्यक्ति के शासन और अत्याचार को जन्म दिया। राजा भी बहुधा लॉर्डों पर नियंत्रण नहीं रख पाते थे, क्योंकि लॉर्ड बहुत शक्तिशाली हो गए थे। और आपस में छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए लड़ते रहते थे।

राजा का आम जनता से कोई संपर्क न था। जनता पूर्णतया लॉर्डों की मर्जी पर छोड़ दी गई थी। लॉर्डों में साधारणतया उत्तरदायित्व की भावना का पूर्ण अभाव था। उन्हें जनता के कल्याण की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं थी। सामंतवाद के कारण आर्थिक जीवन में भी किसी प्रकार की प्रगति नहीं हो सकी। किसान और दस्तकार जिस धन का उत्पादन कठिन परिश्रम से करते थे, सामंती लॉर्ड उसे भोग-विलास के जीवन और लड़ाइयों में व्यर्थ खर्च कर डालते थे। व्यक्तिगत का सर्वथा अभाव था। नए तौर-तरीकों की खोज को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था।

लॉर्ड और चर्च के नेता, दोनों ही अपने लिए नये प्रदेश और समृद्धियां प्राप्त करना चाहते थे इसलिए वे 'पवित्र युद्ध' (Holy wars) या धर्मयुद्ध अथवा जेहाद (crusades) करने के लिए प्रेरित हुए। सातवीं शताब्दी में अरबों ने फिलिस्तीन को जीत लिया था। ईसाई धर्म के पवित्र स्थान इसी क्षेत्र में थे। युद्धों का कथित कारण इस पवित्र प्रदेश को फिर से प्राप्त करना था। मगर इन युद्धों में शामिल होने वाले लॉर्ड बहुधा एक-दूसरे से लड़ते रहे। धर्मयुद्ध अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहे, मगर यूरोपीय जीवन पर उनका कुछ अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा। वे अभिजात लोगों के लिए बहुत खर्चीले पड़े। अरबों के साथ सम्पर्क के फलस्वरूप विलास की वस्तुओं की मांग बढ़ी और पूर्व के देशों के साथ वाणिज्य-व्यापार का विस्तार हुआ। धर्मयुद्धों के कारण चर्च के काफी सम्पत्ति साधन खर्च हो गये और

पोपों (धर्मगुरुओं) ने नए साधन जुटाने के लिए ऐसे तरीके अपनाए जिनको उचित नहीं कहा जा सकता।

अरबों के साथ सम्पर्क के अच्छे परिणाम हुए। अरबों ने उन्हें अपनी सभ्यता की कलाओं और विज्ञान से परिचित कराया। यूरोपवासियों ने कुतुबनुमा (compass) का ज्ञान प्राप्त किया और कागज बनाने की कला सीखी। धर्मयुद्धों के कारण ही अरबी भाषा के बहुत से शब्द अंग्रेजी भाषा में आये जैसे, **लेमन, शुगर, सिरप, सोफा, मंस्लिन, साटिन, बाजार, अलज़ेब्रा, ज़ीरो, साइफर, केमिस्ट्री।**

प्रारंभिक मध्ययुग को आमतौर से अंधकार-युग कहा जाता है। कुछ हद तक वह वस्तुत: अंधकारमय था। जनता का जीवन बड़ा दु:खमय था। बहुत कम लोग शिक्षा प्राप्त कर पाते थे। साधारण मनुष्य पूर्णतया असहाय थे। राजा और बैरन निरंकुश शासक थे और राष्ट्रीय एकता का पूर्ण अभाव था। ये स्थितियां प्राय: सारे यूरोप में एक हजार वर्ष से अधिक तक विद्यमान रहीं।

मध्यकालीन यूरोप में वाणिज्य-व्यापार

सामंतवाद के उदय के साथ-साथ व्यापार और नगरों का पतन भी हुआ। सामंतवाद का आर्थिक आधार था, किसानों की छोटे पैमाने की जोतें। उत्पादन किसानों और लॉर्डों तथा उनके सेवकों के स्थानीय उपभोग के लिए होता था। लोगों की गैर कृषि-वस्तुओं की आवश्यकता जैसे, कपड़ा और कृषि-उपकरणों की आवश्यकता, गाँव में ही या नियमित रूप से लगने वाले मध्यकालीन मेलों में पूरी कर ली जाती थीं। मेलों में कृषि की वस्तुओं का विनिमय गैर कृषि-वस्तुओं के साथ किया जाता था। गैर कृषि-वस्तुओं का उत्पादन सरल औज़ारों और उपकरणों से दस्तकार करते थे। इस अर्थव्यवस्था में नगरों की कोई खास आवश्यकता नहीं थी।

नगर, धीरे-धीरे, विशेषकर ग्यारहवीं शताब्दी से, व्यापार और नगर महत्वपूर्ण होने लगे। पूर्व के देशों के साथ धर्मयुद्धों के कारण बढ़े सम्पर्क ने उनकी भोग-विलास की वस्तुओं के लिए मांग पैदा कर दी। कृषि के विस्तार और कृषि के तरीकों में सुधार के फलस्वरूप अनेक किसान भी अपनी कृषि की वस्तुओं के एक हिस्से का गैर कृषि-वस्तुओं के साथ विनिमय करने में समर्थ हो गये। इन परिवर्तनों ने शिल्पों और व्यापार के विकास को प्रोत्साहित किया तथा नगरों को जन्म दिया।

मध्यकालीन यूरोप के नगर

शिल्पों और व्यापार के केन्द्रों के रूप में नये नगर जन्म लेने लगे। आरंभ में कुछ किसान खेती करने के साथ दस्तकारी में भी लग गये। धीरे-धीरे वे पूर्णकालिक दस्तकार बन गये तथा उन जगहों में बस गये जहां उनके लिए अपनी वस्तुओं का कृषि की वस्तुओं के साथ विनिमय करना आसान हो गया। स्थानीय तौर पर तैयार और सुदूर प्रदेशों से लायी गयी वस्तुओं का व्यापार करने वाले सौदागर भी वहां पर बस गये। आरम्भिक नगर बहुत छोटे थे। वे गाँवों से बड़े नहीं थे परन्तु दस्तकारों की संख्या बढ़ने तथा व्यापार के विस्तार के साथ नगरों का आकार भी बड़ा हो गया। जब पश्चिमी यूरोप का पूर्व के देशों के साथ व्यापार हुआ, तब इटली के नगर अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अन्य सब नगरों की अपेक्षा अच्छी अवस्था में थे। इसी कारण जेनेवा, फ्लोरेंस और वेनिस महान व्यापारिक केंद्र बन गये। इन नगरों में पूर्व के देशों से सूती और रेशमी कपड़े, बहुमूल्य मणियां और मसाले आते थे। ये वस्तुएं वहां से सारे यूरोप में भेजी जाती थीं। अपनी समृद्धि के कारण ये नगर संस्कृति के केंद्र बन गये।

मध्यकाल में यूरोप के प्राय: सभी नगर व्यापार पर निर्भर थे। इसलिए वे सभी समुद्रतट पर या व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे। उदाहरणस्वरूप, इटली में वेनिस और जेनेवा बन्दरगाह थे, जब कि फ्लोरेंस, मिलान और पीसा व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे। रोम इसका अपवाद था। वर्तमान हालैण्ड, बेल्जियम, जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैंड में ऐसे अनेक नगरों का विकास हुआ जो बन्दरगाह या व्यापार-वाणिज्य के केंद्र थे। ये नगर आजकल यूरोप के प्रसिद्ध नगरों में गिने जाते हैं।

उस समय प्राय: सभी नगरों के चारों और दीवारें होती थीं जिससे कि सशस्त्र लुटेरों और शत्रु सामंती लॉर्डों से उनकी रक्षा की जा सके। यही बात मध्यकालीन भारतीय नगरों के बारे में भी सही है। दीवारों से नगरों की रक्षा हो जाती थी, परन्तु गलियां तंग और टेढ़ी होती थीं और बहुधा उनके फर्श कच्चे और गंदे होते थे। स्वच्छता की बहुत कमी थी और मनुष्य बहुधा संक्रामक रोगों के शिकार बन जाते थे। चौदहवीं शताब्दी के मध्य में 'काली मृत्यु' से, जो संभवत: ब्युबॉनिक प्लेग से मिलती-जुलती व्याधि थी, इंग्लैण्ड की लगभग एक-तिहाई जनसंख्या समाप्त हो गयी।

जब व्यापार और वाणिज्य में वृद्धि हुई और दस्तकारी में

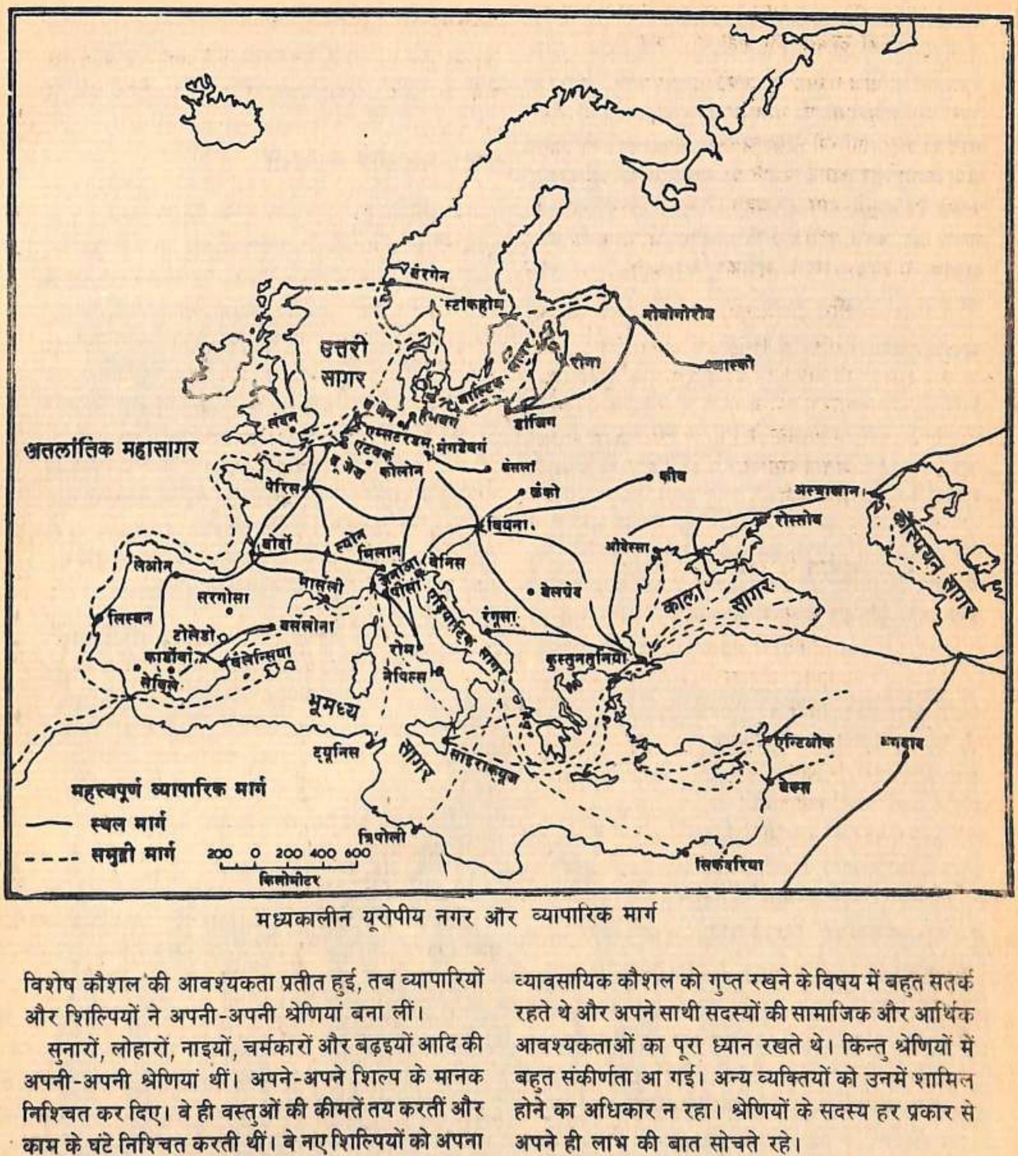

मध्यकालीन यूरोपीय नगर और व्यापारिक मार्ग

विशेष कौशल की आवश्यकता प्रतीत हुई, तब व्यापारियों और शिल्पियों ने अपनी-अपनी श्रेणियां बना लीं।

सुनारों, लोहारों, नाइयों, चर्मकारों और बढ़इयों आदि की अपनी-अपनी श्रेणियां थीं। अपने-अपने शिल्प के मानक निश्चित कर दिए। वे ही वस्तुओं की कीमतें तय करतीं और काम के घंटे निश्चित करती थीं। वे नए शिल्पियों को अपना सदस्य तभी बनाती थीं जब वे पर्याप्त समय तक किसी योग्य शिल्पी से काम सीख चुके होते थे।

श्रेणियां, विशेषकर शिल्पियों की श्रेणियां, मध्यकाल में निश्चित रूप से उपयोगी हुईं। श्रेणियों के सदस्य अपने व्यावसायिक कौशल को गुप्त रखने के विषय में बहुत सतर्क रहते थे और अपने साथी सदस्यों की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं का पूरा ध्यान रखते थे। किन्तु श्रेणियों में बहुत संकीर्णता आ गई। अन्य व्यक्तियों को उनमें शामिल होने का अधिकार न रहा। श्रेणियों के सदस्य हर प्रकार से अपने ही लाभ की बात सोचते रहे।

व्यापार के फिर से बढ़ने के और शहरों के उदय के कुछ महत्वपूर्ण परिणाम हुए। इसके कारण समाज में व्यापारी वर्ग का महत्व बढ़ा और शीघ्र ही न केवल सामाजिक और आर्थिक जीवन में, अपितु राजनीतिक मामलों में भी,

व्यापारी वर्ग का प्रभाव बहुत बढ़ गया।

मध्यकालीन शहरों की एक महत्वपूर्ण विशेषता उनकी स्वतंत्रता थी। ये शहर सब प्रकार के सामंती नियंत्रण से मुक्त थे, इसलिए देश में नगर-निवासियों के आने-जाने पर कोई प्रतिबंध नहीं था। वे अपने बाल-बच्चों का जिस प्रकार चाहें विवाह कर सकते थे और जायदाद की खरीद-बिक्री कर सकते थे। अनेक नगरों को राजाओं से स्वतंत्रता मिली हुई थी। नगरों का इंतजाम करने के लिए उनके निवासी स्वयं अधिकारी चुनते थे। इन परिवर्तनों ने सामंतवादी व्यवस्था को धक्का पहुंचाया।

मध्यकालीन यूरोप में चर्च

मध्यकाल में रोमन कैथोलिक चर्च भी पश्चिमी यूरोप में उतना ही शक्तिशाली था, जितना कि सामंतवाद। चर्च में सबसे ऊंचा स्थान पोप का था। उसे पृथ्वी पर ईसा मसीह का प्रतिनिधि माना जाता था। जब कालांतर में रोम के सम्राटों ने धीरे-धीरे ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया और आगे चलकर बर्बर सरदार भी इस धर्म के अनुयायी हो गए तब, पोप पश्चिमी यूरोप की ईसाई जनता का प्रमुख माना जाने लगा। ईसा की छठी शताब्दी में पोप उसी प्रकार चर्च का अध्यक्ष माना जाने लगा, जैसे कि राजा अपने-अपने देश में माने जाते थे। राजाओं की अपेक्षा पोप अधिक शक्तिशाली होते थे और वे राजाओं को अपना आदेश मानने के लिए बाध्य कर सकते थे।

ईसाई मठ और मठवासी

ईसाई धर्म सिखलाता था कि पृथ्वी पर मानव-जीवन ही अस्तित्व का अंत नहीं है। मनुष्य को इस संसार में सुखों का त्याग करना चाहिए जिससे वह मरने के बाद आध्यात्मिक सुख पा सके। बहुत-से ईसाई संतों ने, जैसे सेंट फ्रांसिस, सेंट बेनेडिक्ट और सेंट ऑगस्टिन ने, पवित्र, प्रलोभनों से रहित और अच्छाई का जीवन बिताने पर बल दिया। इस प्रकार अनेक लोग ईसाई सांसारिक जीवन छोड़कर तप और पुण्य का जीवन बिताने लगे। इनमें से कुछ मठवादी (monks) हो गए और उन्होंने आज्ञाकारिता, निर्धनता और पवित्रता का जीवन बिताने की प्रतिज्ञाएं लीं। कुछ स्त्रियां भी भिक्षुणियां (nuns) बन गईं। वे भिक्षुणी-आश्रम (nunneries) में रहने लगीं। जिन भवनों में भिक्षु रहते थे, वे मठ कहलाते थे। इनके बारे में पढ़कर तुम्हें बौद्ध भिक्षुओं और विहारों की याद आएगी।

चित्र में बोलोना (इटली) में एक अध्यापक को पढ़ाते हुए दिखलाया गया है। यूरोप के सबसे प्राचीन विश्वविद्यालयों में एक विश्वविद्यालय बोलोना में था।

छापाखाने के आविष्कार से पहले हर एक पुस्तक हाथ से लिखी जाती थी। चित्र में एक भिक्षु को एक पांडुलिपि की प्रतिलिपि बनाते हुए दिखाया गया है।

मठों का जीवन पूरी तरह व्यवस्थित था। भिक्षुओं और भिक्षुणियों को अनुशासन के कठोर नियमों का पालन करना पड़ा था। उन्हें विवाह करने और संपत्ति रखने का अधिकार नहीं था। वे या तो कुछ काम करते थे या ईश्वर-आराधना करते रहते थे। यदि वे नियमों का तनिक भी उल्लंघन करते तो उन्हें कठोर दंड दिया जाता था।

सेंट बेनेडिक्ट द्वारा स्थापित किए गए मठों की तरह के मठ शिक्षा के केन्द्र थे और इनमें रहने वाले भिक्षु सुव्यवस्थित जीवन बिताते थे। अनुशासन के सख्त नियमों के द्वारा वे भिक्षु-समूहों को प्रशिक्षित करते थे जो अपने आदर्श तथा प्रवचनों से लोगों का नैतिक जीवन ऊंचा उठाने, जनसाधारण को शिक्षित करने तथा रोगियों की सेवा करने की कोशिश करते थे।

धीरे-धीरे इन मठों में भ्रष्टाचार घुस गया। मठों के पास बहुत-सी भूमि हो गई और उन्होंने अपार धन इकट्ठा कर लिया, जिससे मध्यकाल में चर्च सबसे बड़े जमींदारों में से एक हो गया। अनेक सर्फ मठों के खेतों पर खेती तथा अन्य कार्य करते थे। अब मठवासियों का जीवन सादा न रहा। वे अच्छे खाद्य पदार्थों और पेयों का उपयोग करने लगे। वे भोग-विलास का जीवन बिताते और प्रमाद में पड़े रहते। इस परिस्थिति को देखकर कुछ धार्मिक नेताओं ने सुधार करने के लिए नया धार्मिक संगठन स्थापित किया। इस नए संगठन के भिक्षु हमेशा घूमते रहते थे। इस संगठन के सदस्यों का कोई निश्चित निवास-स्थान नहीं था। वे जन-साधारण के बीच घूमते रहते थे और उन्हीं के दान से अपना जीवन-निर्वाह करते थे। उन्होंने पवित्रता और त्याग के

जीवन का आदर्श जनता के सामने प्रस्तुत किया।

पूर्व मध्यकाल में केवल चर्च ही शिक्षा-प्रसार के माध्यम थे। वे ही जनता को शिक्षा देते थे। प्राचीन कालीन यूनानी और रोमन सभ्यताओं के उत्कर्ष के समय अनेक पाठशालाएं विद्यमान थीं जिनमें माता-पिता बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजते थे। वे पाठशालाएं पूर्व मध्यकाल में खत्म हो चुकी थीं। चर्च ने शिक्षा-प्रसार का जो कार्य किया, वह समुद्र में जल की एक बूंद के समान था।

काफी समय तक यूरोप में केवल भिक्षु और पादरी ही शिक्षित व्यक्ति थे। मठों में चर्च के अधिकारी विद्या का कुछ प्रसार करते रहे। किन्तु जिस विद्या का प्रसार चर्च करता था, उसमें संकीर्णता थी। केवल व्याकरण, तर्कशास्त्र, अंकगणित और धर्मशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा केवल भिक्षु या पादरी बनाने में उपयोगी हो सकती थी। शिक्षा का माध्यम लैटिन भाषा थी, जिसे केवल चर्च के अधिकारी ही पढ़ सकते थे। हर क्षेत्र में अंधविश्वास का बोलबाला था। यदि कोई व्यक्ति तर्क के आधार पर कोई बात कहता तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। विज्ञान की प्रगति पूर्णतया रुक गई थी। सभी स्थानों पर अधिकतर लोग जादू और मिथ्या-विश्वासों में पूर्ण आस्था रखते थे। बहुत से लोग जादूगरनियों में विश्वास रखते थे। जादूगरनियों को दंड देने के लिए जिन्दा जला दिया जाता था।

कुछ समय बाद अनेक स्थानों—जैसे इटली में सैलर्नो और बोलोना, फ्रांस में पेरिस और इंग्लैण्ड में आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज—विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। किन्तु इन विश्वविद्यालयों में भिक्षुओं की प्रधानता थी और इनमें केवल धर्म और दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। प्रायः प्रत्येक स्थान पर इतिहास और विज्ञान की उपेक्षा की जाती थी। पुस्तकों की केवल हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध थीं। ऐसे पुस्तकालयों की संख्या भी बहुत कम थी जहां से विद्यार्थी पुस्तकें लेकर पढ़ सकते। विज्ञान संबंधी प्रयोगों के लिए प्रयोगशालाएं नहीं थीं।

मध्यकालीन यूरोप की वास्तुकला के श्रेष्ठ उदाहरण गिरजाघर हैं। वे रोम के महामंदिर (बसिलिका) के अनुरूप बनाए गए थे, जैसे कि बिजेण्टियम में। इनके बीच में विस्तृत हॉल होते थे, जिनके दोनों ओर स्तंभों की पंक्तियां होती थीं। छत गुंबदाकार और दीवारें ठोस और मोटी बनाई जाती थीं, जिसे कि वे भारी छतों का बोझ संभाल सकें। इसलिए गिरजाघरों के अंदर साधारणतया अंधेरा रहता था। इनकी निर्माण-शैली सादी मगर प्रभावपूर्ण थी।

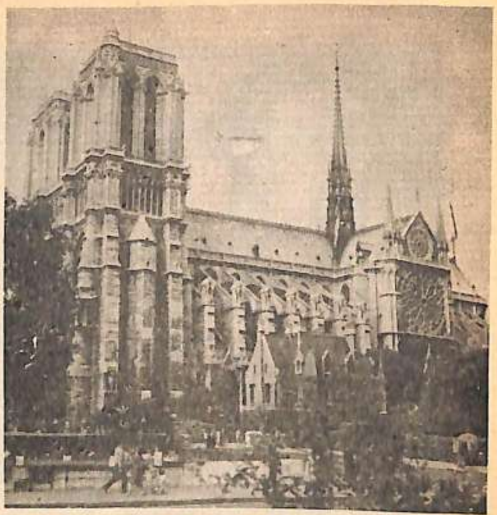

पेरिस स्थित नोत्रे दाम। इस गिरजाघर का निर्माण सन् 1163 और 1270 ई० के मध्य हुआ। गायिक शैली में निर्मित यह गिरजाघर फ्रांस के प्राचीनतम गिरजाघरों में से है।

बारहवीं शताब्दी के आसपास एक नई वास्तु-शैली का विकास फ्रांस में हुआ। इसे गॉथिक शैली कहते हैं। इस शैली के भवनों में नुकीली महराबें होती थीं और दीवारों में खिड़कियां बनाई जाती थीं। खिड़कियों से होकर अधिक प्रकाश इन भवनों में जाने लगा और खिड़कियों में लगे रंगीन शीशों के कारण इन भवनों की सुंदरता काफी बढ़ गई।

अरब सभ्यता

अरब के लोग कई कबीलों में बंटे हुए थे जो मुख्य रूप से पशु-पालन कर अपनी जीविका चलाते थे। विभिन्न कबीले जमीन पर कब्जे के लिए, खासकर चरागाहों के स्वामित्व को लेकर, आपस में लड़ते रहते थे। ईसवी सन् के पहले छह सौ वर्षों के दौरान अन्य देशों के साथ व्यापार काफी महत्वपूर्ण हो गया और अनेक अरबों ने अपने को विदेश व्यापर में लगाया। व्यापार के द्वारा अरब नए विचारों के संपर्क में आए। सातवीं शताब्दी में एक नए धर्म इस्लाम ने अरब में जन्म लिया। इस्लाम ने थोड़े ही समय में, न केवल प्रतिद्वंद्वी कबीलों के बीच एकता कायम की, बल्कि उसके

परिणामस्वरूप एक बड़े साम्राज्य की स्थापना हुई और एक नई सभ्यता का उदय हुआ जो अपने समय की सबसे उत्कृष्ट सभ्यता थी।

इस्लाम का उदय

इस्लाम के पैगंबर मुहम्मद साहब का जन्म 570 ई० में अरब के मक्का नामक स्थान में हुआ था। बाल्यावस्था में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई। उनके चाचा ने उनका पालन-पोषण किया। जब वे बड़े हुए तब उन्होंने एक धनी विधवा स्त्री के यहां नौकरी कर ली। कुछ समय बाद उन्होंने उससे विवाह कर लिया। मुहम्मद साहब के जीवन के आरंभिक 40 वर्षों के बारे में हमें कम जानकारी है। जब वे 40 वर्ष के हुए तो उन्हें 'सत्य के दिव्य दर्शन हुए' और वे पैगंबर बन गए।

उस समय अरब में सब जगह अंधविश्वासों और अज्ञानता का बोलबाला था। मक्का, जहां मुहम्मद साहब का जन्म हुआ था, व्यापार और धर्म का केंद्र था। अरब निवासी वहां बनी एक पवित्र इमारत में लगे आयताकार काले पत्थर की पूजा करते थे, जिसे वे काबा कहते थे। यह काला पत्थर आज भी मक्का में देखा जा सकता है। बहुत से मुसलमान आज भी मक्का की तीर्थयात्रा करने जाते हैं।

दिव्य दर्शनों से मुहम्मद साहब को पूर्ण विश्वास हो गया कि अल्लाह ही एक मात्र ईश्वर है और वे ही ईश्वर के पैगंबर हैं। उन्होंने लोगों के सम्मुख उन सब अलौकिक बातों की चर्चा की, जो उन्होंने उस समय देखी-सुनी थीं जब ईश्वर का देवदूत उनके सामने आया था। उन्होंने मूर्तिपूजा का निषेध किया और इसी कारण बहुत से धनी व्यापारी उनके शत्रु हो गए। अंततोगत्वा स्थिति इतनी खतरनाक हो गई कि उन्हे मक्का छोड़कर मदीना में शरण लेनी पड़ी। मदीने के निवासियों ने मुहम्मद साहब का हार्दिक स्वागत किया। यह घटना सन् 622 ई० की है। इसे 'हिजरा' कहते हैं, जिसका अर्थ है—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। मुस्लिम पंचांग का यह पहला वर्ष माना जाता है।

इस्लाम के अनुसार, प्रत्येक मनुष्य को सर्व शक्तिमान अल्लाह में और ईश्वर के पैगंबर मुहम्मद के शब्दों में आस्था रखनी चाहिए। ईश्वर की इच्छा के सामने मनुष्य की कोई शक्ति नहीं है, अतः मनुष्य का ईश्वर की इच्छा के आगे झुकना ही श्रेयस्कर है। मुसलमान मुहम्मद साहब से पहले हुए पैगंबरों में भी आस्था रखते हैं, किन्तु उनका विश्वास है कि मुहम्मद साहब अंतिम और सबसे महान पैगंबर थे। मुसलमान यहूदियों के पैगंबरों का भी आदर करते हैं, किन्तु वे यह नहीं मानते कि ईसा ईश्वर के पुत्र थे। ईसाई धर्म की तरह इस्लाम भी विश्वास के साथ मृत्यु के बाद के जीवन और क़यामत के दिन (Day of Judgement) की बात करता है। क़यामत के दिन मनुष्यों को इस पृथ्वी पर उनके द्वारा किए गए कर्मों का फल मिलेगा। सारी दुनिया के मुसलमान अपने को भाई-भाई मानते हैं और आपस में समानता का व्यवहार करते हैं।

प्रत्येक मुसलमान को अपना जीवन निम्नलिखित पांच सिद्धांतों के अनुसार चलाना चाहिए :

1. उसे ईश्वर की अखण्डता और मुहम्मद के पैगंबर होने की घोषणा करनी चाहिए—ला-इलाह इल्ल अल्लाहः मुहम्मद-उर-रसूल, उल्लाह—अर्थात्, अल्लाह के अतिरिक्त और कोई ईश्वर नहीं है और मुहम्मद उसका पैगंबर है।
2. उसे हर रोज पांच बार प्रार्थना करनी चाहिए और प्रत्येक शुक्रवार को दोपहर के बाद मस्जिद में नमाज पढ़ना चाहिए।
3. उसे निर्धन व्यक्तियों को यह समझकर भिक्षा देनी चाहिए कि यह भिक्षा वह अल्लाह को अर्पित कर रहा है और यह एक पुण्य कार्य है।
4. इस्लाम के पवित्र महीने रमजान में उसे सूर्योदय से सूर्यास्त का व्रत रखना चाहिए।
5. उसे अपने जीवनकाल में, संभव हो तो, कम से कम एक बार मक्का की तीर्थयात्रा पर जाना चाहिए।

इन पांच सिद्धांतों के अतिरिक्त इस्लाम ने कुछ अन्य धार्मिक कृत्य निर्धारित किए हैं और कुछ प्रथाओं का निषेध किया है। किसी भी मुसलमान को मूर्तिपूजा नहीं करनी चाहिए। किसी भी मुसलमान को सूअर का मांस नहीं खाना चाहिए, क्योंकि सूअर एक गंदा जानवर है। उसे ब्याज पर रुपया उधार नहीं देना चाहिए। विवाह और तलाक के विषय में निर्धारित नियमों का भी उसे पालन करना चाहिए। उदारता और सद्गुणों से पूर्ण जीवन पर बल दिए जाने के कारण इस्लाम संसार का एक महान मानवीय धर्म बन गया। मुसलमानों का पवित्र धर्मग्रंथ कुरान कहता है कि 'युद्धबंदियों को मुक्त करो, या अकाल के दिन में अपने अनाथ रिश्तेदार या जमीन पर पड़े गरीब आदमी को खाना दो।'

मुहम्मद साहब अपने को ईश्वर की संतान नहीं मानते थे। वे धार्मिक नेता ही नहीं बल्कि एक राजनीतिक नेता भी

सोलहवीं शताब्दी में लिखित
कुरान की एक प्रति का पृष्ठ

थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी खलीफा कहलाए। उनके भी अधिकार धार्मिक और राजनीतिक, दोनों प्रकार के थे। मुहम्मद साहब अपने देशवासियों को भली-भांति जानते थे।उनकी सरल शिक्षा का इतना प्रभाव पड़ा कि सारे अरब निवासी एक राजनीतिक संगठन में बध गए जिसके कारण एक ही धर्म के अनुयायी होने के आधार पर उनका एक राष्ट्र बन गया। उनमें महान उत्साह था और बहुत ही थोड़े समय में इस्लाम दूर-दूर तक फैल गया। इस्लाम धर्म में ईश्वर और व्यक्ति के बीच मध्यस्थ का कार्य करने के लिए किसी पुरोहित की ज़रूरत नहीं होती और ईश्वर की पूजा के लिए किसी प्रकार के कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं पड़ती। कोई भी व्यक्ति मक्का की ओर मुख करके किसी भी स्थान पर प्रार्थना कर सकता है।

इस्लाम की धर्म-पुस्तक 'कुरान' है। मुसलमानों का विश्वास है कि इसमें ईश्वर के जो शब्द मुहम्मद को देवदूत जिब्रील द्वारा प्राप्त हुए थे वे ज्यों-के-त्यों लिखे हुए हैं। यह धर्मग्रंथ कई अध्यायों में बंटा हुआ है, जिन्हें 'सुरा' कहते हैं। इसमें अनके गाथाएं और परंपराएं भी संगृहीत हैं, जिनके कारण अरब निवासी मुहम्मद की शिक्षाओं को सरलता से समझ कर उन पर आचरण कर सकें।

मुसलमान कुरान के अतिरिक्त मुहम्मद साहब की जीवनचर्या और उनके उपदेशों से भी शिक्षा लेकर उनका अपने जीवन में आचरण करते हैं। जीवनचर्या का वर्णन 'सुन्नत' में और उपदेशों का संग्रह 'हदीश' में हैं। ये सही आचरण के लिए मानक निर्धारित करते हैं।

अरब साम्राज्य

लगभग संपूर्ण अरब ने नए धर्म को स्वीकार कर लिया था और पैगंबर मुहम्मद की 632 ई० में मृत्यु के पहले सारा

कार्दोवा, स्पेन, स्थित मस्जिद का मेहराबों वाला विशालकाय कक्ष। इस मस्जिद का निर्माण सन् 786 ई० में आरंभ हुआ था।

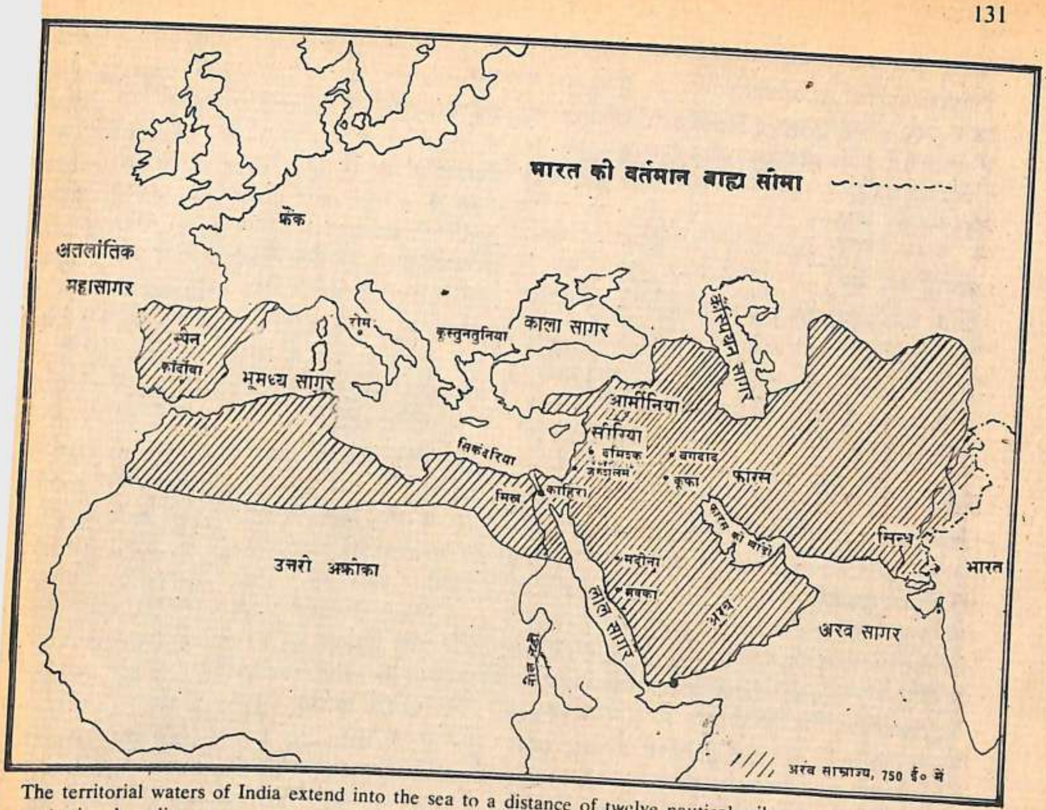

The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.

750 ई० में अरब साम्राज्य

अरब एक राज्य के अंतर्गत आ गया था। अरब से इस्लाम धर्म जल्दी ही दुनिया के अन्य अनेक हिस्सों में फैल गया। करीब 100 वर्षों के अंदर ही खलीफाओं और उनके सेनातियों ने फारस, मिस्र, मध्य एशिया, पश्चिम अफ्रीका और स्पेन को जीत लिया। अरब लोग भारत भी आए। जहां कहीं भी अरब लोग गए उनका धर्म भी उनके साथ गया। आश्चर्यजनक तेजी के साथ उन्होंने जो विजय प्राप्त की उसके कई कारण थे। आंशिक तौर पर वह उनके प्रचार-उत्साह के कारण था, मगर आर्थिक और सामाजिक कारणों ने भी विस्तार को बढ़ावा दिया। अरब लोग एक गरीब देश के रहने वाले थे। वे समृद्ध देश चाहते थे। वे श्रेष्ठ योद्धा थे। पड़ौसी देशों के लोग अत्याचार-पूर्ण शासन से तंग आ गए थे। वे इस्लाम की शिक्षाओं की सरलता के प्रति आकर्षित हुए। उन्होंने आक्रमणकारियों का स्वागत किया। अरब साम्राज्य तब तक के इतिहास में सबसे बड़ा था।

पहले तीन खलीफाओं की राजधानी मदीना थी। इसके पश्चात् राजधानी हटाकर प्राचीन बेबिलोन के निकट कूफा ले जाई गई। सन् 660 ई०. तक, जब उमैय्या वंश का शासन प्रारंभ हुआ, इस साम्राज्य का मुख्य नगर दमिश्क था। 750 ई० के लगभग अब्बासी वंश ने उमैय्या वंश को उखाड़ फेंका। अब्बासी वंश के शासकों ने बगदाद को अपनी राजधानी बनाया। हारुन रशीद, जिसके विषय में अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं, इसी वंश का शासक था। अब्बासी वंश ने लगभग 300 वर्षों तक राज किया। इसके पश्चात् सैल्जुक तुर्कों ने बगदाद पर अधिकार कर लिया और अरब

राज्य समाप्त हो गया। अगले चार सौ वर्षों तक इस्लामी साम्राज्य पर तुर्कों का आधिपत्य रहा। पंद्रहवीं शताब्दी में इन प्रदेशों के अधिकतर भाग पर ऑटोमन तुर्कों का अधिकार हो गया। ऑटोमन तुर्कों ने ही कुस्तुनतुनिया पर अधिकार करके सन् 1453 ई० में बिजेण्टाइन साम्राज्य को समाप्त कर दिया।

अरबों की देन

अरबों को केवल विजेता ही नहीं समझना चाहिए। वस्तुत: उन शताब्दियों में अरब सभ्यता यूरोप की सभ्यता से काफी आगे थी। अपने इतिहास के इस्लाम पूर्व काल में अरब अनपढ़ थे। उन्हें लिखने की कला का ज्ञान नहीं था। कहा जाता है कि इस्लाम के उदय के समय कुरैशी कबीले में ऐसे केवल 17 व्यक्ति ही थे जो लिख सकते थे। इस्लाम द्वारा एकता के सूत्र में आबद्ध किए जाने के बाद अरबों ने ज्ञान की खोज शुरू की। जहां भी उन्हें ज्ञान मिल सकता था वहां से उन्होंने उसे लेने की कोशिश की। पैगंबर के एक निर्देश के अनुसार प्रत्येक मुसलमान का यह कर्त्तव्य है कि वह ज्ञान की खोज करे। एक विशाल साम्राज्य की स्थापना से विभिन्न सभ्यताओं की, विशेष रूप से यूनानी, ईरानी और भारतीय सभ्यताओं की, बौद्धिक और वैज्ञानिक परंपराओं को एक साथ लाने में आसानी हुई। अरबों ने समस्त ज्ञान को अपना लिया और उसे विकसित किया। उनका वैज्ञानिक ज्ञान अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक था। उन्होंने चिकित्साशास्त्र का ज्ञान यूनान और भारत से लिया और इसी कारण उनके चिकित्साशास्त्र को आज भी **यूनानी** कहा जाता है।

अरबों ने कई महान चिकित्सक पैदा किए। अल-राजी नामक अरब वैज्ञानिक ने चेचक का ठीक-ठीक निदान किया। अल-राजी को यूरोप में रहैज़ेस (Rhazes) के नाम से जाना जाता था। इब्न-सिना ने, जो मध्यकालीन यूरोप में ऐविसेन्ना (Avicenna) के नाम से मशहूर था, पता लगाया कि तपेदिक छूत का रोग है। इब्न-सिना ने तंत्रिका-तंत्र (Nervous system) संबंधी अनेक रोगों का वर्णन किया। अरबों ने प्लेग, आंखों के रोगों, छूत की बीमारियों के फैलने आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करने और अस्पतालों के संगठन में बड़ी प्रगति की।

गणित के क्षेत्र में अरबों ने भारतीय अंक-प्रणाली सीखी और उसे दूर-दूर तक फैलाया। इसी कारण ये अंक अब भी पश्चिमी देशों में 'अरबी अंक' कहलाते हैं। अरबों ने बीजगणित, त्रिकोणमिति और रसायन शास्त्र का भी विकास किया। हम उमर खय्याम को एक महान कवि के रूप में जानते हैं, किन्तु मध्यकालीन जनता उन्हें गणितज्ञ के रूप में जानती थी। उन्होंने एक पंचांग बनाया, जो ईसाइयों के उस पंचांग से अधिक शुद्ध है जो आजकल संसार के अनेक देशों में प्रयुक्त किया जाता है। अरब ज्योतिषियों का ख्याल था कि पृथ्वी सम्भवतः अपनी धुरी पर घूमती है और सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। उस समय यूरोपवासी इस विश्वास पर जमे रहे कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केंद्र है। अरब निवासियों ने रसायन शास्त्र में अनेक प्रयोग किए। इनसे अनेक नए मिश्रणों का, जैसे सोडियम कार्बोनेट, सिल्वर नाइट्रेट और शोरे तथा गंधक के तेजाबों का पता लगा।

दर्शन शास्त्र में भी अरबों की उपलब्धियां महत्वपूर्ण थीं। यूनान का ज्ञान और बौद्धिक परंपराएं सीरिया और फारस के जरिए अरबों को मिलीं। इब्न-सिना को यूरोप में एक दार्शनिक के रूप में जाना जाता था। अबू अल-वलीद मुहम्मद इब्न-रुश्त, जिन्हें यूरोपवासी ऐवेरोंज (Averroes) के नाम से जानते थे, इस्लामी संसार और यूरोप, दोनों में प्रसिद्ध थे। दरअसल अरब सभ्यता प्राचीन सभ्यताओं और आधुनिक संसार के बीच की कड़ी बन गई।

मध्यकालीन इस्लामी साहित्य को मुख्य प्रेरणा ईरान (फारस) से मिली। इस काल की कुछ प्रसिद्ध रचनाएं हैं—उमर खय्याम की 'रुबाइयां', फिरदौसी का 'शाहनामा' और एक हज़ार एक कहानियों का संग्रह 'अलिफलैला'; जिस की कहानियों से तत्कालीन संस्कृति और समाज के विषय में काफी जानकारी मिलती है।

अरबी कला पर बिजेण्टाइन और ईरान की कला का प्रभाव पड़ा, किन्तु अरब निवासियों ने अलंकारण के मौलिक नमूने निकाल लिए। उनके भवनों पर बल्बों-जैसे गुंबद, छोटी मीनारें, घोड़ों के खुरों के आकार के महराब और मरोड़दार स्तंभ होते थे। अरब वास्तुकला की विशेषताएं तत्कालीन मस्जिदों, पुस्तकालयों, महलों, चिकित्सालयों और विद्यालयों में देखी जा सकती हैं। अरबों ने लिखने की एक अलंकृत शैली का भी आविष्कार किया जिसे **खुशखती** (Calligraphy) कहते हैं। इससे उन्होंने पुस्तक सजाने के कार्य को भी कला के रूप में विकसित किया।

अरब के गलीचे, चमड़े का काम, सुंदर तलवारें, रेशम, पच्चीकारी का काम, धातु की वस्तुएं और मीना (एनेमिल)

इब्नसिना की चिकित्सा विज्ञान पर लिखी गई पुस्तक के चौदहवीं शताब्दी में किए हुए अनुवाद का एक पृष्ठ। इस पुस्तक के चित्र इटली के एक कलाकार ने बनाए थे। इस चित्र में चिकित्सा और शल्यक्रिया का चित्रण है।

किए हुए शीशे के बर्तन दूसरे देशों में बहुत पसंद किए जाते थे। अरब लोग कुशल व्यापारी थे और बिक्री की अपनी वस्तुएं दूर-दूर तक ले जाते थे। उनके काफिले भारत और चीन तक आते थे। उनके जहाज फारस की खाड़ी और हिन्द महासागर तक जाते थे। इस काल के अरब लोग सबसे कुशल नाविक और अन्वेषक थे।

अरब समाज

अरब साम्राज्य में खलीफा सर्वशक्तिमान धार्मिक नेता था और उसे उच्चतम राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। अभिजात वर्ग की विभिन्न श्रेणियां खलीफा के नीचे थीं। उनके नीचे विद्वान, लेखक, व्यापारी और व्यावसायिक व्यक्ति (जैसे, हकीम, काजी और अध्यापक) थे। निम्न वर्ग में किसान और दस्तकार शामिल थे।

दासों की संख्या बहुत अधिक थी। वे खुले बाजार में खरीदे-बेचे जाते थे। समाज में धनी व्यक्ति का धन और महत्व उसके दासों की संख्या से आंका जाता था जो उसकी सेवा करते थे। स्त्रियां घरों के अंदर ही रहती थीं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें पढ़ना-लिखना नहीं सिखलाया जाता था या समाज में उनका नीचा स्थान था।

मध्ययुगीन भारत

राजनीतिक घटना-क्रम

जब गुप्त साम्राज्य कमजोर हो गया तो उत्तर भारत के अनेक छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ। वे आपस में लड़ते रहे। उनमें से कुछ राज्य थोड़े समय के लिए काफी शक्तिशाली भी बने, मगर उनमें से कोई भी अपनी प्रभुसत्ता कायम नहीं कर पाया। आठवीं से दसवीं शताब्दी तक उत्तर भारत और दक्कन में तीन प्रमुख राजवंशों ने शासन किया। ये राजवंश थे – पाल, प्रतीहार और राष्ट्रकूट। इनमें राष्ट्रकूटों का राज सबसे अधिक शक्तिशाली था। उत्तर भारत में कुछ राजपूत राज्यों का भी उदय हुआ, विशेषकर प्रतीहारों की अवनति के बाद। ये राज्य एक-दूसरे के साथ लगातार लड़ाइयों में उलझे रहे। परंतु इनमें से अजमेर में चौहानों, कन्नौज के गाहड़वालों और मालवा के परमारों ने अपने शक्तिशाली राज्य स्थापित किए थे।

गुप्त साम्राज्य के बाद दक्षिण भारत में चोलों के सबसे शक्तिशाली राज्य का उदय हुआ। चोल राजाओं ने पल्लवों को कुचल डाला। पांड्य और चेर शासकों को हराने के बाद चोलों ने लगभग समूचे भारतीय प्रायद्वीप पर दसवीं शताब्दी के उत्तर काल से बारहवीं शताब्दी तक शासन किया। चोलों की सेनाएं उड़ीसा को पार करके बंगाल पहुंची जहां उन्होंने स्थानीय शासकों को हराया। चोलों की नौसेना बहुत शक्तिशाली थी। उन्होंने श्रीलंका के उत्तरी भाग को जीत कर वहां 50 साल तक शासन किया। उन्होंने मालदीव को भी जीता। उस समय मलेशिया और इंडोनेशिया में शैलेंद्र राजवंश का शासन था। चोलों ने शैलेन्द्र साम्राज्य के खिलाफ नौसेना अभियान भेज कर उसके कुछ क्षेत्रों को जीत लिया। तेरहवीं शताब्दी में चोल शक्ति का पतन हुआ तो दक्कन और दक्षिण भारत में कई राज्यों का उदय हुआ।

तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में तुर्कों ने अपने सामाज्य–दिल्ली सल्तनत – की स्थापना की। दिल्ली सल्तनत करीब 200 साल कायम रही। चौदहवीं शताब्दी में खिलजी और तुगलक राजवंशों के शासन के दौरान लगभग पूरा उत्तर भारत एक राज्य के अंतर्गत था। दिल्ली के सुलतानों ने दक्कन और दक्षिण भारत के कुछ भागों पर भी अधिकार कर लिया था। इस काल में मंगोलों ने एशिया और यूरोप के विशाल भूभागों को रौंद डाला और चीन पर अपना शासन कायम किया। कुछ समय तक भारत पर भी मंगोलों के आक्रमण का खतरा बना रहा।

चौदहवीं शताब्दी के मध्यकाल से आगे के करीब 200 साल तक दक्कन और दक्षिण भारत के राजनीतिक इतिहास में बहामनी और विजयनगर राज्यों का बोलबाला रहा। दिल्ली सल्तनत के पतन के बाद उत्तर भारत में बड़ी संख्या में छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ था। देश में हालांकि राजनीतिक एकता का अभाव था, मगर सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से इस काल का बड़ा महत्व है।

सोलहवीं शताब्दी के मध्यकाल से पुनः एक बार एक अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना की शुरूआत हुई। यह शुरूआत अकबर के शासनकाल में हुई। अधिकांश उत्तर भारत और दक्षिण भारत के कई बड़े भाग मुगल साम्राज्य के अंतर्गत आ गए। औरंगजेब के शासनकाल में, सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, मुगल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया। उस समय लगभग समूचा देश एक शासन के अंतर्गत था। मगर औरंगजेब के ही शासनकाल में मुगल साम्राज्य का विघटन भी शुरू हुआ। अठारहवीं शताब्दी के आरंभिक सालों तक देश पुनः कई

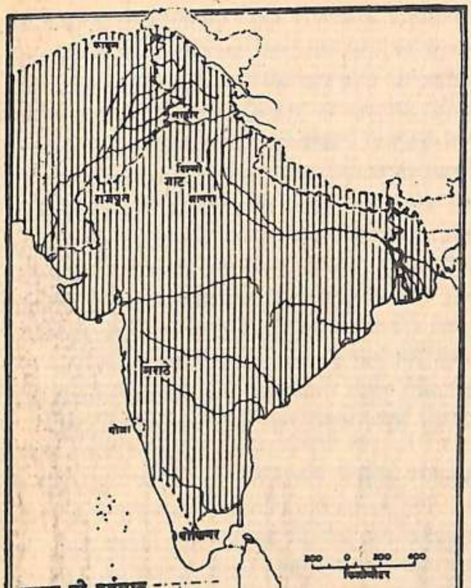

© Government of India copyright, 19..
Based upon Survey of India map with the permission
of the Surveyor General of India.
The territorial waters of India extend into the sea to
a distance of twelve nautical miles measured from
the appropriate base line.

1700 ई० के लगभग का मुगल साम्राज्य

छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त हो गया। मुग़ल साम्राज्य के पतन के काल को आमतौर पर भारतीय इतिहास के मध्ययुग की समाप्ति का काल माना जाता है। उस समय तक भारत में नए घटकों का उदय हो चुका था। ये नए घटक थे – यूरोप की व्यापारी कंपनियां। इनमें से एक – इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कंपनी – अठारहवीं शताब्दी के लगभग मध्यकाल तक सर्वशक्तिमान बनी रही और अगले सौ वर्षों में उसने भारत में अपना शासन कायम किया।

सामाजिक और आर्थिक जीवन

मध्ययुगीन भारत की अर्थ-व्यवस्था, अन्य मध्ययुगीन समाजों की अर्थ-व्यवस्था की तरह कृषि पर आधारित थी। किसानों की पैदावार हर छोटे-बड़े राज्य की आय का प्रमुख स्रोत थी। किसानों से वसूला जाने वाला राजस्व, यानी किसानों की पैदावार में राज्य का हिस्सा, कभी-कभी 50 प्रतिशत तक होता था। यह राजस्व राज्य तथा किसान के बीच के विभिन्न मध्यस्थों को मिलता था। भू-राजस्व में हिस्सा बांटने वालों का एक अधिक्रम था। इसमें वे राजा या राय थे जिनके कुछ अधिकार बरकरार थे, बावजूद इसके कि उनके इलाके बड़े राज्यों का अंग बन गये थे। इस अधिक्रम में वे जमींदार और ग्राम-प्रमुख थे जिनके पास अपनी जमीन थी और जिन्हें राज्य की ओर से भू-राजस्व वसूल करने का भी काम सौंपा गया था। इनके अलावा और भी कई ऐसे मध्यस्थ थे जिन्हें शासक की ओर से जमीन दान में मिली हुई थी। मध्यकाल की अधिकतर अवधि में राज्य के उच्च पदाधिकारियों और सरदारों को नकद में वेतन नहीं मिलता था। उन्हें जागीरें दी जाती थीं, यानी इतनी जमीन दी जाती कि इससे मिलने वाला राजस्व उनके वेतन के बराबर होता। ये सारे मध्यस्थ-समुदाय स्वयं खेती नहीं करते थे। इनमें से कुछ बड़ा ऐशो-आराम का जीवन गुजारते थे।

मध्ययुगीन भारत में, आरंभिक दौर की अवनति के बाद, शिल्प-दस्तकारी और व्यापार-वाणिज्य का पुनरुत्थान हुआ। देश के अनेक शहर व्यापार के प्रमुख केंद्र बन गए। ऐसे कुछ शहर थे – दिल्ली, आगरा, मुलतान, लाहौर, अहमदाबाद, ढाका, सूरत, खंबात और बुरहानपुर। उस समय के यूरोपीय यात्रियों ने इन नगरों की बड़ी स्तुति की है। इनमें से कुछ शहर तत्कालीन यूरोप के सबसे बड़े शहरों से भी बड़े थे। भारतीय वस्तुओं की विदेशों में भी बड़ी मांग थी। निर्यात की मुख्य वस्तुएं थीं – सूती ऊनी व रेशमी कपड़े, नील और शोरा। भारतीय वस्तुओं के व्यापार को नियंत्रित करने वाले भारतीय व्यापारी बड़े समृद्ध थे। बाद में यूरोप की व्यापारी कंपनियों ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने भारत के विदेश व्यापार पर कब्जा किया और देश के राजनीतिक मामलों में भी हस्तक्षेप किया। राज्य, विशेषकर सुलतानों और मुगल सम्राटों के समय के राज्य, शिल्पों को बढ़ावा देते थे। राज्य के कारखानों में काम करने वाले हजारों शिल्पी और दस्तकार राज-परिवार तथा सामंत-वर्ग के लिए वस्तुएं तैयार करते थे। मगर दस्तकारों और शिल्पकारों की दशा दयनीय थी।

भारतीय समाज में दासों अथवा गुलामों की तादाद काफी अधिक थी। वे या तो युद्धबंदी होते थे या भारत और विदेश के दास-बाजारों में खरीदे जाते थे। अधिकांश गुलामों से घरेलू काम कराए जाते थे। कुछ गुलाम कुशल शिल्पी होते

थे। गुलाम, शासकों और सामंतों के निजी अंगरक्षक भी होते थे। कुछ गुलाम उच्च सैनिक अधिकारी भी बने। तुमने पहले पढ़ा होगा कि दिल्ली सल्तनत के कुछ सुलतान पहले गुलाम थे और दक्कन तथा दक्षिण भारत पर हमला करने वाली अलाउद्दीन खिलजी की फौजों का नेतृत्व एक गुलाम ने किया था। मगर ऐसे गुलाम बहुत कम हुए और उनकी स्थिति उन बहुसंख्यक गुलामों से काफी भिन्न थी जो कारीगरों या घरेलू नौकरों के रूप में काम करते थे।

जाति-भेद, जिसके बारे में तुम पहले पढ़ चुके हो, मध्ययुग में कुछ मामलों में अधिक कठोर हो गया। तथाकथित नीची जातियाँ, जाति-प्रथा द्वारा उन पर लगाए गए प्रतिबंधों के कारण कष्ट भोगती रहीं। पेशों के आधार पर जातियों की संख्या में खूब वृद्धि हुई। इस काल में नई जातियों का भी उदय हुआ। प्राचीन युग की अंतिम शताब्दियों में भारत में आकर बसे हुए विदेशियों के हिन्दू समाज में घुल-मिल जाने के परिणामस्वरूप इन नई जातियों का उदय हुआ था। इस काल में एक महत्वपूर्ण नई जाति के रूप में राजपूतों का उदय हुआ। हिन्दु धर्म-सुधारकों ने जाति-प्रथा के उत्पीड़क स्वरूप पर प्रहार किया। इस काल के कई संतकवि तथाकथित निम्न जाति के थे। इस काल में स्त्रियों की स्थिति में और भी गिरावट आई। कन्याओं के विवाह की उम्र कम करने के प्रयास हुए। सती-प्रथा का रिवाज था। राजाओं की कई पत्नियां होती थीं। राजा के मरने पर कभी-कभी उसकी सभी पत्नियां उसके शव के साथ सती हो जाती थीं। कुछ शासकों ने इस अमानवीय प्रथा को रोकने के प्रयास किए, मगर दूसरों ने इसे जारी रखा। तथाकथित ऊंची जातियों में स्त्रियों को एकदम अलग-थलग रखने और परदे की प्रथा थी।

तंजावूर का वृहदेश्वर मंदिर

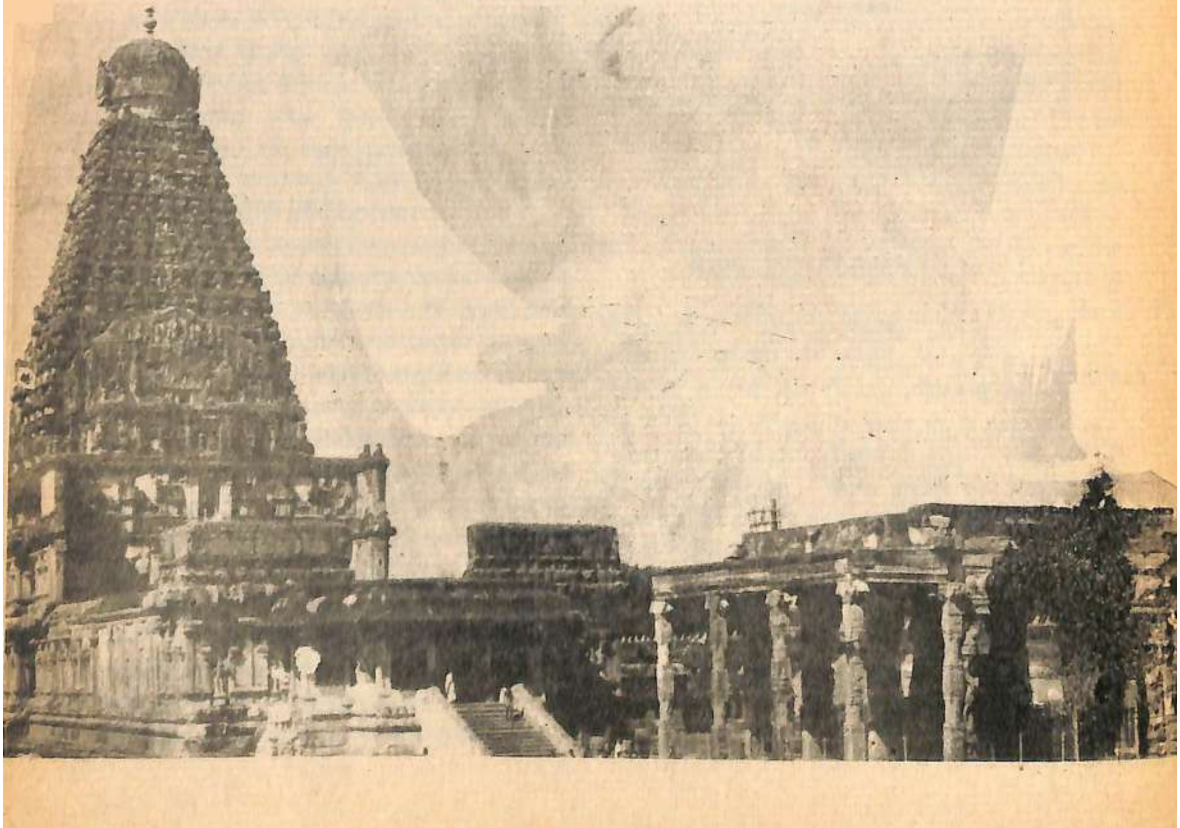

मुसलमानों में भी एक प्रकार की जाति-प्रथा अस्तित्व में आई। भारत के कुछ मुसलमान मध्य एशिया, ईरान और अफगानिस्तान से आए थे। उन्होंने अपने अलग-अलग समूह बना लिए। वे उन लोगों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे जो तथाकथित निम्न जातियों से इस्लाम में दीक्षित हुए थे। इसके अलावा, हिंदुओं की तरह मुसलमानों के विभिन्न समूहों में भी बड़ी आर्थिक विषमताएं थीं।

सांस्कृतिक जीवन

इस युग की आरंभिक शताब्दियों में बौद्ध धर्म अपनी जन्मभूमि से लुप्तप्राय हो गया। बौद्ध धर्म की कई मान्यताएं हिंदू धर्म में आत्मसात कर ली गईं। जैन धर्म की भी अवनति हुई, यद्यपि देश के दक्षिणी और पश्चिमी भागों में कुछ समय तक इसका महत्व कायम रहा। इस काल के एक प्रमुख दार्शनिक शंकराचार्य थे। उन्होंने सारे देश में वेदांत दर्शन का प्रचार किया। शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। हिन्दू धर्म की मुख्य विशेषता थी विष्णु और शिव की पूजा का बढ़ता महत्व। बाद में काली, दुर्गा और अन्य देवियों के रूप में शक्ति की पूजा भी लोकप्रिय हुई। दक्षिण भारत के क्षेत्रों में भक्ति को लोकप्रिय बनाने में आलवार और नयनार संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बाद की शताब्दियों में सारे देश में भक्ति का प्रसार हुआ।

चोल काल के नटराज की कांसे की मूर्ति

कोणार्क के सूर्य मंदिर का एक दृश्य

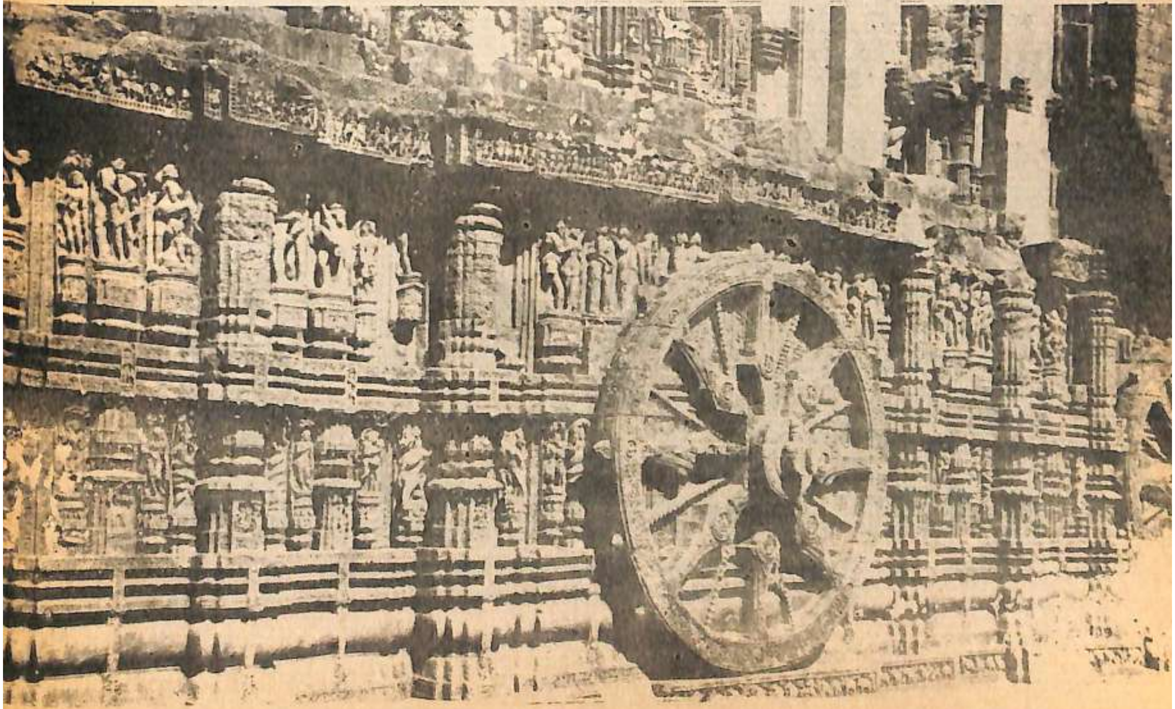

तेरहवीं शताब्दी के वेलूर में स्थित होयसल मंदिर की एक मूर्ति

इस काल की एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना थी — भारत में इस्लाम का आगमन। भारत के साथ इस्लाम का प्रथम सम्पर्क, अरबिया में इसके उदय के तुरन्त बाद, अरब व्यापारियों के जरिए हुआ था। बाद में, जब इस्लाम में दीक्षित हुए तुर्कों ने भारत के एक बड़े भूभाग पर अपना शासन कायम किया, तब यह भारत के अनेक क्षेत्रों में फैल गया। कालांतर में इस्लाम भारत का दूसरा सबसे लोकप्रिय धर्म बन गया।

तेरहवीं शताब्दी से आगे भारत के सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक आंदोलन थे — भक्ति और सूफी आन्दोलन। भक्ति हिंदू संतों का आन्दोलन था और सूफी मुसलमान संतों का, मगर दोनों में कई समानताएं थीं। दोनों ही धार्मिक रूढ़िवाद के विरोधी थे। दोनों ने ही प्रेम, ईश्वर-भक्ति और मानव-बंधुत्व पर बल दिया। दोनों ने ही एकता के लिए प्रयास किए। दोनों ने जाति-प्रथा और कर्मकाण्ड पर प्रहार किया और, जैसा कि पहले बताया गया है, अनेक भक्ति-संत तथाकथित निम्न जातियों में पैदा हुए थे। सभी बिरादरियों के लोगों को एक-दूसरे के नजदीक लाने में इन आन्दोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस काल में एक नए सिक्ख धर्म का उदय हुआ। हिंदू धर्म और इस्लाम की कई मान्यताओं के समन्वय से सिक्ख धर्म का उदय हुआ था। सिक्खों के धर्मग्रंथ आदि ग्रंथ में भक्ति और सूफी संतों की रचनाएं संकलित हैं।

सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक के आरंभिक मध्यकाल की कला और वास्तुशिल्प के क्षेत्र की उपलब्धियां बड़े महत्व की हैं। देश के विभिन्न भागों में विशिष्ट वास्तु-शैली वाले अनेकानेक मंदिरों का निर्माण हुआ। इन मंदिरों को मूर्तिशिल्पों से सजाया गया था। मूर्तियों का निर्माण इस काल की एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इनमें चोलकाल की कांस्य-मूर्तियों का विशेष महत्व है। इसी काल में भारत की अधिकांश आधुनिक भाषाओं का उदय हुआ।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ भारत में सांस्कृतिक विकास के एक नए दौर की शुरूआत हुई। तुर्क लोग अपने साथ अरबिया, मध्य एशिया और ईरान की सांस्कृतिक परंपराएं लाए थे। इन परंपराओं के साथ भारत की पुरानी परंपरा का सम्मिश्रण होने से कला, स्थापत्य, संगीत और साहित्य की नई शैलियों का उदय हुआ। देश में एक मिली-जुली संस्कृति अस्तित्व में आने लगी जो सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में मुगल काल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची। इस काल में भारतीय स्थापत्य के कुछ अनुपम स्मारकों का निर्माण हुआ। इस काल में भारत की आधुनिक भाषाओं और उनके साहित्य का भी विकास हुआ। संस्कृत के अलावा फारसी देश के अनेक भागों में प्रशासन और अध्ययन की भाषा बनी। एक अन्य भाषा, अरबी, इस्लाम धर्म के अध्ययन की भाषा थी। उत्तर भारत और दक्कन के शहरी केंद्रों में एक नई भाषा उर्दू का विकास हुआ। संगीत के क्षेत्र में नए वाद्ययंत्रों और नए रागों का प्रचलन हुआ। मुगल काल में चित्रकला की एक विशिष्ट शैली ने जन्म लिया जिसने बाद में भारतीय चित्रकला की कई शैलियों को प्रभावित किया। विभिन्न भाषाओं में भक्ति साहित्य के अलावा साहित्य की कई नई शैलियों का विकास हुआ। इस काल में बड़ी संख्या में ऐतिहासिक कृतियां भी लिखी गईं।

भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में कुछ कमज़ोरियां थीं जिनके कारण भारत बाद में दुनिया के कुछ अन्य भागों से पीछे रह गया। तुम अगले अध्याय में पढ़ोगे कि ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी से यूरोप में कुछ ऐसे परिवर्तन शुरू हुए जिनके कारण उस समय से विश्व-इतिहास में आधुनिक काल का आरंभ माना जाता है। मगर भारत में उस तरह के परिवर्तन नहीं हुए। आरंभिक मध्यकाल में भारतीय समाज की सबसे स्पष्ट कमजोरी थी शेष दुनिया से इसका अलगाव। भारत के बाहर की दुनिया में हो रहे परिवर्तनों से भारतीय लोग बेखबर रहे। समुद्र-पार की

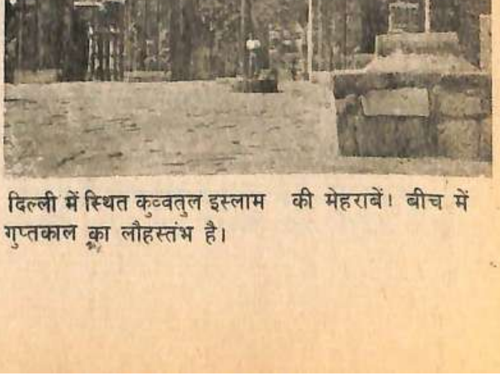

दिल्ली में स्थित कुव्वतुल इस्लाम की मेहराबें। बीच में गुप्तकाल का लौहस्तंभ है।

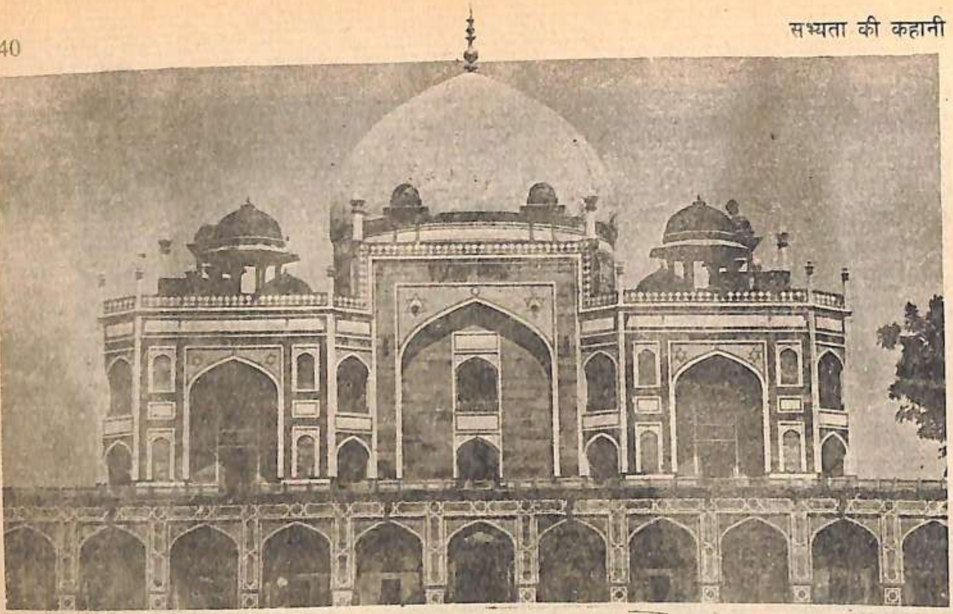

दिल्ली में स्थित हुमायूं का मकबरा

यात्रा करना पाप समझा जाने लगा। ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में भारत की यात्रा पर आए मध्य एशिया के महापण्डित अल्बेरूनी ने भारत से संबंधित अपने ग्रंथ में भारतीय पण्डितों के दृष्टिकोण के बारे में लिखा है -- "वे दंभी, मूर्ख, खोखले, स्वार्थी और जड़मति हैं। अपने ज्ञान को व्यक्त करने के मामले में वे स्वभाव से ही कंजूस हैं। वे अपने ज्ञान को अपने ही देश के अन्य जाति के लोगों से, और उससे भी बढ़ कर विदेशी से, छिपाए रखने की हर संभव कोशिश करते हैं। उनका विश्वास है कि उनके अलावा अन्य किसी समाज के लोगों को शास्त्रों का ज्ञान नहीं है.....। यदि वे दूसरे देशों की यात्राएं करें और लोगों से मिलें तो उनके विचार बदल जाएंगे। उनके पूर्वज आज की पीढ़ी के लोगों की तरह संकीर्ण दिमाग के नहीं थे।"

यद्यपि दिल्ली सल्तनत और मुग़ल साम्राज्य के समय में यह अलगाव खत्म हो गया था, मगर पुराने ज्ञान को ही ज्यादा महत्व दिया जाता रहा। उदाहरण के लिए, दर्शन के क्षेत्र में नया चिंतन नहीं के बराबर हुआ। पण्डितों ने केवल टीकाएं या भाष्य लिखने का काम किया। विज्ञान और तकनीकों की भी उपेक्षा हुई। सोलहवीं शताब्दी से यूरोप में पहले विज्ञान के क्षेत्र में और बाद में टेक्नालॉजी के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। भारतीय शासक और पण्डित इन परिवर्तनों से अनभिज्ञ रहे।

मध्ययुग में चीन और जापान

राजनीतिक घटना-क्रम

ईसा की सातवीं शताब्दी के आरंभ से चीन पर ताङ राजवंश का शासन रहा। इस राजवंश ने चीन को कुशल प्रशासन दिया, राज्यसेवा के लिए पुनः प्रतियोगिता-परीक्षाओं की शुरूआत की, धर्म के मामले में उदार नीति अपनाई और वाणिज्य-व्यापार को उन्नत बनाया। ताङ राजवंश के शासन (618-909 ई०) के बाद करीब 300 साल तक सुङ राजवंश ने शासन किया। उसके बाद करीब 100 साल तक चीन पर मंगोलों ने शासन किया। उस समय एशिया और यूरोप के अनेक भागों पर मंगोलों की धाक जम गई थी। उनके शासन काल में चीन में विज्ञान और संस्कृति का विकास जारी रहा।

मंगोलों के शासन के बाद चीन में लगभग 300 वर्षों तक मिङ वंश के राजाओं ने राज किया। सन् 1655 ई० में मंचू जाति के लोगों ने चीन पर अधिकार कर लिया। इस जाति के राजा सन् 1911 ई० तक चीन पर शासन करते रहे। मध्यकालीन चीन के राजनीतिक इतिहास का इतना महत्व

बीजिंग में स्थित चीन के मांचू सम्राटों का ग्रीष्म महल

नहीं है, जितना कि उसकी संस्कृति का तथा उपलब्धियों का है। वस्तुतः छठी शताब्दी से, जबकि चीन पर साम्राज्यवादी अधिपत्य कामय हुआ, उन्नीसवीं शताब्दी तक के लंबे समय के दौरान चीन की सर्वतोमुखी उन्नति प्रायः लगातार होती रही।

कृषि, शिल्प, व्यापार और वाणिज्य

जनता मुख्य रूप से खेती पर निर्भर थी। लोग अधिकतर चावल, ज्वार, बाजरा, चाय और गन्ने की खेती करते थे। रेशम का उत्पादन बढ़ा। राजाओं का ध्यान सिंचाई के साधनों को विकसित करने पर रहता था। बहुत सी नहरों और बांधों का निर्माण हुआ। रहट का आविष्कार होने पर उन खेतों में भी पानी पहुंचाया जा सका जिनका धरातल नहरों के धरातल से ऊंचा था।

हानवंश के राज्यकाल में भी चीन के विदेशी व्यापार का पर्याप्त महत्व था। इस काल में पहले की अपेक्षा उसकी अधिक उन्नति हुई। चीनी वस्तुओं–विशेष रूप से रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तनों और कागज – की मांग देश में थी। चीनी मिट्टी के बर्तन चीन की वस्तुओं में विशेष स्थान रखते थे। वे अपनी उत्तमता और कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध थे। चीन का व्यापार वियतनाम, हिन्देशिया, भारत, मध्य एशिया, ईरान, बिजेण्टाइन साम्राज्य और अन्य बहुत से देशों के साथ होता था। जिस मार्ग से काफिले मध्य एशिया, ईरान और बिजेण्टाइन साम्राज्य तक जाते थे, वह बड़ा रेशम-मार्ग कहलाता था। चीन के व्यापारिक नगर या तो समुद्र-तट पर स्थित थे या व्यापारिक मार्गों पर।

चीन मसाले, चंदन की लकड़ी, हाथी-दांत और बारीक कपड़े का आयात बड़ी मात्रा में करता था। देश का धन विदेश न जाए इसलिए सुङ शासकों ने कागज के नोट चलाए। वास्तविक मुद्रा के स्थान पर कागज के नोटों का

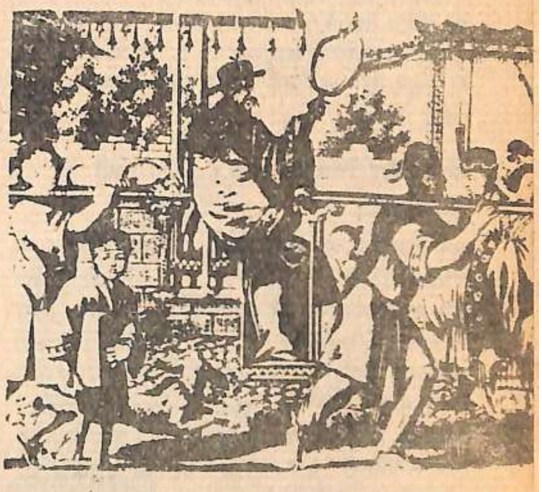

चित्र में चीन के उच्च अधिकारियों के रहने के रंग-ढंग को दिखाया गया है।

प्रचलन आजकल कोई आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु जब चीनियों ने कागज के नोटों का प्रचलन शुरू किया तब किसी भी देश में उनका प्रचलन नहीं था। पंद्रहवीं शताब्दी के पश्चात् मिङ वंश के शासकों ने विदेश व्यापार को प्रोत्साहित नहीं किया। उन्होंने अपने देशवासियों को स्वतंत्र रूप से विदेश जाने की अनुमति नहीं दी। विदेशी व्यापार कैन्टन बंदरगाह से ही हो सकता था। विदेशों से संपर्क पर प्रतिबंध लग जाने से चीन की उन्नति में बाधा पड़ी।

मध्ययुगीन चीन में साधारण व्यक्तियों का जीवन

आमतौर पर बहुत कठिनाई का था। किसान अपना सारा समय खेतों पर काम करने में बिताते थे। उनकी उपज का बड़ा भाग कर वसूल करने वाले अधिकारी ले लेते थे। उन्हें अपना निर्वाह करने के लिए मजदूरी करनी पड़ती थी। वे किले और महलों के निर्माण में मजदूर के रूप में लगाए जाते थे। मध्ययुग में बड़ी-बड़ी जमीदारियां बड़े सरकारी या सैनिक अधिकारियों के हाथों में आ गई। वे किसानों की उपज का दो-तिहाई भाग तक ले लेते थे। यदि फसलें खराब हो जातीं तो हजारों किसान भूखों मर जाते थे। कभी-कभी किसान उनके क्रूर व्यवहार के खिलाफ विद्रोह कर देते थे।

चीन के धनी निवासी शानदार कोठियों में भोग-विलास का जीवन बिताते थे। वे काम करने से घृणा करते थे। उनको कुछ विचित्र आदतें पड़ गई थी, जैसे कि वे उंगलियों के नाखून बहुत बढ़ा लेते थे और उन पर चांदी का पत्तर मढ़वा लेते थे।

कला और विज्ञान के क्षेत्र में चीनियों की उपलब्धियां

जन-साधारण का जीवन बहुत दुःखमय होने पर भी मध्यकाल में चीन ने मानव उद्यम के अनेक क्षेत्रों में उन्नति की। अत्यंत प्राचीन काल से चीन के निवासी चुंबक पत्थर के चुंबकीय गुण को जानते थे। मध्ययुग में उन्होंने कुतुबनुमा बनाने में इस ज्ञान का प्रयोग किया। इसमें पानी पर तैरती हुई मछली के आकार की लोहे की कीली लगाई जाती थी, जिसमें चुंबकीय आकर्षण शक्ति होती थी। इसी काल में चीनियों ने बारूद का आविष्कार किया। यह उनकी दूसरी महान् उपलब्धि थी। वे बारुद को 'अग्नि-औषधि' कहते थे और इसका प्रयोग आतिशबाजी में करते थे। चीन में बारुद का आविष्कार दसवीं शती में हुआ। पश्चिमी संसार के निवासियों को बारूद के आविष्कार का ज्ञान इसके लगभग 400 वर्ष बाद हुआ।

चीनियों ने ज्योतिष-यंत्रों और यांत्रिक घड़ियों का आविष्कार किया और वे लोहा तथा इस्पात को ढालने की क्रिया भी जान गए। चीनियों ने लोहे की झूलती जंजीरों वाले पुल दसवीं शताब्दी में ही बना लिए थे और उन्होंने ही पहले-पहल छापने की कला ईजाद की। प्रारंभिक दिनों में वे जो कुछ छापना चाहते थे उसे लकड़ी के चौखटों पर खोद लेते थे। उन पर स्याही लगाकर उसके द्वारा जितनी प्रतियों की आवश्यकता होती थी, वे छाप लेते थे। बाद में ग्यारहवीं शताब्दी में वे अलग-अलग अक्षरों को जिस रूप में चाहें, लगाने लगे। पहले ये अक्षर पक्की मिट्टी के बनाए गए और फिर धातु के। इस आविष्कार के कारण अधिक पुस्तकों का छपना संभव हो गया। इसलिए बहुत से मनुष्य पुस्तकें खरीद सके। ज्ञान के प्रसार के लिए इस आविष्कार का उतना ही महत्व था जितना कि कागज के आविष्कार का।

प्राचीन काल से इतिहास, गल्प और कविता संबंधी जो साहित्य जमा हो रहा था वह समृद्ध हुआ। चीनी लिपि के स्वरूप, लिखने के लिए ब्रश, कागज और रेशम के प्रयोग के कारण चित्रकला की काफी उन्नति हुई। विद्वानों का मत है कि चीनी वास्तुकला बौद्ध [illegible] की संकल्पना पर आधारित है। चीन के निवासियों ने इस काल में अनेक पैगोड बनवाए जिससे वहां की वास्तु-कला का अध्ययन किया जा सकता है। बौद्ध धर्म के प्रसार से मूर्तिकला को काफी प्रोत्साहन मिला।

एक जमाने में चीन में बौद्ध धर्म का इतना प्रचार हो गया था कि वही चीन का मुख्य धर्म हो गया था। किन्तु कन्फ्यूशियस के धर्म के पुनः स्थापित होने पर बौद्ध धर्म अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय हो गया। ताओ धर्म और विशेषकर पूर्वजों की पूजा का इस काल में चीन निवासियों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान बना रहा।

जापान

राजनीतिक घटना-क्रम

एशिया के इतिहास में जापान का अपना अलग वैशिष्ट्य है। यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियां जापान पर कब्जा नहीं कर पाईं। जापान ही एशिया का पहला देश था जिसने आधुनिक उद्योगों के विकास का मार्ग अपनाया। **साम्राज्यवादियों के चुंगल से बच निकला जापान स्वयं एक** साम्राज्यवादी देश बन गया। इन परिवर्तनों के बारे में तुम आगे पढ़ोगे।

जापानी इतिहास की अपनी कई विशेषताएं हैं। जापान सैकड़ों छोटे द्वीपों से बना है, जिनमें चार प्रमुख द्वीप हैं — होंशू, क्यूशू, शिकोकू और होक्काइडो। जापानी द्वीपों और एशिया की मुख्य भूमि के बीच करीब 150 किलोमीटर का अंतर है। इस अंतर ने जापान और पड़ोसी देशों के बीच के सम्पर्कों में तो बाधा नहीं डाली, लेकिन इसके कारण जापानी लोग लंबी अवधियों तक अपने को शेष दुनिया से अलग रख पाए।

ईसा की करीब सातवीं शताब्दी तक लगभग समूचे

टोकुगावा इयासू

जापान का एक राज्य में एकीकरण हो चुका था। आठवीं शताब्दी में नारा नगर जापानी राज्य की राजधानी बना और साथ ही जापानी सभ्यता तथा संस्कृति का एक केंद्र भी। बाद में उसी शताब्दी में राजधानी क्योतो में चली गई और वह नगर आगे के एक हजार से भी अधिक सालों तक जापान के सम्राटों का निवास-स्थल रहा। परन्तु वास्तविक सत्ता एक अभिजात परिवार के हाथों में रही। बारहवीं शताब्दी के अंतिम सालों में जापान में "शोगून" नामक एक नई राजनीतिक सत्ता अस्तित्व में आई। शोगून या "जनरल" जापानी सेना के सेनाध्यक्ष बने। ये शोगून जापान का शासन चलाते थे और सम्राट राजधानी क्योतो में रहता था। शोगून का पद पैतृक हो गया। 1867 ई० तक शोगून ही जापान के वास्तविक शासक थे।

जापान के इतिहास का अगला महत्वपूर्ण दौर 17वीं शताब्दी के आरंभ में तोकुगावा इयासू के शोगून बनने पर शुरू हुआ। वह तोकुगावा राजवंश का संस्थापक था। तोकुगावाओं ने एक मजबूत राज्य की नींव डाली और एदो (आधुनिक तोकियो) से 1867 ई० तक जापान पर शासन किया। 1867 ई० में अंतिम शोगून को अपदस्थ करके सम्राट को गद्दी पर बिठाया गया। तदनंतर जापान औद्योगिक विकास, आधुनिकीकरण और राज्य-विस्तार के मार्ग पर आगे बढ़ा।

सामाजिक और आर्थिक दशा

जापान का राजनीतिक विकास मुख्यतः भूसम्पत्ति पर अधिकार के लिए हुए संघर्षों के साथ जुड़ा रहा। आरंभिक काल में बड़ी संख्या में निजी जागीरें थीं। जिन पर दास-कृषक (सर्फ) काम करते थे। इन जागीरदारों को केंद्रीय सरकार को कर नहीं देने पड़ते थे। राज्य भी बड़े भूभागों का मालिक था, मगर भारी करों के बोझ के कारण किसानों ने राज्य की इन जमीनों का त्याग कर दिया था।

एक समुराइ का चित्र

तब राज्य ने अपनी जमीन 'समुराई' नामक योद्धाओं में वितरित कर दी। ये समुराई कुछ-कुछ पश्चिमी यूरोप के 'नाइटों' – जैसे थे। इस प्रकार जापानी समाज में भूस्वामियों के विभिन्न समूहों का उदय हुआ। बौद्ध विहार भी बड़ी-बड़ी जागीरों के मालिक थे। किसान जमीन के साथ जुड़े हुए थे और उसे छोड़ नहीं सकते थे, इसलिए उनकी स्थिति दास-कृषकों – जैसी हो गई। उन्हें कभी-कभी अपनी कृषि उपज का दो-तिहाई हिस्सा कर और लगान के रूप में देना पड़ता था। इन उत्पीड़क परिस्थितियों के खिलाफ किसानों ने अक्सर विद्रोह किए। जापानी इतिहास में अनेक किसान-विद्रोहों के बारे में जानकारी मिलती है। ताकुगावा शासकों ने भूमि पर राज्य का स्वामित्व स्थापित किया और इसे दाइम्योस नामक करीब 150 सरदारों में वितरित कर दिया। शोगून ने इन दाइम्योसों पर कड़ा नियंत्रण रखा, मगर वे अपने क्षेत्रों में काफी हद तक आजाद बने रहे और उन्हें बड़ी सेनाएं रखने की इजाजत दी गई थी।

ताकुगावा शोगूनों ने जापानी समाज को एक कठोर अधिक्रम में संगठित किया। जाति-प्रथा की तरह हर समूह में सदस्यता वंशपरंपरागत थी। सबसे ऊपर समुराई योद्धा थे। मगर समुराई वस्तुतः एक मिला-जुला समुदाय था जिसमें दाइम्योस, शासन के अधिकारी और सामान्य सैनिक शामिल थे। समुराइयों को सिद्धांततः तो विशेषाधिकार मिले हुए थे। परंतु उनमें जो सामान्य सैनिक थे वे विशेषाधिकारों से प्रायः वंचित थे। जब उनका कोई स्वामी नहीं होता, तो उनकी दशा दयनीय होती। अधिक्रम में दूसरा नंबर किसानों का था। उनका भयंकर उत्पीड़न होता था। उन्हें कर और लगान देने के अलावा अपने सरदार की बेगार भी करनी पड़ती थी। अधिक्रम में दस्तकार और कारीगर तीसरे नंबर पर थे। आखिरी समुदाय व्यापारियों का था। उद्योग और व्यापार में वृद्धि हुई, तो समाज में व्यापारियों की वास्तविक हैसियत भी बढ़ गई, यद्यपि अधिक्रम में उनका दर्जा सबसे नीचे था। दरअसल, जागीरदार अधिकाधिक रूप में व्यापारियों के कर्जदार बनते गए। भारतीय समाज की तरह जापानी समाज में भी 'अछूत" थे। वस्तुतः मध्ययुगीन जापान की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में सामंतवाद की कई विशेषताएं विद्यमान थीं।

शिल्पों और उद्योगों के विकास के साथ-साथ अनेक शहरों का भी विकास हुआ। अंतर्द्वीपीय और विदेशी व्यापार में हुई वृद्धि ने भी शहरों और नगरों के विकास में योग दिया। तांबे के सिक्के चलाए गए और मुद्रा का प्रचलन बढ़ा। इस काल में जापान प्रमुख रूप से ताम्र अयस्क, सोना और चांदी का निर्यात करता था। ताकुगावा शासनकाल में राज्य ने विदेश व्यापार को अपने हाथों में ले लिया था। परन्तु उन्होंने शेष दुनिया से अलग रहने की नीति अपनाई। किसी भी व्यक्ति को जापान से बाहर जाने की इजाजत नहीं थी। विदेशियों को देश से निकाल दिया गया। केवल चंद डच व्यापारियों को ही रहने और थोड़ा-बहुत व्यापार करने की इजाजत दी गई। इस तरह जापान शेष दुनिया से लगभग पूरी तरह कटा रहा।

संस्कृति और धर्म

आरंभिक काल में चीनी सभ्यता ने जापानी जीवन के अनेक पहलुओं को प्रभावित किया। प्राचीन काल से ही चीनी सभ्यता के साथ जापान के गहरे संबंध रहे। सबसे दीर्घकालिक चीनी प्रभाव को जापानी लिपि में देखा जा सकता है। जापानी भाषा चीनी भाषा से काफी भिन्न है, मगर जापानी भाषा के लिए चीनी लिपि अपनाई गई। जापानियों ने इस लिपि को 400 ई० के आसपास अपनाया था, मगर इसमें उन्होंने ध्वनि-संकेतों (अक्षरों) को भी जोड़ा।

आरंभिक जापानी साहित्य भी चीनी साहित्य से प्रभावित था। परन्तु आख्यानों, इतिहासों और कविताओं के लेखनारंभ के साथ शनैः शनैः विशिष्ट जापानी साहित्य का विकास आरंभ हुआ। अभिजात परिवारों की महिलाओं ने काव्य और उपन्यास लिखे जो खूब प्रसिद्ध हुए। मध्ययुगीन जापानी साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है । हैकू नामक काव्य-शैली। 17 अक्षरों की इन छोटी-छोटी कविताओं में सूक्ष्म बिंबविधान का प्रयोग होता है। एक सुरुचि सम्पन्न पाठक ही इन कविताओं का रसास्वादन कर सकता है। साहित्य के साथ ही गहराई से जुड़ी थी मध्ययुगीन जापान में विकसित हुई काबुकि नामक नाट्य-शैली। इस शैली ने दुनिया के अनेक देशों की आधुनिक नाट्यकला को बड़ा प्रभावित किया है। मध्ययुगीन जापान की अन्य कलाओं के क्षेत्रों की उपलब्धियां भी बड़ी प्रभावशाली थीं। वास्तुकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य और मिट्टी के पात्र, वस्त्र, लाख की वस्तुएं आदि बनाने में जापानी कलाकार और कारीगर बड़े कुशल थे। मध्ययुगीन जापान में एक और विशिष्ट कला का विकास हुआ। इसे 'इकेबाना' यानी 'फूलों को सजाने की

कला' कहते हैं। अब यह कला सारी दुनिया में फैल गई है। संक्षेप में, मध्ययुगीन जापानी कला की प्रमुख विशेषता है – लालित्य या चारुता।

जापान के प्राचीन धर्म को शिंतो कहते हैं। इस धर्म की मुख्य विशेषता है – प्राकृतिक शक्तियों की पूजा। जापान में बौद्ध धर्म चीन से कोरिया के रास्ते छठी शताब्दी के आरंभ में पहुंचा और आगे की शताब्दियों में यह खूब फला-फूला। बीच की कुछ अवधियों में इसने शिंतो धर्म को लगभग मिटा ही दिया था। जापानी संस्कृति के विकास में बौद्ध धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जापानी भिक्षु और विद्वान बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन करने चीन गए। धीरे-धीरे उन्होंने अपने विशिष्ट बौद्ध-सम्प्रदाय विकसित किए। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं जैन बौद्ध सम्प्रदाय। यह संप्रदाय धर्मग्रंथों के अध्ययन और पूजा-पाठ की बजाए ध्यान को सर्वाधिक महत्व देता है। 'जेन' शब्द संस्कृत के 'ध्यान' शब्द से ही बना है। जापानी कला और विहारों, मंदिरों तथा मूर्तियों के निर्माण पर बौद्ध धर्म की गहरी छाप पड़ी है। बौद्ध मंदिरों में निर्माण में बेशुमार धन खर्च किया गया। नारा में आठवीं शताब्दी में निर्मित एक बौद्ध मंदिर का एक कक्ष करीब 95 मीटर लंबा, 55 मीटर चौड़ा और 50 मीटर ऊंचा था। इस मंदिर में स्थापित बुद्ध की कांसे की मूर्ति करीब दस मीटर ऊंची है।

ईसाई धर्म जापान में 16वीं शताब्दी में पहुंचा और थोड़े समय में ही अनेक जापानी इसके अनुयायी बन गए। तोकुगावा शासक, जिन्होंने जापान को शेष दुनिया से अलग रखने की नीति अपनाई थी, ईसाई धर्म को खतरनाक समझते थे। उन्होंने 17 वीं शताब्दी के आरंभ में इस धर्म पर प्रतिबंध लगा दिया। अनेक ईसाई मारे गए और दूसरों को धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर किया गया।

मध्ययुग के जापानी लोगों की सांस्कृतिक उपलब्धियों ने आधुनिक जापानी संस्कृति के विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। लेकिन जापान की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था उत्पीड़न पर आधारित थी। इस उत्पीड़न और जापान के अनेक शासकों द्वारा अपनाई गई अलगाव की नीति ने मिल कर जापान की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अनेक घातक प्रभाव छोड़े।

संसार के सभी देशों में मध्ययुग एक ही समय नहीं हुआ। यूरोप और पश्चिमी देशों में मध्ययुग आमतौर से 500 ई० से 1500 ई० तक का समय समझा जाता है।

कहा जा सकता है कि पूर्व के देशों में मध्ययुग पश्चिमी देशों में इसकी समाप्ति के बाद भी चलता रहा। इस काल में कलाओं के विकास में काफी प्रगति हुई। अनेक जनगणों का सम्मिश्रण हुआ और संस्कृतियों के पारस्परिक समन्वय से सभी संस्कृतियां समृद्ध हुई। इस काल में अरबों की सभ्यता सबसे अधिक विकसित थी। अरब सभ्यता ने ज्ञान की वृद्धि में महान योगदान दिया। यूरोप में इस ज्ञान का प्रसार वहां हुए पुनर्जागरण का एक महत्वपूर्ण कारण था। इसका विवेचन हम अगले अध्याय में करेंगे।

इसी काल में भारतीय संस्कृति अधिक समृद्ध हुई। किन्तु पूर्वी देशों में आधुनिकीकरण की शक्तियों का विकास पश्चिमी देशों की अपेक्षा बाद में हुआ। पश्चिमी देशों में मध्ययुग के समाप्त हो जाने पर भी पूर्वी देशों में मध्ययुगीन परिस्थितियां चलती रहीं।

अभ्यास

जानने योग्य तथ्य

1. इस अध्याय में प्राचीन, मध्य और वर्तमान काल का जो अर्थ लिया गया है, उसका विवेचन करो।
2. मध्यकाल में जो प्रदेश विजेण्टाइन साम्राज्य के भाग थे उन पर किन-किन प्राचीन सभ्यताओं का शासन रहा?
3. सामंतवाद के समय यूरोपीय समाज में जो वर्ग थे, उनका वर्णन करो। मध्यकाल के अंतिम वर्षों में किस नए वर्ग का विकास हुआ और क्यों?

4. सामंतवाद के समय यदि तुम निम्नलिखित में से किसी वर्ग में होते, तो लिखो कि अपना समय किस प्रकार बिताते: नाइट, सर्फ, मैनर का स्वामी, स्वतंत्र किसान, मठवासी और समुराई।

5. निम्नलिखित व्यक्तियों के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करो: पोप अर्बन द्वितीय, तैमूर, कान्स्टेनटाइन, अलराजी, चार्लमेन, उमर खय्याम, बलबन, इब्न-सिना, इल्यासु।

करने के लिए कार्य

1. अपने को 800 ई० के लगभग का विश्व-पर्यटक समझकर चीन, जापान, पश्चिम एशिया और पश्चिम यूरोप के विषय में निम्नलिखित कार्य करो। अपनी यात्रा की डायरी लिखो जिसमें लोगों के धर्म, उनके मकान, व्यवसाय, सार्वजनिक भवन या अन्य उल्लेखनीय बातों के विषय में टिप्पणियां हों। इस यात्रा में तुम जो भी वस्तुएं खरीदते हो, विशेषकर चीन और अरब में, उनका उल्लेख करो।

2. मध्यकाल में मनुष्य ने जो नई वस्तुएं बनाईं, जो सुधार किए या खोजें कीं उनकी सूची बनाओ। उस सूची में यह भी लिखो कि यह बात कहां या किस सभ्यता के काल में हुई।

3. निम्नलिखित शीर्षक के अंतर्गत 250 से 300 शब्दों का एक निबंध लिखो:
'मध्ययुग में पश्चिमी देशों ने पूर्व के देशों से क्या सीखा?'

सोचने और विचार-विमर्श के लिए

1. मध्यकाल की प्रारंभिक शताब्दियां पश्चिमी यूरोप में 'अंधकार युग' क्यों कहलाती हैं?

2. संपूर्ण इतिहास में मनुष्य की व्यापार तथा धर्म-प्रचार की इच्छाएं बहुत कुछ साथ-साथ चली हैं। मध्यकाल के इतिहास से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि में तुम कौन से उदाहरण दे सकते हो?

3. आजकल किसी भी देश के समाज के जीवन-क्रम को सामंतवादी कहना क्यों बुरा समझा जाता है?

4. बहुधा कहा जाता है कि मध्यकालीन यूरोप में चर्च ने ज्ञानदीप को प्रज्ज्वलित रखा और कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि चर्च नें विद्या की उन्नति में रोड़े अटकाए। दोनों कथनों की पुष्टि के लिए प्रमाण दो।

5. लगभग किस समय मध्यकाल की समाप्ति पश्चिम और पूर्व में हुई? मानव की प्रगति में परिवर्तन के विषय में तुम्हारा जो ज्ञान है, उसे ध्यान में रखकर बतलाओ कि यह कहना क्यों कठिन है कि इतिहास का कोई एक काल ठीक समय समाप्त हुआ और दूसरा कोई काल कब आरंभ हुआ।

6. मध्य काल के दौरान पश्चिमी यूरोप में विद्यमान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं की तुलना भारत और पश्चिम एशिया की तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं से करो। उनकी परस्पर समानताओं और असमानताओं का विवेचन करो।

7. मध्ययुग के अनेक समाजों ने शेष दुनिया से अपने को अलग क्यों रखा? इसका, तुम्हारे मत से, उन समाजों पर क्या प्रभाव पड़ा?

अध्याय 6

आधुनिक युग का आरंभ

करीब चौदहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक के काल में ऐसे कई परिवर्तन हुए जिन्होंने आधुनिक दुनिया की नींव रखने में योग दिया। ये परिवर्तन यूरोप के कुछ देशों में हुए, मगर इनका प्रभाव समूची दुनिया पर पड़ा।

तुम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हो कि मध्यकाल के अंतिम वर्षों में यूरोप मेंअनेक परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्तनों ने सामंती समाज-व्यवस्था को कमजोर कर दिया और उसका विघटन होने लगा। सामंती व्यवस्था के विघटन के साथ ही एक नए प्रकार की समाज व्यवस्था का यूरोप में उदय होने लगा, जिसने जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित किया और जिसके साथ आधुनिक युग का आरंभ हुआ। नए युग की शुरुआत को सूचित करने वाले प्रारंभिक परिवर्तनों में एक था **पुनर्जागरण** (Renaissance) 'रेनेसा' का अर्थ है,पुनर्जन्म। यह नाम आमतौर पर उस काल के लिए प्रयुक्त होता है जो लगभग 1300 ई० से आरंभ हुआ और जब लोगों ने प्राचीन यूनान और रोम के ज्ञान-विज्ञान में विशेष रुचि लेनी शुरू कर दी। मगर रेनेसां का मतलब इससे कहीं अधिक था। इसमें दर्शन, कला, साहित्य, धर्म तथा विज्ञान की ऐसी अनेक उपलब्धियों का समावेश था जिनका प्राचीन काल और रोम का उपलब्धियों से कोई संबंध नहीं था।

एक और परस्पर-संबंधित परिवर्तन था धर्म-सुधार (Reformation)। यह शब्द उस आंदोलन को व्यक्त करता है जो कैथोलिक चर्च की कतिपय प्रथाओं और पोप के अधिनायकत्व के खिलाफ शुरू हुआ था। धर्म-सुधार ने प्रोटेस्टेंटिज्म (विरोधवाद) को जन्म देकर सोलहवीं सदी के आरंभ में प्रोटेस्टेंट चर्च की स्थापना में और सोलहवीं सदी के अंत में कैथोलिक धर्म-सुधार में योग दिया। इन दो परिवर्तनों ने और सामंती समाज के भीतर शुरू हुए सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों ने अंततः सामंती व्यवस्था को खत्म कर दिया।

यूरोप में आधुनिक युग को जन्म देने वाले परिवर्तनों में एक और था— नए देशों की खोज के लिए समुद्री-यात्राओं का सिलसिला। कुछ महत्वपूर्ण आविष्कारों का सहयोग पाकर साहसी नाविक दूर देशों की खोज में निकल पड़े। इन लोगों की मदद के लिए शासक और व्यापारी सामने आए जिन्होंने इन समुद्री-यात्राओं का भारी खर्च उठाया ताकि यात्राओं से होने वाला आर्थिक लाभ उन्हें मिल सके। नाविकों की खोजों से दुनिया के बारे में आदमी का ज्ञान बढ़ा और पुराने मानचित्रों को, जो गलत और अपूर्ण थे, फिर से बनाया गया।

राजनीतिक जीवन में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिन्होंने आगे आने वाले लंबे समय के लिए राजनीतिक घटनाओं की दिशा निर्धारित कर दी। राष्ट्र-राज्यों का उदय होने लगा। शक्तिशाली शासकों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने सामंती लार्डों को अपने अधीन कर लिया। उन्होंने राजनीतिक मामलों में पोप की सत्ता की अवहेलना की और जल्दी ही वे ऐसे राज्य की स्थापना में समर्थ हो गए जहां वे अपनी इच्छानुसार शासन चला सकते थे। इन राज्यों में जिस राजनीतिक व्यवस्था का विकास हुआ उसका स्वरूप निरंकुशतावादी था। राजा एक निरंकुश शासक बन गया।

इस अध्याय में तुम जिस आखिरी घटना के बारे में पढ़ोगे वह है यूरोप में निरंकुश राजतंत्रों के विरुद्ध संघर्ष। इंग्लैंड में हुए इस संघर्ष के बारे में तुम विस्तार से पढ़ोगे, जिसके

फलस्वरूप निरंकुश राजतंत्र को उखाड़ फेंका गया तथा राजा को मौत के घाट उतार दिया गया। बाद में चलकर राजतंत्र को फिर से कायम कर दिया, मगर राजनीतिक सत्ता वहां संसद के हाथों में चली गई।

इस अध्याय में वर्णित घटनाएं 18वीं और 19वीं शताब्दियों के परिवर्तनों का आधार बनीं जिसकी मुख्य विशेषताएं थीं : औद्योगिक पूंजीवाद का विकास, जनतंत्र और राष्ट्रवाद।

सामंती व्यवस्था का विघटन

तुम उन कतिपय परिवर्तनों के बारे में जान चुके हो जो मध्ययुग के यूरोपीय समाजों में घटित हो रहे थे। व्यापार के पुनरुत्थान के साथ शहरों का विकास होता गया। पुराने शहर बड़े हो गए और नए शहरों का उदय हुआ, प्रमुख रूप से उत्पादन और व्यापार के केन्द्रों के रूप में। शहरों ने, जो प्रायः परकोटे से घिरे हुए थे, धीरे-धीरे अपने को सामंती नियंत्रण से मुक्त किया। उनकी अपनी सरकारें थीं और शहरवासी अपने अधिकारियों को चुनते थे। उनके अपने सुरक्षा-सैनिक और न्यायालय थे। सर्फों की तरह उनकी हलचलों पर नियंत्रण नहीं था। वे कहीं भी आ-जा सकते थे और सम्पत्ति खरीद-बेच सकते थे। एक पुराना वाक्-प्रचार भी है : "शहर की हवा आदमी को आजाद बना देती है"। सामंती उत्पीड़न से भाग निकले सर्फों को शहरों में शरण मिलती थी। शहरों ने उत्पादन के लिए आवश्यक नकद फसलों की खेती को प्रोत्साहन दिया और इस प्रकार किसान अपनी उपज के लिए रकम प्राप्त करने लगे। अब किसान लॉर्ड को श्रम की बजाए रकम में अदायगी करने में समर्थ हुए। व्यापार में वृद्धि हुई तो मुद्रा के प्रचलन में भी वृद्धि हुई। सामंती समाजों में मुद्रा का उपयोग बहुत कम होता था। सामंती मेनर अपनी जरूरतों के मामले में लगभग आत्मनिर्भर था। बहुत कम खरीद-फरोख्त होती थी। जो थोड़ा व्यापार होता था वह विनिमय से चलता था। मुद्रा के प्रयोग से अर्थ-व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। सामंती समाजों में भूमि आदमी की सम्पत्ति की सूचक थी। कुछ लोगों के पास, विशेषकर चर्च और सरदारों के पास, सोना और चांदी के रूप में सम्पत्ति जमा थी, मगर वह निष्क्रिय सम्पत्ति थी। उस सम्पत्ति से ज्यादा सम्पत्ति नहीं बनाई जा सकती थी। व्यापार और वस्तु-उत्पादन में वृद्धि हुई तो स्थिति बदल गई। उसके साथ ही सामंती अर्थ-व्यवस्था पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में बदलती गई। पूंजीवादी व्यवस्था में सम्पत्ति मुनाफा कमाने के लिए होती है। यह पूंजी को व्यवसाय, व्यापार और उद्योग में लगाकर किया जाता है। जो मुनाफा होता है उसे पुनः अधिक मुनाफा कमाने के लिए लगाया जाता है। ऐसी सम्पत्ति या ऐसे धन को पूंजी कहते हैं। रुपया-पैसा आदमी की सम्पत्ति का मानदंड बनता गया। सामंती समाजों में तीन प्रकार के जन-समुदाय थे : प्रार्थना करने वाले पुरोहित-पादरी, सैनिक या योद्धा (नाइट्स) और मजदूर या वे किसान जो पुरोहित-पादरियों तथा सैनिकों, दोनों के लिए काम करते थे। व्यापार में वृद्धि हुई तो एक नए मध्यवर्ग का उदय हुआ जिसमें व्यापारियों का प्राधान्य था। मध्यवर्ग के लोगों की संख्या यद्यपि छोटी थी, मगर उनके पास धन होने के कारण वे समाज में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगे।

आरंभ में दुनिया के अन्य भागों के साथ जो व्यापार हुआ वह प्रमुखतः पूर्व के देशों की विलास की वस्तुओं से संबंधित था। वह व्यापार इटली के वेनिस, जेनेवा तथा पीसा नगरों के और दक्षिण जर्मनी के नगरों के व्यापारियों के नियंत्रण में था। पंद्रहवीं सदी की महान भौगोलिक खोजों —— पूर्व के देशों के समुद्री-मार्ग की खोज और अमेरिका की खोज —— के साथ व्यापार का स्वरूप भी बदल गया। इस व्यापार पर आरंभ में पुर्तगाल और स्पेन का आधिपत्य रहा और बाद में हालैंड और इंग्लैंड का।

इन परिवर्तनों के साथ-साथ वस्तु-उत्पादन की व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ। आरंभिक मध्ययुग में किसान की जरूरत की गैर-खेती की अधिकांश वस्तुएं किसान के घर में पैदा की जाती थीं और लॉर्डों के लिए सर्फ वस्तुएं बनाते थे। सर्फ प्रायः कुशल कारीगर होते थे। शहरों का विकास शुरू हुआ तो वस्तु-उत्पादन के कार्य शहरों में होने लगे। शहरों में पहुंचकर अलग-अलग शिल्पों में कुशल कारीगरों ने अपने को श्रेणियों में संगठित किया। तुम श्रेणी-व्यवस्था के बारे में पहले पढ़ चुके हो। प्रत्येक शिल्प-श्रेणी में कुशल कारीगर, यात्रा करने वाले आदमी और शिक्षार्थी होते थे। शिल्प-कौशल सीखने के लिए शिक्षार्थी मास्टर-कारीगर की शरण में जाता था। शिल्प सीख लेने के बाद वह या तो वेतन पर यात्रा-व्यक्ति का काम करता था या यदि उसने शिल्प पर अधिकार प्राप्त कर लिया है तो वह स्वयं एक मास्टर-कारीगर बन जाता था। उत्पादन की इकाइयां छोटी होती थीं। उनमें तीन या चार व्यक्ति होते थे और प्रत्येक इकाई की अपनी एक दुकान होती थी। इकाई के भीतर या एक ही श्रेणी की

इकाइयों के बीच कोई भेदभाव नहीं होता था। वस्तुओं की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए श्रेणी-व्यवस्था समर्थ नहीं थी। इसलिए इस व्यवस्था की अवनति हुई और इसका स्थान **पूंजीवादी** व्यवस्था ने ले लिया। श्रेणी-व्यवस्था में असमानताएं प्रकट होने लगीं। मास्टर-कारीगरों ने यात्रा-व्यक्तियों को मास्टर-कारीगर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और वे उन्हें कम वेतन देने लगे। नई व्यवस्था में व्यापारी मास्टर-कारीगरों के लिए कच्चा माल लाता था। कारीगर पहले की तरह अपने औजारों से अपने घरों में चीजें बनाते थे,फिर उन वस्तुओं को वही व्यापारी ले जाता था जो कच्चा माल दे जाता था। इस प्रकार, कारीगरों का, पहले की तरह, अपनी उत्पादित वस्तओं पर अधिकार नहीं रह गया था। वे धीरे-धीरे मजदूरी कमाने वाले श्रमिक बनते गए, हालांकि वे अब भी अपने औजारों से अपने ही घरों में काम करते थे। बाद में इस व्यवस्था का स्थान कारखानों की व्यवस्था ने ले लिया। इस नई व्यवस्था के अंतर्गत उत्पादन पूंजीपति के कारखाने में उसी की मशीनों से होने लगा। मजदूर वेतन पर काम करते थे। कारखाने में उनके स्वामित्व की कोई चीज नहीं थी। खनिज-खनन और धातुकर्म के उद्योगों में यह व्यवस्था सबसे पहले अस्तित्व में आई। इस व्यवस्था के साथ शहरों में वर्गभेद बढ़ता गया और मजदूर-वर्ग का उदय हुआ।

मध्ययुग में, 14वीं सदी से आगे, यूरोप के विभिन्न भागों में सामंती उत्पीड़न के खिलाफ अनेक किसान-विद्रोह हुए। यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि लॉर्डों के अलावा चर्च के अधिकार में भी काफी अधिक भूमि थी। इसलिए चर्च भी सामंती व्यवस्था का एक हिस्सा था। अतः सामंती उत्पीड़न के खिलाफ शुरू हुआ विद्रोह चर्च के खिलाफ भी था। यूरोप के बौद्धिक जीवन पर चर्च का प्रभुत्व था और उन सभी विचारों का दमन होता था जो चर्च के विचारों से मेल नहीं खाते थे। किसान-विद्रोहों के नेता अक्सर ऐसे विचार व्यक्त करते थे जो चर्च की मान्यताओं के विपरीत होते थे। इसलिए उन्हें विधर्मी करार दिया जाता था।

इन परिवर्तनों के कारण सामंती व्यवस्था टूटने लगी, जो शहर लॉर्डों के नियंत्रण से मुक्त थे वे भी सामंती व्यवस्था को तोड़ने में सहयोग देने लगे। बाद में शहर अत्यंत सम्पन्न हो गए। सामंती व्यवस्था में जो राजा एकदम शक्तिहीन थे वे, अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए और लॉर्डों पर अपनी मर्जी लादने के इरादे से, शहर के लोगों की मदद खोजने लगे। उन्होंने अपनी सेनाएं भी रखनी शुरू कर दीं। अब वे सैनिकों के लिए, पहले की तरह, लॉर्डों पर आश्रित नहीं रहे।

इस प्रकार सामंतवाद का अवसान शुरू हो गया, यद्यपि अधिकांश देशों में इसका पूर्ण अंत 18वीं और 19वीं सदियों में ही हुआ। इसके स्थान पर एक नई समाज व्यवस्था का उदय होने लगा। इस अध्याय में तुम जिन अन्य कई परिवर्तनों के बारे में पढ़ोगे उन्होंने इस प्रक्रिया में योगदान दिया।

पुनर्जागरण (रेनेसां) (Renaissance)

'रेनेसां' का शाब्दिक अर्थ है पुनर्जन्म। सीमित अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यूनान और रोम की प्राचीन सभ्यता के ज्ञान-विज्ञान के प्रति फिर से पैदा हुई रुचि के लिए होता है। यह नई रुचि फिर तब पैदा हुई जब कुस्तुन्तुनिया के कई विद्वान यूनानी ग्रंथों की खोज में कुस्तुन्तुनिया और बैजंतीन साम्राज्य के अन्य नगरों में पहुंचे। परिणामस्वरूप हजारों शास्त्रीय ग्रंथ, जिनसे यूरोपवासी सदियों से अपरिचित थे, पहले इटली में और फिर यूरोप के अन्य भागों में प्रचारित होने लगे। शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन ने और यूनान तथा रोम की सभ्यताओं की अन्य उपलब्धियों ने यूरोपवासियों को बड़ा प्रभावित किया। मगर, जैसा कि पहले बताया गया है, पुनर्जागरण केवल प्राचीन ज्ञान और प्राचीन यूनान तथा रोम की उपलब्धियों की बढ़ती जानकारी तक सीमित नहीं था। इसका संबंध कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, विज्ञान और राजनीति के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों से भी है।

पुनर्जागरण का प्रारंभ इटली में हुआ। इसका एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारण यह था कि यूरोप और पूर्व के देशों के बीच हुए व्यापार के पुनरुत्थान ने इटली के शहरों को सर्वाधिक सम्पन्न बना दिया था। यह समूचा व्यापार लगभग पूर्णतः इटली के शहरों के नियंत्रण में था। इटली में कई सारे छोटे-छोटे राज्य थे। सोलहवीं सदी में अधिकांश इटली पर पांच प्रमुख राज्यों का नियंत्रण था। ये पांच राज्य थे—– मिलान, वेनिस, फ्लोरेंस, नेपल्स और चर्च का राज्य। इटली के शहरों का विकास सामंती नियंत्रण से मुक्त वातावरण में हुआ था। इस आजादी ने चिंतन और साहस की भावना को प्रोत्साहन दिया था। इटली के इन राज्यों के शासक ज्ञान-विज्ञान और कला के संरक्षक थे।

यूरोप के बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन पर सदियों तक कैथोलिक चर्च का प्रभुत्व रहा था। पुनर्जागरण ने चर्च के इस प्रभुत्व को कमजोर बना दिया। ईसाइयत के पहले के

शास्त्रीय ज्ञान और प्राचीन यूनान तथा रोम की सांस्कृतिक उपलब्धियों की जानकारी ने भी चर्च के प्रभुत्व को तोड़ने में महत्व की भूमिका अदा की।

मानवतावाद

पुनर्जागरण की विचारधारा की मुख्य विशेषता थी मानवतावाद। यह पुनर्जागरण का केन्द्र बिंदु था। बुनियादी तौर पर, यह दैवी मामलों से मानव के मामलों की ओर स्पष्ट झुकाव था। मानवतावाद एक ऐसी विचारधारा थी जिसमें मानव का गुणगान किया गया, उसकी सारभूत मान-मर्यादा पर बल दिया गया, उसकी अपार सृजन-शक्ति में अटूट आस्था व्यक्त की गई, और व्यक्ति के स्वातंत्र्य तथा व्यक्ति के अहरणीय अधिकारों की घोषणा की गई। इसका सरोकार सभी तरह के सांसारिक सुख-दु:ख भोगने वाले रक्त-मांस के मानव से था। इसने धार्मिक तपस्या का विरोध किया और मानव के सुख-भोग के अधिकार का तथा सांसारिक इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति किए जाने का पुरजोर समर्थन किया। इसने दैवी तथा पारलौकिक के स्थान पर मानवीय तथा प्राकृतिक को गौरवान्वित किया। मानवतावादियों ने धार्मिक तप का, शरीर को यातनाएं देने का और सन्यास का विरोध किया, मखौल तक उड़ाया। उन्होंने मानव से आग्रह किया कि वह चर्च द्वारा प्रतिपादित परलोक की चिंता छोड़कर इसी धरती पर सुख प्राप्त करने का प्रयास करे। उनके उद्गार इस आस्था से ओत-प्रोत थे कि सक्रिय दिमाग व शरीर वाला व्यक्ति दुनिया को जानने और नियंत्रित करने में करिश्मे कर दिखाने में और अपनी खुशी को निर्धारित करने में समर्थ होता है। बलपूर्वक कहा गया कि मानव को ठीक से समझने के लिए मानवता का ही अध्ययन करना आवश्यक है, न कि दैवत्व का।

पंद्रहवीं सदी के इतालवी मानवतावादी पिको डेल्ला मिरांदोला ने, जिन्होंने दूर-दूर की यात्राएं की थीं और विभिन्न दर्शनों का अध्ययन किया था, नौ सौ धारणाओं की एक सूची प्रकाशित की थी। उन्होंने अपने लेखन में पुनर्जागरण के इस विश्वास को व्यक्त किया कि मानव में असीम क्षमताएं हैं। उन्होंने लिखा : 'आदमी से अधिक अद्भुत कुछ भी नहीं है'। मैंने यह बात अरबों की कुछ कृतियों में पढ़ी है। 'मानव एक महान चमत्कार है'। इन कथनों का आशय क्या है ? अपनी चिंतन-शक्ति और बुद्धि के कारण मानव समस्त प्राणियों का राजा है। केवल ईश्वर और देवदूत ही उससे ऊपर हैं। मगर यही कारण पर्याप्त नहीं है। मनुष्य सबसे सौभाग्यशाली प्राणी है। क्यों? क्योंकि ईश्वर ने सभी प्राणियों में केवल मानव की ही क्षमताओं की सीमा नहीं बांधी है। केवल मानव को ही अपनी इच्छानुसार चुनाव करने की स्वतंत्रता मिली हुई है और वह अपने को इच्छानुसार किसी भी ढांचे में ढाल सकता है। पुनर्जागरण काल के व्यक्ति ज्ञान के भूखे थे। उन्होंने अनुभव किया कि मनुष्य का जीवन महत्वपूर्ण है, कि मनुष्य का आदर और अध्ययन करना आवश्यक है, कि इसी धरती पर मनुष्य के जीवन को सुधारने के प्रयास किए जाने चाहिए। मानव जीवन को इस तरह महत्व दिये जाने के बाद साहित्य और इतिहास अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र बन गए। साहित्य और इतिहास को अब मानविकी (Humanities) कहा जाने लगा। इनका उद्देश्य मुख्य रूप से मानव के इस संसार के क्रियाकलापों को समझना था, न कि मृत्यु के उपरांत के जीवन को।

मानवता की इस नई भावना की अभिव्यक्ति नई कला और नए साहित्य में हुई। पुनर्जागरण काल के कलाकारों ने अपने विषय तो बाइबल से लिए, परन्तु मानव का चित्रण समस्त पार्थिव सौंदर्य और ओज के साथ किया। पुनर्जागरण काल के लेखकों ने भी मुख्यतः मानव को ही अपनी कृतियों का विषय बनाया; जैसे, शेक्सपीयर ने लिखा:

> कितनी अनुपम कृति है मनुष्य ! कितनी
> श्रेष्ठ है मनुष्य की बुद्धि ! कितनी असीम
> हैं मनुष्य की क्षमताएं ! रूप और गति
> में कितना श्लाध्य है मानव ! अपने
> कार्यों में देवदूतों के समान है मानव !
> अपनी बुद्धि में ईश्वर के तुल्य है मानव!
> प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है मानव......
>
> —हैमलेट, अंक II दृश्य (II)

कला और स्थापत्य

पुनर्जागरण काल की कुछ महानतम उपलब्धियां चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला के क्षेत्र में देखने को मिलती हैं। पुनर्जागरण काल के कलाकारों ने बाइबल के विषयों का उपयोग किया, परन्तु इन विषयों की उन्होंने जो व्याख्या की उसमें परंपरागत धार्मिक दृष्टिकोण को नहीं अपनाया। कला ने अब एक ऐसी स्वतंत्र गतिविधि का स्वरूप प्राप्त किया जो मध्ययुग में कहीं नहीं था। मध्ययुगीन कला का उद्देश्य था नैतिक मूल्यों और धार्मिक

शिक्षाओ को व्यक्त करना। जिन व्यक्तियों का चित्रण किया जाता था वे रक्त और मांस के व्यक्ति नहीं थे। कलाकार ज्यादातर गुमनाम होते थे और समाज में उनका स्थान निम्न था। वे कारीगरों के समूह के रूप में काम करते थे और उनका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था। पुनर्जागरण काल में कलाकार की अपनी स्वतंत्र पहचान बनी, उसकी अपनी शैली थी और उसे समाज में अत्यधिक सम्मान मिला।

पुनर्जागरण काल के सभी कला-रूपों में सबसे ज्यादा विकास चित्रकला का हुआ। पुनर्जागरण काल के कलाकार कला को जीवन का प्रतिरूप समझते थे। इसके लिए प्रकृति तथा मानव, पर्वतों, पेड़-पौधों तथा पुशओं और मानव की शरीर-रचना का गहराई से अवलोकन करना आवश्यव था। कलाकारों ने प्रकाशिकी तथा ज्यामिति का अध्ययन किया और अपने चित्रों मे प्रक्षेपों का भी उपयोग किया। उन्होंने मानव के हाव-भावों की आंतरिक व्यवस्था को समझने के लिए शरीर-रचना विज्ञान का अध्ययन किया। संसार की एक महानतम प्रतिभा लियोनार्दो द विंची ने, न केवल मानव-शरीर की रचना का गहन अध्ययन किया, बल्कि हलचलों को व्यक्त करने के लिए यह जानने का भी प्रयास किया कि हलचलों के दौरान शरीर के विभिन्न अवयव किस तरह का आकार ग्रहण करते हैं।

कला से इंद्रिय-सुख प्राप्त करना कला का न्यायोचित उद्देश्य माना गया। पुनर्जागरण की दृष्टि में दुनिया सुंदर और सुखमय थी। कलाकारों ने मानव के धार्मिक पहलुओं की बजाय उसके भौतिक पहलुओं पर ध्यान दिया। मेरी और सुखमय थी। कलाकारों ने मानव के धार्मिक पहलुओं की बजाय उसके भौतिक पहलुओं पर ध्यान दिया। मेरी के रूप में प्रस्तुत किया गया, न कि धार्मिक प्रतीकों के रूपों में। कलाकारों ने भौतिक जगत में सौंदर्य और सुसंगति के दर्शन किए। अपनी कृतियों में उन्होंने मानवाकृतियों को प्रकृति के किसी भी अन्य प्राणी से अधिक सुंदर रूपों में प्रस्तुत किया। उनकी मानवाकृतियां 'मानव की एक नई प्रजाति' मानी गई। पुनर्जागरण काल के कलाकारों की

लियोनार्दो द विंची का बनाया चित्र "दि लास्ट सपर" (अंतिम भोज)

लियोनार्दो द विंची का बनाया चित्र "मोनालिसा"

कृतियों में जो परिपूर्णता थी वह महज दैवी नहीं थी। वह मानवीय भी थी।

पुनर्जागरण की चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति इटली के तीन कलाकारों की कृतियों में देखने को मिलती है। वे हैं ——लियोनार्दो द विंची, माइकेल एंजिलो और रफेल। इनसे पोप और मेडिची परिवार के सदस्यों ने कलाकृतियों का निर्माण करवाया। लियानार्दो द विंची की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे चित्रकार, मूर्तिकार, यंत्रविद्, वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि और गायक, सभी थे। उन्होंने एक हवाई जहाज की भी योजना बनाई थी। उनके अनेक आरेख मिले हैं जिनमें उनकी सृजनात्मक प्रतिभा लक्षित होती है। उनके दो सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्र हैं —— 'द लास्ट सपर' (अंतिम भोज) और 'मोनालिसा'। एक मूर्तिकार के रूप में माइकेल एंजिलो की प्रतिभा यूनानी मूर्तिकारों के टक्कर की थी। वे एक श्रेष्ठ चित्रकार और वास्तुविद् भी थे। उनके सर्वश्रेष्ठ चित्र वेटिकन (रोम) के सिस्तीन गिरजाघर की छत में अंकित हैं। उन्होंने छत में नौ पैनलों में अपने चित्रों को सजाया। ये चित्र ईसाई आख्यानों पर आधारित हैं, मगर इनमें गहरी मानवीय संवेदनाएं व्यक्त हुई हैं। इन चित्रों की, जैसे कि **द लास्ट जजमेंट** (अंतिम न्याय) और **द फाल आफ मैन** (मानव का पतन) की, गणना संसार की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृतियों में की जाती है।

रफेल भी इटली के ही चित्रकार थे और लियोनार्दो द विंची और माइकेल एंजिलो के समकालीन थे। उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति यीशू मसीह की मां मेडोना का चित्र है। रफेल की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों में की जाती है।

माइकेल एंजिलो की मूर्ति पियाता, जिसमें मेरी के घुटनों पर रखे यीशू मसीह के शरीर को दिखाया गया है।

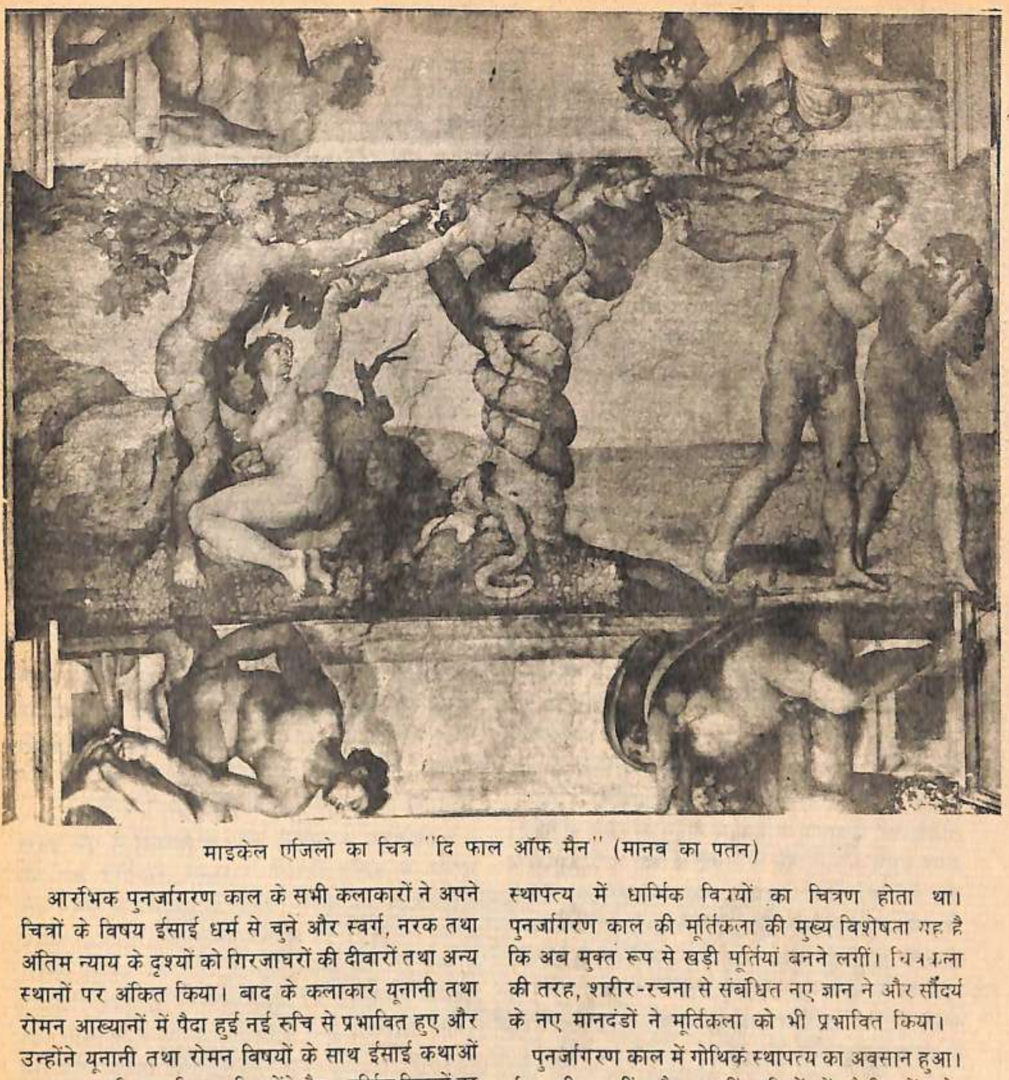

माइकेल एंजिलो का चित्र "दि फाल ऑफ मैन" (मानव का पतन)

आरंभिक पुनर्जागरण काल के सभी कलाकारों ने अपने चित्रों के विषय ईसाई धर्म से चुने और स्वर्ग, नरक तथा अंतिम न्याय के दृश्यों को गिरजाघरों की दीवारों तथा अन्य स्थानों पर अंकित किया। बाद के कलाकार यूनानी तथा रोमन आख्यानों में पैदा हुई नई रुचि से प्रभावित हुए और उन्होंने यूनानी तथा रोमन विषयों के साथ ईसाई कथाओं का खुलकर मिश्रण किया। जिन्होंने गैर-धार्मिक विषयों का भी चित्रण किया। मगर उनके प्रत्येक विषय का चित्रांकन मानवता से ओतप्रोत था।

पुनर्जागरण काल की मूर्तिकला में भी मोटे तौर पर वैसा ही परिवर्तन हुआ जैसा कि चित्रकला में हुआ। मध्ययुग में मुख्यतः ईसाई संतों की मूर्तियां बनाई जाती थीं और स्थापत्य में धार्मिक विषयों का चित्रण होता था। पुनर्जागरण काल की मूर्तिकला की मुख्य विशेषता यह है कि अब मुक्त रूप से खड़ी मूर्तियां बनने लगीं। चित्रकला की तरह, शरीर-रचना से संबंधित नए ज्ञान ने और सौंदर्य के नए मानदंडों ने मूर्तिकला को भी प्रभावित किया।

पुनर्जागरण काल में गोथिक स्थापत्य का अवसान हुआ। ईसा की 12वीं और 13वीं सदियों में कैथीड्रलों और गिरजाघरों के निर्माण में गोथिक शैली का खूब इस्तेमाल हुआ था। कमानी छतें, नुकीले मेहराब और टेके इस स्थापत्य-शैली की बुनियादी विशेषताएं थीं। गोथिक स्मारकों में उत्तुंग शिखर होते थे। उनमें रंगीन कांच की खिडकियों और नक्काशीदार मोहरों का इस्तेमाल होता था

और उन्हें पौराणिक प्राणियों से अलंकृत किया जाता था। पुनर्जागरण काल के वास्तुविद् गोथिक स्थापत्य को तापसिक और पारलौकिक मानते थे। उन्होंने इसे "गोथिक" नाम भी इसीलिए दिया था कि वे इसे तुच्छ तथा हेय मानते थे। स्थापत्य की नई शैलियों का विकास पहले इटली में शुरू हुआ और बाद में यूरोप के अन्य भागों में। रोम स्थित सेंट पीटर का गिरजाघर नई शैली का सर्वोत्तम नमूना है। इसका निर्माण ब्रामंते ने शुरू किया था और बाद में माइकेल एंजिलो ने भी इसके निर्माण में योग दिया। नई शैली के ये भवन, जिनमें से अनेक गिरजाघर थे, विशुद्ध गैर-धार्मिक भावों को –– 'लौकिक जीवन में सुख और मानवीय उपलब्धियों में गौरव' के भावों को –– व्यक्त करते हैं।

पुनर्जागरण काल का साहित्य

साहित्य पर पुनर्जागरण के प्रभाव की सबसे मुख्य विशेषता यह थी कि इस काल में जनता की क्षेत्रीय अथवा देसी भाषाओं का साहित्य-लेखन में उपयोग होने लगा। ईसा की करीब 14वीं सदी तक यूरोप की इतालवी, स्पेनी, फ्रांसीसी, जर्मन, अंग्रेजी आदि जनता की भाषाओं में नहीं के बराबर साहित्य लिखा गया था। सदियों तक शास्त्रीय और साहित्यिक ग्रंथ लैटिन में ही लिखे जाते रहे। लैटिन को जनसमुदाय के केवल थोड़े से लोग ही समझ पाते थे। पुनर्जागरण काल में यूरोपीय भाषाओं का साहित्यिक भाषाओं के रूप में उदय हुआ और इन भाषाओं का विकास आरंभ हुआ। थोड़े समय में ही इन भाषाओं ने काव्य, नाटक तथा कथानक के क्षेत्रों में लैटिन का स्थान ले लिया। मगर दर्शन और विज्ञान के विषयों के लिए आगे कुछ समय तक लैटिन का इस्तेमाल होता रहा। पुनर्जागरण काल के लेखकों को लैटिन पर और यूरोप की दूसरी शास्त्रीय भाषा ग्रीक पर अधिकार प्राप्त था। परंतु उन्होंने अपनी स्थानीय भाषाओं में भी लिखना पसंद किया। इस परिवर्तन का उस समय यूरोप के विभिन्न देशों में पैदा हो रही राष्ट्रीय चेतना से गहरा संबंध था।

यूरोप की एक आधुनिक भाषा में लिखी गई पहली महत्वपूर्ण कृति दांते की **डिवाइन कामेडी** है। दांते ने लैटिन में भी काफी लिखा, पर उसने अपने तुस्कान राज्य की भाषा में ही लिखना पसंद किया। बाद में तुस्कान का इतालवी भाषा में विकास हुआ। महान लेखक पेट्रार्क ने भी दांते का अनुकरण किया। इतिहासकार उसे मानवतावाद का

इरास्मस

संस्थापक मानते हैं। दांते की तरह उसने भी इतालवी भाषा में अपने काव्य की रचना की। पुनर्जागरण काल में धार्मिक विषयों के अलावा अन्य विषयों पर भी अनेक कृतियां लिखी गईं जो अपने समय में ही ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं और आज भी श्रेष्ठ कृतियां मानी जाती हैं।

पुनर्जागरण के उत्तरी यूरोप के लेखकों में एक प्रमुख लेखक थे हालैंड-निवासी इरास्मस, जिन्होंने चर्च की बुराइयों का खूब मखौल उड़ाया। दूसरा लेखक थॉमस मोर इंग्लैंड का था। उसने अपनी **यूटोपिया** (Utopia) नामक पुस्तक में एक आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत किया। फ्लोरेंस के इतिहासकार मैकियेवली को आधुनिक राजनीति दर्शन का पिता कहा जाता है। उसने अपनी कृति प्रिंस (The Prince) में उस 'राज्य' की नई धारणा प्रस्तुत की जो यूरोप में उदित हो रहा था। उसने सफलतापूर्वक शासन करने के तरीके भी बतलाए। मैकियेवली ने राज्य को स्वतंत्र और सर्वसत्ता-सम्पन्न माना और कहा कि धार्मिक मामले राजनीतिक मामलों से अलग रखे जाने चाहिए। स्पेनवासी सर्वांतिस ने अपनी कृति **डॉन क्विजोट** (Don Quixote) में मध्ययुगीन नाइटों और शूरवीरता के उनके विचारों का

सर्वातिस द्वारा लिखित "डॉन क्विक्जोट" के प्राचीन संस्करण का अग्रभाग

मखौल उड़ाया। अंग्रेज विद्वान फ्रांसिस बेकन ने विविध विषयों पर विद्वतापूर्ण निबंध लिखे। अंग्रेजी कवि और नाटककार विलियम शेक्सपीयर ने अपनी कृतियों में मानव के सभी संभव भावों और उसकी क्षमताओं तथा दुर्बलताओं का विवेचन किया है। इस कारण शेक्सपीयर के नाटक आज भी उतने ही आधुनिक लगते हैं जितने कि वे सोलहवीं सदी में पहली बार रंगमंच पर खेले जाते समय थे। फ्रांस के लेखक रैबेल ने धर्मशास्त्र और चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया था। उसमें पुनर्जागरण की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। उसने अपनी बुद्धि और अपने व्यंग्य का प्रयोग फलित-ज्योतिष की मान्यताओं तथ अंधविश्वासों के खिलाफ किया। उसके दो प्रसिद्ध ग्रंथों के नाम हैं पैंटाग्रुअल (Pentagruel) गर्गातुआ (Gargantua), जो वस्तुत: मध्ययुगीन आख्यानों के दो दैत्यों के नाम हैं।

इन सभी लेखकों की कृतियों से स्पष्ट होता है कि पुनर्जागरण की भावना पूर्णतः मानव के क्रियाकलापों पर केन्द्रित थी।

मुद्रणकला का आविष्कार

मुद्रण के आविष्कार से पुस्तकें लिखने और पढ़ने को प्रोत्साहन मिला। 15वीं सदी के पूर्वार्ध में हुए इस आविष्कार का श्रेय गुटेनबर्ग और कैस्टर को दिया जाता है। छपाई के कारण पुस्तकें अधिक लोगों के लिए उपलब्ध हो गईं। 15वीं सदी के अंतिम दौर तक यूरोप में कुल उपलब्ध पुस्तकें काफी कम थीं। पहली 'मुद्रित' पुस्तक गुटेनबर्ग की बाइबल थी और 1456 ई० में प्रकाशित हुई थी। मुद्रण के

सोलहवीं शताब्दी का एक छापाखाना

आविष्कार के पहले पुस्तकें हस्तलिपियों के रूप में होती थीं। लिपिक इनकी प्रतिलिपियां तैयार करते थे। ये हस्तलिपियां अधिकतर ईसाई मठों के पुस्तकालयों में ही मिलती थीं। पढ़ सकने वाले लोग भी इन हस्तलिपियों को बड़ी कठिनाई से ही प्राप्त कर सकते थे। मगर अधिकांश लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे। अनुमान लगाया गया है कि 15वीं सदी के पूर्वार्ध में यूरोप में कुल करीब 1,00,000 हस्तलिपियां उपलब्ध थीं। मुद्रण के आविष्कार के बाद, पचास साल की अवधि में ही, पुस्तकों की संख्या 90 लाख पर पहुंच गई। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था, पर इसका प्रभाव लक्षित होने में लंबा समय लगा। मुद्रित पुस्तकें महंगी होती थीं। इसलिए केवल धनी लोग ही इन्हें खरीदने में समर्थ थे। अधिकांश लोग तो अनपढ़ ही थे। पढ़े-लिखे लोग अधिकतर मध्य वर्ग के थे। इनकी संख्या बढ़ती गई और नए साहित्य ने नए दृष्टिकोण के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।

आधुनिक विज्ञान का आरंभ

पुनर्जागरण के साथ आधुनिक विज्ञान का आरंभ हुआ। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मध्ययुगीन यूरोप के बौद्धिक जीवन पर चर्च का आधिपत्य था। मध्ययुगीन यूरोप की मान्यताओं के अनुसार, किसी भी विचार को तब तक सत्य नहीं माना जा सकता था जब तक वह धर्मग्रंथों से या चर्च से अथवा चर्च द्वारा स्वीकृत प्राचीन दार्शनिकों के विचारों से समर्थित न हो। पुनर्जागरण काल के विचारकों ने ऐसे प्राधिकार में आंख मूंदकर यकीन करने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा कि 'बाहर निकलकर और प्रकृति की पुस्तक का अध्ययन तथा अन्वेषण करके' ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, न कि महज चिंतन करने से। यह नया दृष्टिकोण पहले के दृष्टिकोण से भिन्न था और इसने विज्ञान के विकास के लिए रास्ता प्रशस्त किया। इस नए दृष्टिकोण का निचोड़ प्रस्तुत करते हुए अंग्रेज दार्शनिक फ्रांसिस बेकन ने कहा था कि अवलोकन और परीक्षण के जरिए ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। बेकन ने कहा था कि जो कोई भी ज्ञान अर्जित करना चाहता है उसे सर्वप्रथम अपने परिवेश की दुनिया में घटित होने वाली घटनाओं का अवलोकन करना चाहिए। तब उसे स्वयं से पूछना चाहिए कि उन घटनाओं के कारण क्या हैं। उसके बाद वह संभावित कारणों के बारे में एक सिद्धांत या मान्यता स्थापित कर ले तो उसे प्रयोग करने चाहिए। प्रयोग

कोपर्निकस

मान्यता की जांच के लिए होता है और यह देखने के लिए होता है कि उसने जिस कारण की कल्पना की थी वह वस्तुतः उसके द्वारा देखे गए परिणाम देता है या नहीं। बेकन की मान्यता थी कि "विज्ञान का वास्तविक और न्यायोचित लक्ष्य मानव जीवन को नई खोजों और शक्तियों से समृद्ध बनाना है।"

पुनर्जागरण काल की आरंभिक वैज्ञानिक उपलब्धियां खगोल-विज्ञान के क्षेत्र की हैं। पोलैंडवासी विद्वान कोपर्निकस ने, जो कई साल तक इटली में भी रहा, प्रतिपादित किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है और सूर्य की परिक्रमा करती है। यह पुरानी परंपरा से एकदम भिन्न विचार था। एक हजार से भी अधिक साल तक यह मान्यता प्रचलित थी कि पृथ्वी विश्व के केंद्र में स्थित है। यह उस समय के विचारकों का दृढ़ मत था। इस मत का विरोध करना चर्च की विश्व संबंधी मान्यता पर प्रहार करना समझा जाता था, इसलिए इसे धर्म-विरोधी करार दिया जाता था। कोपर्निकस का ग्रंथ **खगोलीय पिंडों के परिभ्रमण पर विचार** 1543 ई० में प्रकाशित हुआ और उसी साल उनकी मृत्यु हुई। चर्च के कोप के भय के कारण कोपर्निकस अपने ग्रंथ को प्रकाशित करने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। कोपर्निकस के सिद्धांत की पुष्टि बाद में गैलीलियो ने की, मगर एक खुले विश्व और उसमें एक नन्हीं-सी पृथ्वी वाला यह विचार, उस बंद विश्व वाले विचार के लिए विध्वंसक सिद्ध हुआ जिसे ईश्वर द्वारा निर्मित और संचालित माना गया था। कोपर्निकस के ग्रंथ के प्रकाशन के करीब आधे शतक बाद, 1600 ई. में, ज्यार्दानो ब्रूनो को धर्म-विरोध के आरोप में खूंटे से बांधकर जिंदा जला दिया गया। उसने कोपर्निकस के विश्व-संबंधी विचारों का प्रचार किया था।

विश्व-संबंधी नई धारणा की निर्णायक पुष्टि दूरबीन के आविष्कार से संबंध हुई। दूरबीन को उस युग का महानतम वैज्ञानिक उपकरण माना जाता है। गैलीलियो का जन्म कोपर्निकस की मृत्यु के ग्यारह साल बाद हुआ था। गैलीलियो ने अपनी दूरबीन से आकाश के पिंडों का अवलोकन किया। उसके अवलोकनों से कोपर्निकस के सिद्धांत की पुष्टि हुई। बुढ़ापे में गैलीलियो पर मुकदमा चलाया गया, उसे धर्म-विरोधी घोषित किया गया और उसे अपने विचार वापस लेने के लिए विवश किया गया। उसे नजरबंद रखा गया और वैज्ञानिक खोज कार्य करने की

गैलिलियो की एक किताब के अग्रभाग में छपी उसकी तस्वीर।

अनुमति दी गई, परंतु वह कार्य सीधे खगोल-विज्ञान से संबंधित नहीं था। गैलीलियो पर चलाए गए मुकदमे के साथ विज्ञान के इतिहास का एक युग समाप्त हो गया। गैलीलियों की भर्त्सना को लोगों का विशेष समर्थन नहीं मिला और विश्व-संबंधी पुरानी धारणा को बलपूर्वक थोपने के प्रयास को चुपचाप त्याग दिया गया।

जर्मनी के वैज्ञानिक केपलर ने गणित की सहायता से स्पष्ट किया कि ग्रह किस प्रकार सूर्य की परिक्रमा करते हैं। उसने ग्रहों की गतियों और कक्षाओं के बारे में नियम प्रस्तुत किए। आइजेक न्यूटन ने केपलर के कार्य को आगे बढ़ाया। गणित की ही सहायता से न्यूटन ने सिद्ध किया कि सभी खगोलीय पिंड गुरुत्वाकर्षण के अंतर्गत यात्रा करते हैं।

पुनर्जागरण के इन वैज्ञानिकों के साथ विज्ञान के जिस आधुनिक युग का आरंभ हुआ उसने, न केवल मानव के ज्ञान में वृद्धि की, बल्कि अन्वेषण की एक ऐसी विधि भी प्रस्तुत की जिसका दूसरे विषयों के अध्ययन में उपयोग किया जा सकता था। मानव-शरीर और रक्त-संचारण के

वैसेलियस की 1453 ई. में छपी पुस्तक "दि ह्युमैनी कारपोरिस फाबरिका" का मुख पृष्ठ यह 1543 में प्रकाशित हुई।

बारे में कई महत्वपूर्ण आविष्कार हुए और इन्होंने अंधविश्वासों को दूर भगाने में मदद दी। 1543 ई० में कोपर्निकस का ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। उसी साल बेल्जियमवासी वैज्ञानिक वेसेलियस ने अपना सचित्र ग्रंथ दे ह्यूमनी कार्पोरिस फाब्रिका प्रकाशित किया। यह ग्रंथ मानव-शरीर के उसके विच्छेदन-कार्य पर आधारित था। इस ग्रंथ में पहली बार मानव-शरीर की रचना-क्रिया के बारे में पूर्ण जानकारी देखने को मिलती है। स्पेनवासी वैज्ञानिक सर्वेतस ने एक ग्रंथ प्रकाशित करके उसमें रक्त-परिसंचरण के बारे में जानकारी दी। ट्रिनिटी में चर्च

के विश्वास को चुनौती देने के अपराध में उसे मौत की सजा दी गई। रक्त-परिसंचरण की सतत प्रक्रिया –– रक्त का हृदय से शरीर के सभी अंगों में पहुंचना और फिर हृदय में वापस लौटना –– का पूर्ण विवरण 1610 ई० के आसपास इंग्लैंडवासी वैज्ञानिक हार्वे ने प्रस्तुत किया। इस ज्ञान से अतीत की अनेक गलतियों को सही करना संभव हुआ और स्वास्थ्य तथा रोगों की समस्याओं के अध्ययन का एक नया रास्ता खुला।

नये आविष्कारों से जो नया ज्ञान प्राप्त हुआ उसका तत्काल व्यापक प्रचार नहीं हुआ, हालांकि मुद्रण की व्यवस्था ने नए विचारों को फैलाने में काफी मदद दी। नए आविष्कारों के प्रचार में और प्रयुक्त होने में लंबा समय लगा। उदाहरण के लिए, अरबों के जरिए भारतीय अंक यूरोप में 13वीं सदी तक पहुंच चुके थे। शून्य सहित दस संकेतों पर आधारित भारतीय अंक-पद्धति सभी प्रकार की गणनाओं के लिए बड़ी सुविधाजनक थी। फिर भी रोमन अंकों का प्रचलन जारी रहा। भारतीय अंक-पद्धति ने यूरोप में गणित के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

इस महत्वपूर्ण तथ्य को याद रखना आवश्यक है कि पुनर्जागरण काल के वैज्ञानिकों ने सवालों, प्रेक्षणों तथा प्रयोगों से सीखने की जिस विधि को अपनाया उसका आज भी वैज्ञानिक उपयोग कर रहे हैं। यह है वैज्ञानिक विधि। इस विधि का प्रयोग करने से ही हमारे ज्ञान में इतनी अधिक वृद्धि हुई है।

धर्म-सुधार आंदोलन (Reformation)

धर्म सुधार आंदोलन (Reformation) शब्द यूरोप के इतिहास में पुनर्जागरण के उत्तरकाल में हुए दो प्रमुख परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है। इनमें प्रथम था प्रोटेस्टेंट धर्म-सुधार। इसके कारण ईसाई धर्म में फूट पैदा हुई, अनेक देश रोमन कैथोलिक चर्च से अलग हो गए और उन देशों में सामान्यतः राष्ट्रीय स्तर पर प्रथक चर्चों की स्थापना हुई। दूसरे परिवर्तन का संबंध रोमन कैथोलिक चर्च के भीतर हुए उन सुधारों से था जिन्हें आमतौर पर कैथोलिक धर्म-सुधार या प्रति धर्म-सुधार के नाम से जाना जाता है। परन्तु धर्म-सुधार महज एक धार्मिक आन्दोलन नहीं था। इसका उस काल के उन सामाजिक तथा राजनीतिक आंदोलनों से गहरा संबंध था जिन्होंने मध्ययुग का अंत करके आधुनिक युग को जन्म दिया।

आरंभिक मध्ययुग में कैथोलिक चर्च रोम के पोप के अधिनायकत्व में एक विशाल श्रेणीबद्ध संगठन बन गया था। समूचे पुरोहित-तंत्र पर पोप की परमसत्ता स्थापित हो गई थी और पोप का प्राधिकार सीधे लागू होता था। पोप की उस स्थिति को प्रायः 'पोप के राजतंत्र' के नाम से जाना जाता है। उच्च और निम्न, सभी प्रकार के लोगों पर चर्च का प्राधिकार स्थापित करने के बाकायदा प्रयास किए गए। कम से कम साल में एक बार पुरोहित के सामने मौखिक रूप से अपना पाप स्वीकार करना और उसके लिए दिए गए दंड को भोगना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य बना दिया गया। विरोध करने वाले को धर्म से बहिष्कृत कर दिया जाता था। धर्म से बहिष्कृत किए गए व्यक्ति के बारे में समझा जाता था कि उसे अस्थायी रूप से नरक में डाल दिया गया है। उसके मरने पर उसके शव को प्रचलित अनुष्ठानों से नहीं दफनाया जाता था। दूसरे ईसाइयों को उसके साथ संबंध रखने की मनाही थी।

चर्च की स्थापना के लगभग आरंभकाल से ही धर्म-सिद्धांत के सवालों को लेकर ईसाई विद्वानों में मतभेद थे। विद्वानों के बीच ये मतभेद सदियों तक कायम रहे। तेरहवीं सदी में पहुंचने तक ईसाई धर्म-सिद्धांत से संबंधित कुछ सवालों को दार्शनिक वाद-विवाद के दायरे से अलग कर दिया गया था। उन्हें विश्वास के तौर पर मान लेना आवश्यक बना दिया गया। चर्च के धर्म-सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण अंग था संस्कारों का सिद्धांत। संस्कार को एक ऐसे साधन के रूप में परिभाषित किया गया जिससे दैवी-कृपा मनुष्य को प्राप्त हो जाती है। ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए इन संस्कारों को अपरिहार्य माना गया और कहा गया कि इनके बिना मुक्ति संभव नहीं। संस्कारों के सिद्धांत के साथ ही जुड़ा हुआ था पुरोहिती का सिद्धांत। माना गया कि बिशप द्वारा दीक्षित पुरोहित (बिशप की नियुक्ति पोप करता था) उस प्राधिकार के एक अंश का उत्तराधिकारी होता है जो ईसा से पीटर को प्राप्त हुआ था। जनसाधारण के लिए तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार थे–– नाम संस्कार, पापस्वीकार-संस्कार और यूखारिस्ट अर्थात परमप्रसाद-संस्कार। इस सिद्धांत के अनुसार, पुरोहित में यह शक्ति होती थी कि वह ईश्वर के साथ सहयोग करके कुछ चमत्कार करके दिखा सके और पापियों को उनके पापों के परिणामों से मुक्ति दिला सके। इन संस्कारों के अलावा और भी कई विश्वासों को स्वीकार कर लिया गया। इनमें से एक वह था जिसके बारे में इरास्मस ने अपनी कृति 'मूर्खता की प्रशंसा' में लिखा है :

"मूर्खों के इसी वर्ग में उन लोगों का भी समावेश होता है जो इस बेहूदी किंतु सुखद धारणा में आस्था रखकर अपने को ठगते हैं कि यदि वे सेंट क्रिस्टफर के चित्र या उसकी प्रतिमा के दर्शन करते हैं तो उस दिन उनकी मृत्यु नहीं होगी अथवा यदि कोई सेंट बार्बारा की प्रतिमा की अनुष्ठानपूर्वक अर्चना करता है तो वह युद्ध से सुरक्षित वापस लौट आएगा या जो कोई हाथों में मोमबत्तियां लेकर कुछ खास दिनों में सेंट इरास्मस की आराधना करता है वह जल्दी ही धनी हो जाएगा....प्रत्येक सेंट का अपना एक निर्धारित कार्यभार है और प्रत्येक की एक विशिष्ट पद्धति से प्रार्थना करनी पड़ती है। कोई दांतों के दर्द से छुटकारा दिलाता है, कोई बालक के जन्म में सहायता देता है,कोई चुराई गई चीज को प्राप्त करा देता है... कोई मवेशियों की रक्षा करता है....!"

कैथोलिक चर्च की बुराइयां

धर्म सुधार आंदोलन को कैथोलिक चर्च में पनपी हुई बुराइयों के खिलाफ भड़का हुआ प्रायः एक विद्रोह माना जाता है। चर्च की धर्मश्रेणी के कुछ पुरोहितों और उच्च धर्माधिकारियों ने भ्रष्ट साधनों से अपने पद हासिल किए थे। इस तरह नियुक्त हुए अनेक व्यक्ति बेहद अज्ञानी थे। वे विलास और अनैतिकता का जीवन जी रहे थे। ऊंची बोली बोलने वालों को धार्मिक पद प्रदान किए जाते थे और जो लोग पैसा खर्च करके ऐसे पद प्राप्त करते थे वे अपनी सेवाओं के लिए ऊंची कीमत वसूल करके अच्छी कमाई कर लेते थे। विवाह और पापसंस्कार जैसे चर्च के कुछ नियमों से छुटकारा देने वाले विधान जनता को बेचे जाते थे। पोप और उच्चपदस्थ पुरोहित राजाओं की तरह रहते थे। एक नई बुराई थी ऐसे पत्रों की बिक्री जो पापों से इस जीवन में और नरक में दंड भोगने से मुक्ति दिलाने का दावा करते थे। आमतौर पर पुरोहित पापकर्ता व्यक्ति को प्रायश्चित करने को कहता या उसे कोई दंड देता। ऐसे व्यक्ति को या तो कोई विशेष सेवा करनी पड़ती या किसी पवित्र तीर्थ की यात्रा करनी पड़ती। मगर प्रथा बढ़ती गई कि गांठ के धनी जो व्यक्ति अपने पापों के लिए प्रायश्चित से छुटकारा चाहते थे वे पुरोहित-वर्ग से 'दंडमोचन के पत्र' खरीदने लगे। स्वर्ग के लिए पासपोर्ट समझे जाने वाले इन दंडमोचनों की बिक्री ही प्रोटेस्टेंट धर्म-सुधार आंदोलन के भड़क उठने का प्रमुख तात्कालिक कारण बनी।

चर्च के धार्मिक मतों का खंडन करने वाले हर मत या सिद्धांत को धर्म-विरोधी माना जाता और उसके लिए दंड दिया जाता। चर्च ने धर्म-विरोध के दमन के लिए एक व्यापक व्यवस्था का आयोजन किया था। धर्म-विरोधियों को खोज निकालने और दंड देने के लिए धर्माधिकरण (Inquisition) या एक अदालत की स्थापना की गई थी। धार्मिक मतों का और चर्च की बुराईयों का विरोध करने वालों का दमन किया जाता और धर्म-विरोधियों को खूंटों से बांधकर जिंदा जला दिया जाता। ब्रूनो और सर्वेतस को जिंदा जला दिए जाने के बारे में तुम पहले पढ़ चुके हो। धर्म-परीक्षक काला चोगा और सिर पर काला टोप पहनकर अपने कर्मचारियों के साथ किसी देहात या शहर में पहुंचता और वहां के निवासियों को आदेश देता था कि वे उसे संदिग्ध धर्म-विरोधियों के नाम बताएं। खूंटे से बांधकर जिंदा जला देने जैसे दंडों के अलावा धर्म-विरोधियों की सम्पत्ति छीन कर उसे मुखबिर, धर्म-परीक्षक तथा चर्च के बीच बांट दिया जाता था।

दंडमोचन-पत्र खरीदने के अलावा अब कोई भी व्यक्ति फीस या शुल्क देकर आस्था के बदले में मुक्ति प्राप्त कर सकता था। पुरोहित, बिशप और यात्री-साधु किसी भी विवाह को वैध या अवैध घोषित कर सकते थे। फीस अदा करने पर समस्या सुलझ जाती थी। जन्म से लेकर मृत्यु तक के जीवन के हर कार्य के लिए फीस की व्यवस्था थी-- आत्मा की शांति के लिए फीस थी और बहुत पहले मर चुके लोगो की आत्मा की शांति के लिए भी फीस की व्यवस्था थी। यात्री-साधु अपने साथ छोटी वेदिकाएं लेकर चलते थे जिन्हें वे जब चाहे स्थापित कर देते, पापस्वीकारों को सुनते, पापों के लिए दंड सुनाते और फीस के बदले दंडों से मुक्ति दिलाते।

चर्च के विरुद्ध विद्रोह

चौदहवीं सदी से चर्च के कुछ धर्म-सिद्धांतों का विरोध और बुराईयों के विरुद्ध विद्रोह आरंभ हुआ। कैथोलिक चर्च की भाषा लैटिन थी जिसे आम जनता समझ नहीं पाती थी। यूरोप की किसी भी आधुनिक भाषा में धर्मग्रंथ उपलब्ध नहीं थे। लैटिन, हिब्रू और ग्रीक भाषाओं को पवित्र समझा जाता था। समझा जाता था कि धर्मग्रंथों का यदि किसी अन्य भाषा में अनुवाद किया जाए तो उनकी पवित्रता नष्ट हो जाएगी। मगर इंग्लैंड के जॉन वाइक्लिफ ने कहा कि यदि ईसाई धर्म की वास्तविक जानकारी केवल धर्मग्रंथों में ही मौजूद है और सदाचार का जीवन उन्हीं की कसौटी पर आधारित है, तब धर्मग्रंथों के ज्ञान पर ही जनता की मुक्ति

कला' कहते हैं। अब यह कला सारी दुनिया में फैल गई है। संक्षेप में, मध्ययुगीन जापानी कला की प्रमुख विशेषता है – लालित्य या चारुता।

जापान के प्राचीन धर्म को शिंतो कहते हैं। इस धर्म की मुख्य विशेषता है – प्राकृतिक शक्तियों की पूजा। जापान में बौद्ध धर्म चीन से कोरिया के रास्ते छठी शताब्दी के आरंभ में पहुंचा और आगे की शताब्दियों में यह खूब फला-फूला। बीच की कुछ अवधियों में इसने शिंतो धर्म को लगभग मिटा ही दिया था। जापानी संस्कृति के विकास में बौद्ध धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जापानी भिक्षु और विद्वान बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन करने चीन गए। धीरे-धीरे उन्होंने अपने विशिष्ट बौद्ध-सम्प्रदाय विकसित किए। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं जैन बौद्ध सम्प्रदाय। यह संप्रदाय धर्मग्रंथों के अध्ययन और पूजा-पाठ की बजाए ध्यान को सर्वाधिक महत्व देता है। 'जेन' शब्द संस्कृत के 'ध्यान' शब्द से ही बना है। जापानी कला और विहारों, मंदिरों तथा मूर्तियों के निर्माण पर बौद्ध धर्म की गहरी छाप पड़ी है। बौद्ध मंदिरों में निर्माण में बेशुमार धन खर्च किया गया। नारा में आठवीं शताब्दी में निर्मित एक बौद्ध मंदिर का एक कक्ष करीब 95 मीटर लंबा, 55 मीटर चौड़ा और 50 मीटर ऊंचा था। इस मंदिर में स्थापित बुद्ध की कांसे की मूर्ति करीब दस मीटर ऊंची है।

ईसाई धर्म जापान में 16वीं शताब्दी में पहुंचा और थोड़े समय में ही अनेक जापानी इसके अनुयायी बन गए। तोकुगावा शासक, जिन्होंने जापान को शेष दुनिया से अलग रखने की नीति अपनाई थी, ईसाई धर्म को खतरनाक समझते थे। उन्होंने 17 वीं शताब्दी के आरंभ में इस धर्म *पर प्रतिबंध लगा दिया। अनेक ईसाई मारे गए और दूसरों* को धर्म परिवर्तन के लिए मजबूर किया गया।

मध्ययुग के जापानी लोगों की सांस्कृतिक उपलब्धियों ने आधुनिक जापानी संस्कृति के विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। लेकिन जापान की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था उत्पीड़न पर आधारित थी। इस उत्पीड़न और जापान के अनेक शासकों द्वारा अपनाई गई अलगाव की नीति ने मिल कर जापान की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अनेक घातक प्रभाव छोड़े।

संसार के सभी देशों में मध्ययुग एक ही समय नहीं हुआ। यूरोप और पश्चिमी देशों में मध्ययुग आमतौर से 500 ई० से 1500 ई० तक का समय समझा जाता है।

कहा जा सकता है कि पूर्व के देशों में मध्ययुग पश्चिमी देशों में इसकी समाप्ति के बाद भी चलता रहा। इस काल में कलाओं के विकास में काफी प्रगति हुई। अनेक जनगणों का सम्मिश्रण हुआ और संस्कृतियों के पारस्परिक समन्वय से सभी संस्कृतियां समृद्ध हुई। इस काल में अरबों की सभ्यता सबसे अधिक विकसित थी। अरब सभ्यता ने ज्ञान की वृद्धि में महान योगदान दिया। यूरोप में इस ज्ञान का प्रसार वहां हुए पुनर्जागरण का एक महत्वपूर्ण कारण था। इसका विवेचन हम अगले अध्याय में करेंगे।

इसी काल में भारतीय संस्कृति अधिक समृद्ध हुई। किन्तु पूर्वी देशों में आधुनिकीकरण की शक्तियों का विकास पश्चिमी देशों की अपेक्षा बाद में हुआ। पश्चिमी देशों में मध्ययुग के समाप्त हो जाने पर भी पूर्वी देशों में मध्ययुगीन परिस्थितियां चलती रहीं।

अभ्यास

जानने योग्य तथ्य

1. इस अध्याय में प्राचीन, मध्य और वर्तमान काल का जो अर्थ लिया गया है, उसका विवेचन करो।
2. मध्यकाल में जो प्रदेश विजेण्टाइन साम्राज्य के भाग थे उन पर किन-किन प्राचीन सभ्यताओं का शासन रहा?
3. सामंतवाद के समय यूरोपीय समाज में जो वर्ग थे, उनका वर्णन करो। मध्यकाल के अंतिम वर्षों में किस नए वर्ग का विकास हुआ और क्यों?

4. सामंतवाद के समय यदि तुम निम्नलिखित में से किसी वर्ग में होते, तो लिखो कि अपना समय किस प्रकार बिताते: नाइट, सर्फ, मैनर का स्वामी, स्वतंत्र किसान, मठवासी और समुराई।
5. निम्नलिखित व्यक्तियों के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करो: पोप अर्बन द्वितीय, तैमूर, कान्स्टेनटाइन, अलराजी, चार्लमेन, उमर खय्याम, बलबन, इब्न-सिना, इल्यासु।

करने के लिए कार्य

1. अपने को 800 ई० के लगभग का विश्व-पर्यटक समझकर चीन, जापान, पश्चिम एशिया और पश्चिम यूरोप के विषय में निम्नलिखित कार्य करो। अपनी यात्रा की डायरी लिखो जिसमें लोगों के धर्म, उनके मकान, व्यवसाय, सार्वजनिक भवन या अन्य उल्लेखनीय बातों के विषय में टिप्पणियां हों। इस यात्रा में तुम जो भी वस्तुएं खरीदते हो, विशेषकर चीन और अरब में, उनका उल्लेख करो।
2. मध्यकाल में मनुष्य ने जो नई वस्तुएं बनाईं, जो सुधार किए या खोजें कीं उनकी सूची बनाओ। उस सूची में यह भी लिखो कि यह बात कहां या किस सभ्यता के काल में हुई।
3. निम्नलिखित शीर्षक के अंतर्गत 250 से 300 शब्दों का एक निबंध लिखो:

   'मध्ययुग में पश्चिमी देशों ने पूर्व के देशों से क्या सीखा?'

सोचने और विचार-विमर्श के लिए

1. मध्यकाल की प्रारंभिक शताब्दियां पश्चिमी यूरोप में 'अंधकार युग' क्यों कहलाती हैं?
2. संपूर्ण इतिहास में मनुष्य की व्यापार तथा धर्म-प्रचार की इच्छाएं बहुत कुछ साथ-साथ चली हैं। मध्यकाल के इतिहास से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि में तुम कौन से उदाहरण दे सकते हो?
3. आजकल किसी भी देश के समाज के जीवन-क्रम को सामंतवादी कहना क्यों बुरा समझा जाता है?
4. बहुधा कहा जाता है कि मध्यकालीन यूरोप में चर्च ने ज्ञानदीप को प्रज्ज्वलित रखा और कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि चर्च ने विद्या की उन्नति में रोड़े अटकाए। दोनों कथनों की पुष्टि के लिए प्रमाण दो।
5. लगभग किस समय मध्यकाल की समाप्ति पश्चिम और पूर्व में हुई? मानव की प्रगति में परिवर्तन के विषय में तुम्हारा जो ज्ञान है, उसे ध्यान में रखकर बतलाओ कि यह कहना क्यों कठिन है कि इतिहास का कोई एक काल ठीक समय समाप्त हुआ और दूसरा कोई काल कब आरंभ हुआ।
6. मध्य काल के दौरान पश्चिमी यूरोप में विद्यमान सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं की तुलना भारत और पश्चिम एशिया की तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं से करो। उनकी परस्पर समानताओं और असमानताओं का विवेचन करो।
7. मध्ययुग के अनेक समाजों ने शेष दुनिया से अपने को अलग क्यों रखा? इसका, तुम्हारे मत से, उन समाजों पर क्या प्रभाव पड़ा?

अध्याय 6

आधुनिक युग का आरंभ

करीब चौदहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक के काल में ऐसे कई परिवर्तन हुए जिन्होंने आधुनिक दुनिया की नींव रखने में योग दिया। ये परिवर्तन यूरोप के कुछ देशों में हुए, मगर इनका प्रभाव समूची दुनिया पर पड़ा।

तुम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हो कि मध्यकाल के अंतिम वर्षों में यूरोप मेंअनेक परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्तनों ने सामंती समाज-व्यवस्था को कमजोर कर दिया और उसका विघटन होने लगा। सामंती व्यवस्था के विघटन के साथ ही एक नए प्रकार की समाज व्यवस्था का यूरोप में उदय होने लगा, जिसने जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित किया और जिसके साथ आधुनिक युग का आरंभ हुआ। नए युग की शुरुआत को सूचित करने वाले प्रारंभिक परिवर्तनों में एक था **पुनर्जागरण** (Renaissance) 'रेनेसा' का अर्थ है,पुनर्जन्म। यह नाम आमतौर पर उस काल के लिए प्रयुक्त होता है जो लगभग 1300 ई० से आरंभ हुआ और जब लोगों ने प्राचीन यूनान और रोम के ज्ञान-विज्ञान में विशेष रुचि लेनी शुरू कर दी। मगर रेनेसां का मतलब इससे कहीं अधिक था। इसमें दर्शन, कला, साहित्य, धर्म तथा विज्ञान की ऐसी अनेक उपलब्धियों का समावेश था जिनका प्राचीन काल और रोम का उपलब्धियों से कोई संबंध नहीं था।

एक और परस्पर-संबंधित परिवर्तन था धर्म-सुधार (Reformation)। यह शब्द उस आंदोलन को व्यक्त करता है जो कैथोलिक चर्च की कतिपय प्रथाओं और पोप के अधिनायकत्व के खिलाफ शुरू हुआ था। धर्म-सुधार ने प्रोटेस्टेंटिज्म (विरोधवाद) को जन्म देकर सोलहवीं सदी के आरंभ में प्रोटेस्टेंट चर्च की स्थापना में और सोलहवीं सदी के अंत में कैथोलिक धर्म-सुधार में योग दिया। इन दो परिवर्तनों ने और सामंती समाज के भीतर शुरू हुए सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों ने अंततः सामंती व्यवस्था को खत्म कर दिया।

यूरोप में आधुनिक युग को जन्म देने वाले परिवर्तनों में एक और था– नए देशों की खोज के लिए समुद्री-यात्राओं का सिलसिला। कुछ महत्वपूर्ण आविष्कारों का सहयोग पाकर साहसी नाविक दूर देशों की खोज में निकल पड़े। इन लोगों की मदद के लिए शासक और व्यापारी सामने आए जिन्होंने इन समुद्री-यात्राओं का भारी खर्च उठाया ताकि यात्राओं से होने वाला आर्थिक लाभ उन्हें मिल सके। नाविकों की खोजों से दुनिया के बारे में आदमी का ज्ञान बढ़ा और पुराने मानचित्रों को, जो गलत और अपूर्ण थे, फिर से बनाया गया।

राजनीतिक जीवन में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिन्होंने आगे आने वाले लंबे समय के लिए राजनीतिक घटनाओं की दिशा निर्धारित कर दी। राष्ट्र-राज्यों का उदय होने लगा। शक्तिशाली शासकों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने सामंती लार्डों को अपने अधीन कर लिया। उन्होंने राजनीतिक मामलों में पोप की सत्ता की अवहेलना की और जल्दी ही वे ऐसे राज्य की स्थापना में समर्थ हो गए जहां वे अपनी इच्छानुसार शासन चला सकते थे। इन राज्यों में जिस राजनीतिक व्यवस्था का विकास हुआ उसका स्वरूप निरंकुशतावादी था। राजा एक निरंकुश शासक बन गया।

इस अध्याय में तुम जिस आखिरी घटना के बारे में पढ़ोगे वह है यूरोप में निरंकुश राजतंत्रों के विरुद्ध संघर्ष। इंग्लैंड में हुए इस संघर्ष के बारे में तुम विस्तार से पढ़ोगे, जिसके

फलस्वरूप निरंकुश राजतंत्र को उखाड़ फेंका गया तथा राजा को मौत के घाट उतार दिया गया। बाद में चलकर राजतंत्र को फिर से कायम कर दिया, मगर राजनीतिक सत्ता वहां संसद के हाथों में चली गई।

इस अध्याय में वर्णित घटनाएं 18वीं और 19वीं शताब्दियों के परिवर्तनों का आधार बनीं जिसकी मुख्य विशेषताएं थीं : औद्योगिक पूंजीवाद का विकास, जनतंत्र और राष्ट्रवाद।

सामंती व्यवस्था का विघटन

तुम उन कतिपय परिवर्तनों के बारे में जान चुके हो जो मध्ययुग के यूरोपीय समाजों में घटित हो रहे थे। व्यापार के पुनरुत्थान के साथ शहरों का विकास होता गया। पुराने शहर बड़े हो गए और नए शहरों का उदय हुआ, प्रमुख रूप से उत्पादन और व्यापार के केन्द्रों के रूप में। शहरों ने, जो प्राय: परकोटे से घिरे हुए थे, धीरे-धीरे अपने को सामंती नियंत्रण से मुक्त किया। उनकी अपनी सरकारें थीं और शहरवासी अपने अधिकारियों को चुनते थे। उनके अपने सुरक्षा-सैनिक और न्यायालय थे। सर्फों की तरह उनकी हलचलों पर नियंत्रण नहीं था। वे कहीं भी आ-जा सकते थे और सम्पत्ति खरीद-बेच सकते थे। एक पुराना वाक्-प्रचार भी है : "शहर की हवा आदमी को आजाद बना देती है"। सामंती उत्पीड़न से भाग निकले सर्फों को शहरों में शरण मिलती थी। शहरों ने उत्पादन के लिए आवश्यक नकद फसलों की खेती को प्रोत्साहन दिया और इस प्रकार किसान अपनी उपज के लिए रकम प्राप्त करने लगे। अब किसान लॉर्ड को श्रम की बजाए रकम में अदायगी करने में समर्थ हुए। व्यापार में वृद्धि हुई तो मुद्रा के प्रचलन में भी वृद्धि हुई। सामंती समाजों में मुद्रा का उपयोग बहुत कम होता था। सामंती मेनर अपनी जरूरतों के मामले में लगभग आत्मनिर्भर था। बहुत कम खरीद-फ़रोख्त होती थी। जो थोड़ा व्यापार होता था वह विनिमय से चलता था। मुद्रा के प्रयोग से अर्थ-व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। सामंती समाजों में भूमि आदमी की सम्पत्ति की सूचक थी। कुछ लोगों के पास, विशेषकर चर्च और सरदारों के पास, सोना और चांदी के रूप में सम्पत्ति जमा थी, मगर वह निष्क्रिय सम्पत्ति थी। उस सम्पत्ति से ज्यादा सम्पत्ति नहीं बनाई जा सकती थी। व्यापार और वस्तु-उत्पादन में वृद्धि हुई तो स्थिति बदल गई। उसके साथ ही सामंती अर्थ-व्यवस्था **पूंजीवादी** अर्थ-व्यवस्था में बदलती गई। पूंजीवादी व्यवस्था में सम्पत्ति मुनाफा कमाने के लिए होती है। यह पूंजी को व्यवसाय, व्यापार और उद्योग में लगाकर किया जाता है। जो मुनाफा होता है उसे पुन: अधिक मुनाफा कमाने के लिए लगाया जाता है। ऐसी सम्पत्ति या ऐसे धन को पूंजी कहते हैं। रुपया-पैसा आदमी की सम्पत्ति का मानदंड बनता गया। सामंती समाजों में तीन प्रकार के जन-समुदाय थे : प्रार्थना करने वाले पुरोहित-पादरी, सैनिक या योद्धा (नाइट्स) और मजदूर या वे किसान जो पुरोहित-पादरियों तथा सैनिकों, दोनों के लिए काम करते थे। व्यापार में वृद्धि हुई तो एक नए मध्यवर्ग का उदय हुआ जिसमें व्यापारियों का प्राधान्य था। मध्यवर्ग के लोगों की संख्या यद्यपि छोटी थी। मगर उनके पास धन होने के कारण वे समाज में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगे।

आरंभ में दुनिया के अन्य भागों के साथ जो व्यापार हुआ वह प्रमुखत: पूर्व के देशों की विलास की वस्तुओं से संबंधित था। वह व्यापार इटली के वेनिस, जेनेवा तथा पीसा नगरों के और दक्षिण जर्मनी के नगरों के व्यापारियों के नियंत्रण में था। पंद्रहवीं सदी की महान भौगोलिक खोजों —— पूर्व के देशों के समुद्री-मार्ग की खोज और अमेरिका की खोज —— के साथ व्यापार का स्वरूप भी बदल गया। इस व्यापार पर आरंभ में पुर्तगाल और स्पेन का आधिपत्य रहा और बाद में हालैंड और इंग्लैंड का।

इन परिवर्तनों के साथ-साथ वस्तु-उत्पादन की व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ। आरंभिक मध्ययुग में किसान की जरूरत की गैर-खेती की अधिकांश वस्तुएं किसान के घर में पैदा की जाती थीं और लॉर्डों के लिए सर्फ वस्तुएं बनाते थे। सर्फ प्राय: कुशल कारीगर होते थे। शहरों का विकास शुरू हुआ तो वस्तु-उत्पादन के कार्य शहरों में होने लगे। शहरों में पहुंचकर अलग-अलग शिल्पों में कुशल कारीगरों ने अपने को श्रेणियों में संगठित किया। तुम श्रेणी-व्यवस्था के बारे में पहले पढ़ चुके हो। प्रत्येक शिल्प-श्रेणी में कुशल कारीगर, यात्रा करने वाले आदमी और शिक्षार्थी होते थे। शिल्प-कौशल सीखने के लिए शिक्षार्थी मास्टर-कारीगर की शरण में जाता था। शिल्प सीख लेने के बाद वह या तो वेतन पर यात्रा-व्यक्ति का काम करता था या यदि उसने शिल्प पर अधिकार प्राप्त कर लिया है तो वह स्वयं एक मास्टर-कारीगर बन जाता था। उत्पादन की इकाइयां छोटी होती थीं। उनमें तीन या चार व्यक्ति होते थे और प्रत्येक इकाई की अपनी एक दुकान होती थी। इकाई के भीतर या एक ही श्रेणी की

इकाइयों के बीच कोई भेदभाव नहीं होता था। वस्तुओं की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए श्रेणी-व्यवस्था समर्थ नहीं थी। इसलिए इस व्यवस्था की अवनति हुई और इसका स्थान **पूंजीवादी** व्यवस्था ने ले लिया। श्रेणी-व्यवस्था में असमानताएं प्रकट होने लगीं। मास्टर-कारीगरों ने यात्रा-व्यक्तियों को मास्टर-कारीगर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और वे उन्हें कम वेतन देने लगे। नई व्यवस्था में व्यापारी मास्टर-कारीगरों के लिए कच्चा माल लाता था। कारीगर पहले की तरह अपने औजारों से अपने घरों में चीजें बनाते थे,फिर उन वस्तुओं को वही व्यापारी ले जाता था जो कच्चा माल दे जाता था। इस प्रकार, कारीगरों का, पहले की तरह, अपनी उत्पादित वस्तओं पर अधिकार नहीं रह गया था। वे धीरे-धीरे मजदूरी कमाने वाले श्रमिक बनते गए, हालांकि वे अब भी अपने औजारों से अपने ही घरों में काम करते थे। बाद में इस व्यवस्था का स्थान कारखानों की व्यवस्था ने ले लिया। इस नई व्यवस्था के अंतर्गत उत्पादन पूंजीपति के कारखाने में उसी की मशीनों से होने लगा। मजदूर वेतन पर काम करते थे। कारखाने में उनके स्वामित्व की कोई चीज नहीं थी। खनिज-खनन और धातुकर्म के उद्योगों में यह व्यवस्था सबसे पहले अस्तित्व में आई। इस व्यवस्था के साथ शहरों में वर्गभेद बढ़ता गया और मजदूर-वर्ग का उदय हुआ।

मध्ययुग में, 14वीं सदी से आगे, यूरोप के विभिन्न भागों में सामंती उत्पीड़न के खिलाफ अनेक किसान-विद्रोह हुए। यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि लॉर्डों के अलावा चर्च के अधिकार में भी काफी अधिक भूमि थी। इसलिए चर्च भी सामंती व्यवस्था का एक हिस्सा था। अतः सामंती उत्पीड़न के खिलाफ शुरू हुआ विद्रोह चर्च के खिलाफ भी था। यूरोप के बौद्धिक जीवन पर चर्च का प्रभुत्व था और उन सभी विचारों का दमन होता था जो चर्च के विचारों से मेल नहीं खाते थे। किसान-विद्रोहों के नेता अक्सर ऐसे विचार व्यक्त करते थे जो चर्च की मान्यताओं के विपरीत होते थे। इसलिए उन्हें विधर्मी करार दिया जाता था।

इन परिर्वतनों के कारण सामंती व्यवस्था टूटने लगी, जो शहर लॉर्डों के नियंत्रण से मुक्त थे वे भी सामंती व्यवस्था को तोड़ने में सहयोग देने लगे। बाद में शहर अत्यंत सम्पन्न हो गए। सामंती व्यवस्था में जो राजा एकदम शक्तिहीन थे वे, अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए और लॉर्डों पर अपनी मर्जी लादने के इरादे से, शहर के लोगों की मदद खोजने लगे। उन्होंने अपनी सेनाएं भी रखनी शुरू कर दीं। अब वे सैनिकों के लिए, पहले की तरह, लॉर्डों पर आश्रित नहीं रहे।

इस प्रकार सामंतवाद का अवसान शुरू हो गया, यद्यपि अधिकांश देशों में इसका पूर्ण अंत 18वीं और 19वीं सदियों में ही हुआ। इसके स्थान पर एक नई समाज व्यवस्था का उदय होने लगा। इस अध्याय में तुम जिन अन्य कई परिवर्तनों के बारे में पढ़ोगे उन्होंने इस प्रक्रिया में योगदान दिया।

पुनर्जागरण (रेनेसां) (Renaissance)

'रेनेसां' का शाब्दिक अर्थ है पुनर्जन्म। सीमित अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यूनान और रोम की प्राचीन सभ्यता के ज्ञान-विज्ञान के प्रति फिर से पैदा हुई रुचि के लिए होता है। यह नई रुचि फिर तब पैदा हुई जब कुस्तुन्तुनिया के कई विद्वान यूनानी ग्रंथों की खोज में कुस्तुन्तुनिया और बैजंतीन साम्राज्य के अन्य नगरों में पहुंचे। परिणामस्वरूप हजारों शास्त्रीय ग्रंथ, जिनसे यूरोपवासी सदियों से अपरिचित थे, पहले इटली में और फिर यूरोप के अन्य भागों में प्रचारित होने लगे। शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन ने और यूनान तथा रोम की सभ्यताओं की अन्य उपलब्धियों ने यूरोपवासियों को बड़ा प्रभावित किया। मगर, जैसा कि पहले बताया गया है, पुनर्जागरण केवल प्राचीन ज्ञान और प्राचीन यूनान तथा रोम की उपलब्धियों की बढ़ती जानकारी तक सीमित नहीं था। इसका संबंध कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, विज्ञान और राजनीति के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों से भी है।

पुनर्जागरण का प्रारंभ इटली में हुआ। इसका एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारण यह था कि यूरोप और पूर्व के देशों के बीच हुए व्यापार के पुनरुत्थान ने इटली के शहरों को सर्वाधिक सम्पन्न बना दिया था। यह समूचा व्यापार लगभग पूर्णतः इटली के शहरों के नियंत्रण में था। इटली में कई सारे छोटे-छोटे राज्य थे। सोलहवीं सदी में अधिकांश इटली पर पांच प्रमुख राज्यों का नियंत्रण था। ये पांच राज्य थे—— मिलान, वेनिस, फ्लोरेंस, नेपल्स और चर्च का राज्य। इटली के शहरों का विकास सामंती नियंत्रण से मुक्त वातावरण में हुआ था। इस आजादी ने चिंतन और साहस की भावना को प्रोत्साहन दिया था। इटली के इन राज्यों के शासक ज्ञान-विज्ञान और कला के संरक्षक थे।

यूरोप के बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन पर सदियों तक कैथोलिक चर्च का प्रभुत्व रहा था। पुनर्जागरण ने चर्च के इस प्रभुत्व को कमजोर बना दिया। ईसाइयत के पहले के

शास्त्रीय ज्ञान और प्राचीन यूनान तथा रोम की सांस्कृतिक उपलब्धियों की जानकारी ने भी चर्च के प्रभुत्व को तोड़ने में महत्व की भूमिका अदा की।

मानवतावाद

पुनर्जागरण की विचारधारा की मुख्य विशेषता थी मानवतावाद। यह पुनर्जागरण का केन्द्र बिंदु था। बुनियादी तौर पर, यह दैवी मामलों से मानव के मामलों की ओर स्पष्ट झुकाव था। मानवतावाद एक ऐसी विचारधारा थी जिसमें मानव का गुणगान किया गया, उसकी सारभूत मान-मर्यादा पर बल दिया गया, उसकी अपार सृजन-शक्ति में अटूट आस्था व्यक्त की गई, और व्यक्ति के स्वातंत्र्य तथा व्यक्ति के अहरणीय अधिकारों की घोषणा की गई। इसके सरोकार सभी तरह के सांसारिक सुख-दुःख भोगने वाले रक्त-मांस के मानव से था। इसने धार्मिक तपस्या का विरोध किया और मानव के सुख-भोग के अधिकार का तथा सांसारिक इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति किए जाने का पुरजोर समर्थन किया। इसने दैवी तथा पारलौकिक के स्थान पर मानवीय तथा प्राकृतिक को गौरवान्वित किया। मानवतावादियों ने धार्मिक तप का, शरीर को यातनाएं देने का और सन्यास का विरोध किया, मखौल तक उड़ाया। उन्होंने मानव से आग्रह किया कि वह चर्च द्वारा प्रतिपादित परलोक की चिंता छोड़कर इसी धरती पर सुख प्राप्त करने का प्रयास करे। उनके उद्गार इस आस्था से ओत-प्रोत थे कि सक्रिय दिमाग व शरीर वाला व्यक्ति दुनिया को जानने और नियंत्रित करने में करिश्मे कर दिखाने में और अपनी खुशी को निर्धारित करने में समर्थ होता है। बलपूर्वक कहा गया कि मानव को ठीक से समझने के लिए मानवता का ही अध्ययन करना आवश्यक है, न कि दैवत्व का।

पंद्रहवीं सदी के इतालवी मानवतावादी पिको डेल्ला मिरांदोला ने, जिन्होंने दूर-दूर की यात्राएं की थीं और विभिन्न दर्शनों का अध्ययन किया था, नौ सौ धारणाओं की एक सूची प्रकाशित की थी। उन्होंने अपने लेखन में पुनर्जागरण के इस विश्वास को व्यक्त किया कि मानव में असीम क्षमताएं हैं। उन्होंने लिखा : 'आदमी से अधिक अद्भुत कुछ भी नहीं है'। मैंने यह बात अरबों की कुछ कृतियों में पढ़ी है। 'मानव एक महान चमत्कार है'। इन कथनों का आशय क्या है? अपनी चिंतन-शक्ति और बुद्धि के कारण मानव समस्त प्राणियों का राजा है। केवल ईश्वर और देवदूत ही उससे ऊपर हैं। मगर यही कारण पर्याप्त नहीं है। मनुष्य सबसे सौभाग्यशाली प्राणी है। क्यों? क्योंकि ईश्वर ने सभी प्राणियों में केवल मानव की ही क्षमताओं की सीमा नहीं बांधी है। केवल मानव को ही अपनी इच्छानुसार चुनाव करने की स्वतंत्रता मिली हुई है और वह अपने को इच्छानुसार किसी भी ढांचे में ढाल सकता है। पुनर्जागरण काल के व्यक्ति ज्ञान के भूखे थे। उन्होंने अनुभव किया कि मनुष्य का जीवन महत्वपूर्ण है, कि मनुष्य का आदर और अध्ययन करना आवश्यक है, कि इसी धरती पर मनुष्य के जीवन को सुधारने के प्रयास किए जाने चाहिए। मानव जीवन को इस तरह महत्व दिये जाने के बाद साहित्य और इतिहास अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र बन गए। साहित्य और इतिहास को अब मानविकी (Humanities) कहा जाने लगा। इनका उद्देश्य मुख्य रूप से मानव के इस संसार के क्रियाकलापों को समझना था, न कि मृत्यु के उपरांत के जीवन को।

मानवता की इस नई भावना की अभिव्यक्ति नई कला और नए साहित्य में हुई। पुनर्जागरण काल के कलाकारों ने अपने विषय तो बाइबल से लिए, परन्तु मानव का चित्रण समस्त पार्थिव सौंदर्य और ओज के साथ किया। पुनर्जागरण काल के लेखकों ने भी मुख्यतः मानव को ही अपनी कृतियों का विषय बनाया; जैसे, शेक्सपीयर ने लिखा:

> कितनी अनुपम कृति है मनुष्य ! कितनी
> श्रेष्ठ है मनुष्य की बुद्धि ! कितनी असीम
> हैं मनुष्य की क्षमताएं ! रूप और गति
> में कितना श्लाघ्य है मानव ! अपने
> कार्यों में देवदूतों के समान है मानव !
> अपनी बुद्धि में ईश्वर के तुल्य है मानव!
> प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है मानव......
>
> —हैमलेट, अंक II दृश्य (II)

कला और स्थापत्य

पुनर्जागरण काल की कुछ महानतम उपलब्धियां चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला के क्षेत्र में देखने को मिलती हैं। पुनर्जागरण काल के कलाकारों ने बाइबल के विषयों का उपयोग किया, परन्तु इन विषयों की उन्होंने जो व्याख्या की उसमें परंपरागत धार्मिक दृष्टिकोण को नहीं अपनाया। कला ने अब एक ऐसी स्वतंत्र गतिविधि का स्वरूप प्राप्त किया जो मध्ययुग में कहीं नहीं था। मध्ययुगीन कला का उद्देश्य था नैतिक मूल्यों और धार्मिक

शिक्षाओं को व्यक्त करना। जिन व्यक्तियों का चित्रण किया जाता था वे रक्त और मांस के व्यक्ति नहीं थे। कलाकार ज्यादातर गुमनाम होते थे और समाज में उनका स्थान निम्न था। वे कारीगरों के समूह के रूप में काम करते थे और उनका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था। पुनर्जागरण काल में कलाकार की अपनी स्वतंत्र पहचान बनी, उसकी अपनी शैली थी और उसे समाज में अत्यधिक सम्मान मिला।

पुनर्जागरण काल के सभी कला-रूपों में सबसे ज्यादा विकास चित्रकला का हुआ। पुनर्जागरण काल के कलाकार कला को जीवन का प्रतिरूप समझते थे। इसके लिए प्रकृति तथा मानव, पर्वतों, पेड़-पौधों तथा पुशओं और मानव की शरीर-रचना का गहराई से अवलोकन करना आवश्यक था। कलाकारों ने प्रकाशिकी तथा ज्यामिति का अध्ययन किया और अपने चित्रों में परिप्रेक्ष्य का भी उपयोग किया। उन्होंने मानव के हाव-भावों की आंतरिक व्यवस्था को समझने के लिए शरीर-रचना विज्ञान का अध्ययन किया। संसार की एक महानतम प्रतिभा लियोनार्दो द विंची ने, न केवल मानव-शरीर की रचना का गहन अध्ययन किया, बल्कि हलचलों को व्यक्त करने के लिए यह जानने का भी प्रयास किया कि हलचलों के दौरान शरीर के विभिन्न अवयव किस तरह का आकार ग्रहण करते हैं।

कला से इंद्रिय-सुख प्राप्त करना कला का न्यायोचित उद्देश्य माना गया। पुनर्जागरण की दृष्टि में दुनिया सुंदर और सुखमय थी। कलाकारों ने मानव के धार्मिक पहलुओं की बजाय उसके भौतिक पहलुओं पर ध्यान दिया। मेरी और सुखमय थी। कलाकारों ने मानव के धार्मिक पहलुओं की बजाय उसके भौतिक पहलुओं पर ध्यान दिया। मेरी के रूप में प्रस्तुत किया गया, न कि धार्मिक प्रतीकों के रूपों में। कलाकारों ने भौतिक जगत में सौंदर्य और सुसंगति के दर्शन किए। अपनी कृतियों में उन्होंने मानवाकृतियों को प्रकृति के किसी भी अन्य प्राणी से अधिक सुंदर रूपों में प्रस्तुत किया। उनकी मानवाकृतियां 'मानव की एक नई प्रजाति' मानी गई। पुनर्जागरण काल के कलाकारों की

लियोनार्दो द विंची का बनाया चित्र "दि लास्ट सपर" (अंतिम भोज)

लियोनार्दो द विंची का बनाया चित्र "मोनालिसा"

कृतियों में जो परिपूर्णता थी वह महज दैवी नहीं थी। वह मानवीय भी थी।

पुनर्जागरण की चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति इटली के तीन कलाकारों की कृतियों में देखने को मिलती है। वे हैं —लियोनार्दो द विंची, माइकेल एंजिलो और रफेल। इनसे पोप और मेडिची परिवार के सदस्यों ने कलाकृतियों का निर्माण करवाया। लियानार्दो द विंची की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे चित्रकार, मूर्तिकार, यंत्रविद्, वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि और गायक, सभी थे। उन्होंने एक हवाई जहाज की भी योजना बनाई थी। उनके अनेक आरेख मिले हैं जिनमें उनकी सृजनात्मक प्रतिभा लक्षित होती है। उनके दो सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्र हैं — 'द लास्ट सपर' (अंतिम भोज) और 'मोनालिसा'। एक मूर्तिकार के रूप में माइकेल एंजिलो की प्रतिभा यूनानी मूर्तिकारों के टक्कर की थी। वे एक श्रेष्ठ चित्रकार और वास्तुविद् भी थे। उनके सर्वश्रेष्ठ चित्र वेटिकन (रोम) के सिस्तीन गिरजाघर की छत में अंकित हैं। उन्होंने छत में नौ पैनलों में अपने चित्रों को सजाया। ये चित्र ईसाई आख्यानों पर आधारित हैं, मगर इनमें गहरी मानवीय संवेदनाएं व्यक्त हुई हैं। इन चित्रों की, जैसे कि **द लास्ट जजमेंट** (अंतिम न्याय) और **द फाल आफ मैन** (मानव का पतन) की, गणना संसार की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृतियों में की जाती है।

रफेल भी इटली के ही चित्रकार थे और लियोनार्दो द विंची और माइकेल एंजिलो के समकालीन थे। उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति यीशू मसीह की मां मेडोना का चित्र है। रफेल की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों में की जाती है।

माइकेल एंजिलो की मूर्ति पियाता, जिसमें मेरी के घुटनों पर रखे यीशू मसीह के शरीर को दिखाया गया है।

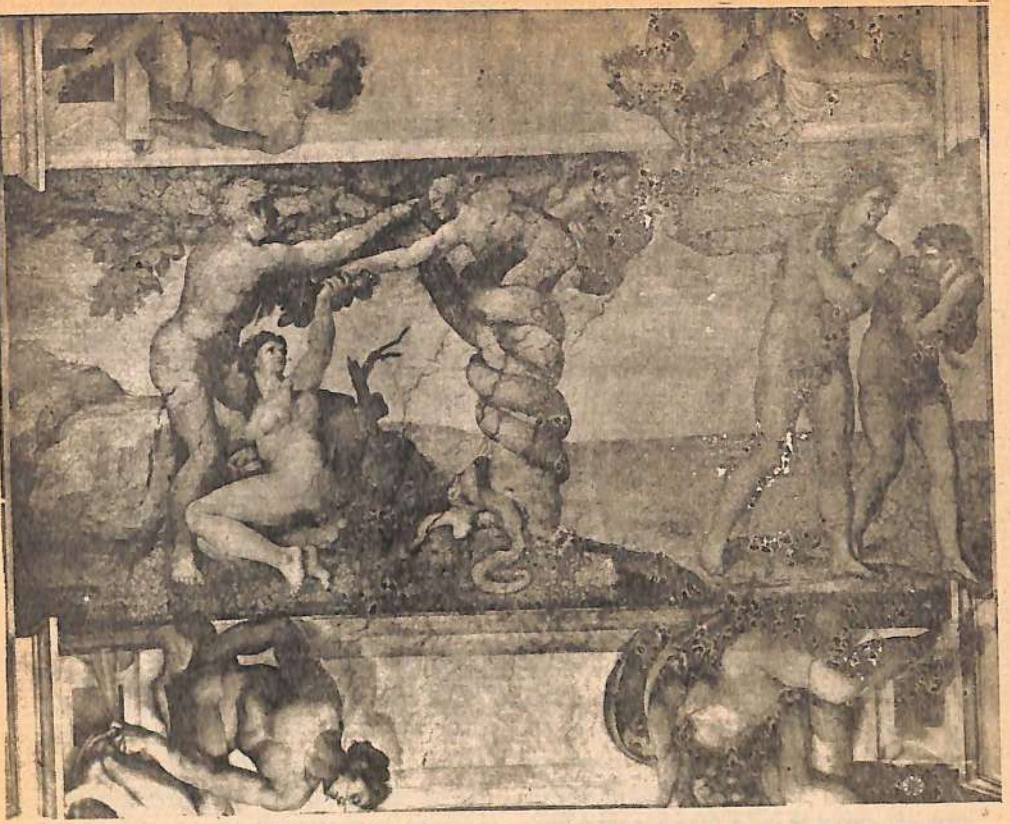

माइकेल एंजलो का चित्र "दि फाल ऑफ मैन" (मानव का पतन)

आरंभिक पुनर्जागरण काल के सभी कलाकारों ने अपने चित्रों के विषय ईसाई धर्म से चुनें और स्वर्ग, नरक तथा अंतिम न्याय के दृश्यों को गिरजाघरों की दीवारों तथा अन्य स्थानों पर अंकित किया। बाद के कलाकार यूनानी तथा रोमन आख्यानों में पैदा हुई नई रुचि से प्रभावित हुए और उन्होंने यूनानी तथा रोमन विषयों के साथ ईसाई कथाओं का खुलकर मिश्रण किया। जिन्होंने गैर-धार्मिक विषयों का भी चित्रण किया। मगर उनके प्रत्येक विषय का चित्रांकन मानवता से ओतप्रोत था।

पुनर्जागरण काल की मूर्तिकला में भी मोटे तौर पर वैसा ही परिवर्तन हुआ जैसा कि चित्रकला में हुआ। मध्ययुग में मुख्यतः ईसाई संतों की मूर्तियां बनाई जाती थीं और स्थापत्य में धार्मिक विषयों का चित्रण होता था। पुनर्जागरण काल की मूर्तिकला की मुख्य विशेषता यह है कि अब मुक्त रूप से खड़ी मूर्तियां बनने लगीं। चित्रकला की तरह, शरीर-रचना से संबंधित नए ज्ञान ने और सौंदर्य के नए मानदंडों ने मूर्तिकला को भी प्रभावित किया।

पुनर्जागरण काल में गोथिक स्थापत्य का अवसान हुआ। ईसा की 12वीं और 13वीं सदियों में कैथीड्रलों और गिरजाघरों के निर्माण में गोथिक शैली का खूब इस्तेमाल हुआ था। कमानी छतें, नुकीले मेहराब और टेके इस स्थापत्य-शैली की बुनियादी विशेषताएं थीं। गोथिक स्मारकों में उत्तुंग शिखर होते थे। उनमें रंगीन कांच की खिडकियों और नक्काशीदार मोहरों का इस्तेमाल होता था

और उन्हें पौराणिक प्राणियों से अलंकृत किया जाता था। पुनर्जागरण काल के वास्तुविद् गोथिक स्थापत्य को तापसिक और पारलौकिक मानते थे। उन्होंने इसे "गोथिक" नाम भी इसीलिए दिया था कि वे इसे तुच्छ तथा हेय मानते थे। स्थापत्य की नई शैलियों का विकास पहले इटली में शुरू हुआ और बाद में यूरोप के अन्य भागों में। रोम स्थित सेंट पीटर का गिरजाघर नई शैली का सर्वोत्तम नमूना है। इसका निर्माण ब्रामंते ने शुरू किया था और बाद में माइकेल एंजिलो ने भी इसके निर्माण में योग दिया। नई शैली के ये भवन, जिनमें से अनेक गिरजाघर थे, विशुद्ध गैर-धार्मिक भावों को –– 'लौकिक जीवन में सुख और मानवीय उपलब्धियों में गौरव' के भावों को –– व्यक्त करते हैं।

पुनर्जागरण काल का साहित्य

साहित्य पर पुनर्जागरण के प्रभाव की सबसे मुख्य विशेषता यह थी कि इस काल में जनता की क्षेत्रीय अथवा देसी भाषाओं का साहित्य-लेखन में उपयोग होने लगा। ईसा की करीब 14वीं सदी तक यूरोप की इतालवी, स्पेनी, फ्रांसीसी, जर्मन, अंग्रेजी आदि जनता की भाषाओं में नहीं के बराबर साहित्य लिखा गया था। सदियों तक शास्त्रीय और साहित्यिक ग्रंथ लैटिन में ही लिखे जाते रहे। लैटिन को जनसमुदाय के केवल थोड़े से लोग ही समझ पाते थे। पुनर्जागरण काल में यूरोपीय भाषाओं का साहित्यिक भाषाओं के रूप में उदय हुआ और इन भाषाओं का विकास आरंभ हुआ। थोड़े समय में ही इन भाषाओं ने काव्य, नाटक तथा कथानक के क्षेत्रों में लैटिन का स्थान ले लिया। मगर दर्शन और विज्ञान के विषयों के लिए आगे कुछ समय तक लैटिन का इस्तेमाल होता रहा। पुनर्जागरण काल के लेखकों को लैटिन पर और यूरोप की दूसरी शास्त्रीय भाषा ग्रीक पर अधिकार प्राप्त था। परंतु उन्होंने अपनी स्थानीय भाषाओं में भी लिखना पसंद किया। इस परिवर्तन का उस समय यूरोप के विभिन्न देशों में पैदा हो रही राष्ट्रीय चेतना से गहरा संबंध था।

यूरोप की एक आधुनिक भाषा में लिखी गई पहली महत्वपूर्ण कृति दांते की **डिवाइन कामेडी** है। दांते ने लैटिन में भी काफी लिखा, पर उसने अपने तुस्कान राज्य की भाषा में ही लिखना पसंद किया। बाद में तुस्कान का इतालवी भाषा में विकास हुआ। महान लेखक पेट्रार्क ने भी दांते का अनुकरण किया। इतिहासकार उसे मानवतावाद का

इरास्मस

संस्थापक मानते हैं। दांते की तरह उसने भी इतालवी भाषा में अपने काव्य की रचना की। पुनर्जागरण काल में धार्मिक विषयों के अलावा अन्य विषयों पर भी अनेक कृतियां लिखी गईं जो अपने समय में ही ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं और आज भी श्रेष्ठ कृतियां मानी जाती हैं।

पुनर्जागरण के उत्तरी यूरोप के लेखकों में एक प्रमुख लेखक थे हालैंड-निवासी इरास्मस, जिन्होंने चर्च की बुराइयों का खूब मखौल उड़ाया। दूसरा लेखक थॉमस मोर इंग्लैंड का था। उसने अपनी **यूटोपिया** (Utopia) नामक पुस्तक में एक आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत किया। फ्लोरेंस के इतिहासकार मैकियेवली को आधुनिक राजनीति दर्शन का पिता कहा जाता है। उसने अपनी कृति प्रिंस (The Prince) में उस 'राज्य' की नई धारणा प्रस्तुत की जो यूरोप में उदित हो रहा था। उसने सफलतापूर्वक शासन करने के तरीके भी बतलाए। मैकियेवली ने राज्य को स्वतंत्र और सर्वसत्ता-सम्पन्न माना और कहा कि धार्मिक मामले राजनीतिक मामलों से अलग रखे जाने चाहिए। स्पेनवासी सर्वांतिस ने अपनी कृति **डॉन क्विजोट** (Don Quixote) में मध्ययुगीन नाइटों और शूरवीरता के उनके विचारों का

में भारत में पहली रेल लाइन बिछाई गई।

कच्चे माल और कारखाने में बने माल के ढोने की जरूरत के कारण, इंग्लैंड और दूसरे देशों में नहरें बनाई गईं और सड़कों का विकास किया गया। पक्की सड़कें बनाने की प्रणाली मैकऐडम (McAdam) ने निकाली। जल मार्गों से यातायात की सुविधाओं को बढ़ाने के लिए जो अपेक्षाकृत काफी सस्ता पड़ता था, इंग्लैंड ने नदियों और झीलों को नहरों से जोड़ना आरंभ किया। नहर बनाने का काम यूरोप और अमरीका तक फैल गया तथा सस्ता

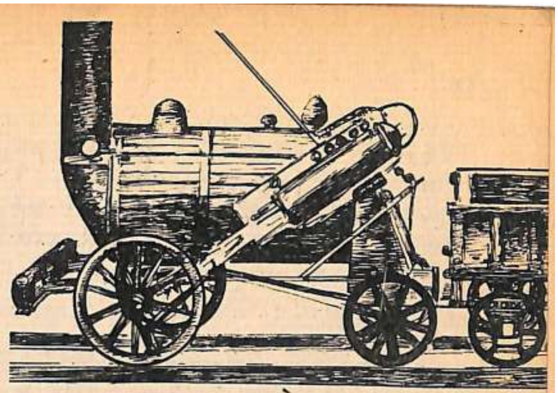

स्टीफेंसन के "राकेट" का नमूना

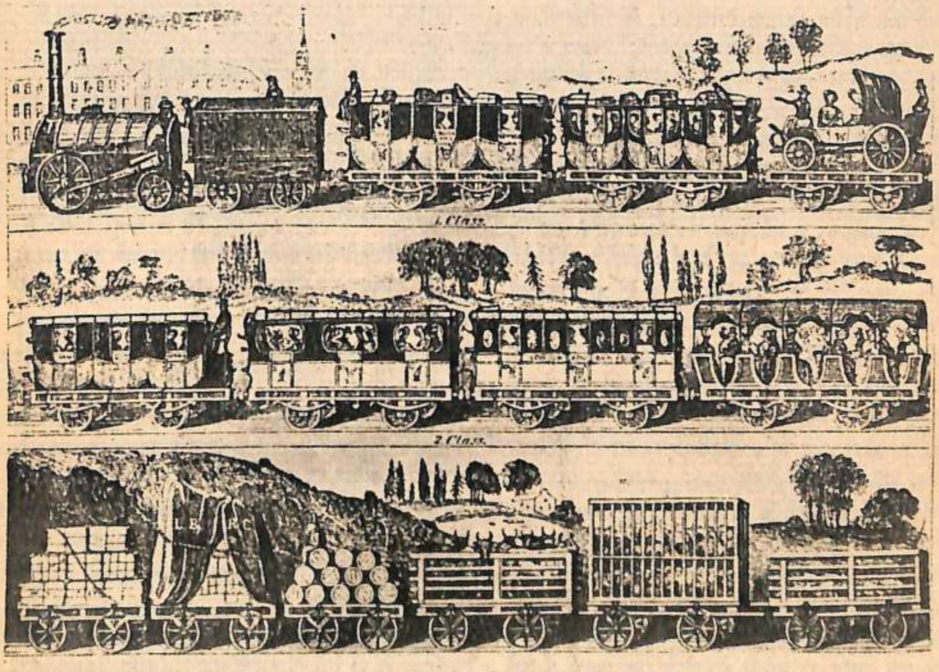

1837 ई. में बनाया गया ब्रिटिश रेलवे का एक चित्र

यातायात उपलब्ध कराने में इससे काफी मदद मिली, खासतौर पर जब भाप के इंजन से चलने वाले स्टीमर का आविष्कार हुआ।

यातायात के साधनों में सुधार होने से मनुष्य, सामान और संदेश, सबको लाने ले जाने में बहुत आसानी हो गई। रॉलैंड हिल ने पेनी पोस्ट का विचार सरकार के सामने रखा। इससे पत्रों द्वारा जल्दी से और सस्ती दरों पर संदेश भेजना संभव हो गया। यह पद्धति उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही इंग्लैंड में काम में लाई जाने लगी। थोड़े दिनों बाद भारत तथा अन्य देशों ने इस पद्धति को अपना लिया। इस पद्धति के द्वारा मनुष्य अपने पत्र देश के अंदर किसी भी स्थान से किसी भी स्थान तक एक सी सस्ती दर पर भेज

सकते थे। इसमें स्थानों की दूरी के अनुसार डाक खर्च कम-ज्यादा नहीं लिया जाता था। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों ने अपने खरीद-बिक्री के कार्य में चाहे वे दूर के थे चाहे नजदीक के, पेनी पोस्ट का उपयोग करके बहुत फायदा उठाया।

कृषि में क्रांति

कृषि में भी क्रांति हुई। यह स्वाभाविक ही था कि अधिक अनाज उपजाने के लिए खेती करने के तरीकों में परिवर्तन हो। खेती के नए औजार, जैसे जमीन तोड़ने के लिए इस्पात का हल और हेंगी (harrow), बीज बोने के लिए नाली खोदने की मशीन (drill) बनाई गई, और कुदाली का स्थान घोड़े से खींची जाने वाली मशीन ने ले लिया। फसल काटने और दौनी करने के लिए भी मशीनों का आविष्कार किया गया

किसान जमीन में पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में खाद का प्रयोग करने लगे और भूमि की उत्पादकता को अदल-बदल कर बोने लगे। इस पद्धति के अंतर्गत जमीन के किसी टुकड़े पर फसलें अदल-बदलकर लगाई जाती हैं, जैसे कि पहले गेहूँ और जौ, फिर तिनपतिया घास या मक्का-ज्वार, फिर गेहूं। इसमें मध्यकाल की भांति खेत को हर तीसरे वर्ष बिना बोए नहीं छोड़ना पड़ता। फसल बदलना बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि भिन्न-भिन्न फसलें भूमि से भिन्न-भिन्न प्रकार की खुराक लेती हैं। इसके अतिरिक्त तिनपतिया घास की फसल या सनई उगाने से भूमि की उत्पादकता उसे खाली छोड़ने की अपेक्षा अधिक बढ़ती है।

इंग्लैंड के भूस्वामी भी अपने फार्मों का आकार बढ़ाने लगे हैं। 'बाड़ा आंदोलन' के फलस्वरूप पहले ही बहुत सी भूमि की चकबंदी हो चुकी थी जैसा कि तुम पहले पढ़ चुके हो। जमींदारों ने गांव में तितर-बितर फैली हुई अपनी सारी भूमि की पट्टियों की चकबंदी इस प्रकार की कि उनकी सारी भूमि एक स्थान पर इकट्ठी हो जाए। ऐसा करने में बड़े जमींदारों ने बेईमानी करके छोटे किसानों की छोटी टुकड़ियां भी अपनी भूमि में मिला ली थीं। कभी-कभी बड़े जमींदार गांव के परती पड़े घास के मैदानों को भी अपनी भूमि में मिला लेते थे। इस प्रकार छोटे जमींदारों और काश्तकारों के लिए चरागाह भी नहीं रह गए। उन दिनों संसद में भी बड़े जमींदारों का बहुत प्रभाव था जिससे वे मनचाहे कानून बनवाने में सफल हो गए। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से किसानों को उनकी जमीन से बेदखल कर दिया गया। जब उनके पास जीवन-निर्वाह का कोई अन्य साधन नहीं रहा तब वे नए औद्योगिक कस्बों और शहरों में चले गए। वहां कारखाने के मालिक जो भी मजदूरी देते उसी को उन्हें स्वीकार करना पड़ता। इस प्रकार उद्योगों की तो उन्नति हुई, किंतु छोटे किसानों का शोषण हुआ।

औद्योगिक क्रांति का प्रसार

मशीन का प्रयोग प्रारंभ होने के लगभग पचास वर्ष बाद इंग्लैंड संसार का प्रमुख औद्योगिक राष्ट्र बन गया। उदाहरण के लिए, सन् 1813 ई० में इंग्लैंड भारत को 50,000 किलोग्राम सूती कपड़ा भेजता था। सन् 1855 ई० में यह मात्रा बढ कर 25 लाख किलोग्राम हो गई। इन्हीं वर्षों में खानों से खोदे जाने वाले कोयले की मात्रा 150 लाख टन से बढ़कर 640 लाख टन हो गई और कोयला इंग्लैंड द्वारा निर्यात की जाने वाली एक महत्वपूर्ण वस्तु बन गया। इसी काल में इंग्लैंड में पिग लोहे का उत्पादन 6,10,000 टन से बढ़कर लगभग 30 लाख टन हो गया। इंग्लैंड में मशीनों और औजारों के लिए जितने पिग लोहे की जरूरत थी उसके लिए तो यह पिग लोहा पर्याप्त था ही, दूसरे देशों को भी बड़ी मात्रा में इसका निर्यात होने लगा।

अन्य देशों में औद्योगिक क्रांति

सन् 1815 ई० में नेपोलियन की हार तथा 23 वर्षों की लगातार लड़ाई खत्म होने के बाद यूरोपीय महाद्वीप में औद्योगिक क्रांति की कुछ प्रगति हुई। फ्रांस, बेल्जियम, स्विटजरलैंड और जर्मनी में मशीनों का प्रयोग होने लगा। किन्तु इनमें से कुछ देशों में सरकारों की अस्थिरता तथा जन-असंतोष के कारण कुछ समय तक उद्योगों का पूर्ण विकास न हो सका।

सन् 1850 ई० तक फ्रांस का, लौह उद्योग पनप कर विकसित ही हो रहा था हालांकि उसको लौह अयस्क और कोयला, दोनों का आयात करना पड़ता था। यद्यपि सन् 1865 ई० तक इस्पात बनाने में जर्मनी का स्थान संसार में दूसरा था तथापि इंग्लैंड उससे बहुत आगे था। जर्मनी में औद्योगिक विकास देर में प्रारंभ हुआ किन्तु सन् 1870 ई० के बाद जब जर्मनी के राज्य एक राष्ट्र के रूप में संगठित हो गए तब उसकी आश्चर्यजनक उन्नति हुई। कुछ ही वर्ष बाद जर्मनी इंग्लैंड का प्रतिद्वंद्वी बन गया।

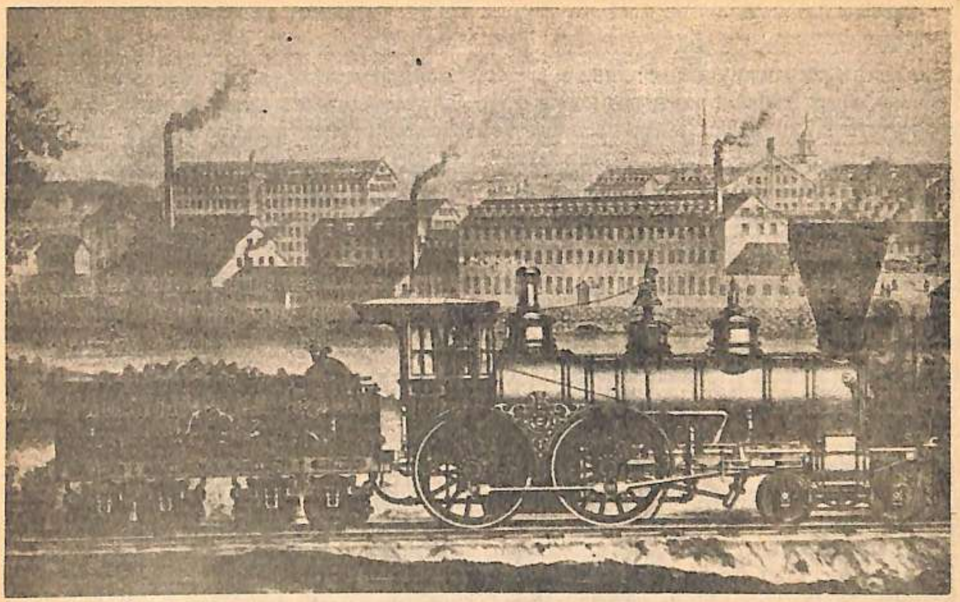

यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के एक औद्योगिक क्षेत्र का भू-दृश्य

यूरोप की बड़ी शक्तियों में रूस में ही सबसे बाद में जाकर औद्योगिक क्रांति हुई। रूस में खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे, किंतु पूंजी और स्वतंत्र मजदूरों की कमी थी। जब सन् 1861 ई० में रूस ने कृषि-दासों को स्वतंत्र कर दिया और उसे विदेशों से पूंजी मिल गई तब रूस के उद्योगों की बहुत उन्नति हुई। किंतु रूस का औद्योगिक विकास पूरी तेजी से सन् 1917 ई० की क्रांति के बाद ही हुआ।

संयुक्त राज्य अमरीका में मशीनों का प्रयोग सन् 1800 ई० के पूर्व इंग्लैंड से आजादी मिलने के बाद ही हो गया था तथा बहुत से कारखाने बन गए थे। सन् 1860 ई० तक वहां सूती कपड़ा, इस्पात और जूता उद्योग बन चुके थे। सन् 1870 ई० के बाद अमरीकी उद्योगों का विकास तेजी से हुआ।

एशिया के देशों में सबसे पहले जापान का औद्योगीकरण हुआ। मध्यकाल में जापान में मुख्य रूप से रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तन और खिलौने बनाए जाते थे किंतु 19वीं सदी के अंत तक जापान ने इस्पात, मशीनें, धातु की वस्तुएं और रसायनिक पदार्थ इतनी प्रचुर मात्रा में बनाने प्रारंभ कर दिए थे कि वह उनका निर्यात भी करने लगा।

व्यापार में प्रतियोगिता और साम्राज्यवाद का उदय

सबसे पहले उद्योगों का विकास इंग्लैंड में हुआ, अतः उसने सारे संसार के बाजारों पर अधिकार कर लिया। जब अन्य देशों में मशीनों का इस्तेमाल होने लगा तब उन्होंने महसूस किया कि वे इंग्लैंड की कम कीमतों का मुकाबला नहीं कर सकते। बहुत से देशों ने इस उद्देश्य से कि ये सस्ती वस्तुएं उनके देश में न आएं संरक्षी आयात कर (Protective Tariffs) लगाए। दूसरे शब्दों में इन देशों ने ऐसे कानून बनाए कि जिनके अंतर्गत आयातित ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं पर ऊंची दरों से कर लगें जिसके फलस्वरूप स्थानीय तौर पर बनी उसी तरह की वस्तुएं उनके मुकाबले में सस्ती हों और बिकें। नवजात उद्योग को संरक्षण देने के लिए संरक्षी आयात कर का काफी प्रचलन हो गया।

उद्योगों के लिए कच्चा माल और तैयार माल की बिक्री के लिए बाजारों की खोज में अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता प्रारंभ हुई। पहले इंग्लैंड ने और बाद में अन्य पश्चिमी देशों ने एशिया, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका में कच्चे माल के लिए नए स्रोतों और बाजारों की खोज प्रारंभ कर दी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जापान का औद्योगीकरण हो गया और वह भी इस होड़ में शामिल हो गया। इस होड़ में उन देशों ने, जिनका औद्योगीकरण हो चुका था, लगभग उन सारे देशों को, जिनका औद्योगीकरण नहीं हुआ था, अपने उपनिवेशों, प्रभाव क्षेत्रों या आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व के प्रदेशों में बदल दिया। इस प्रकार साम्राज्यवाद का उदय हुआ, जिसके अंतर्गत शक्तिशाली राष्ट्रों ने अपने प्रभुत्व में आए हुए देशों की अर्थव्यवस्था को अपना स्वार्थ साधने के लिए पूरी तरह से अपने आधीन कर लिया। उन्होंने इन देशों को अपनी शर्तों पर माल खरीदने और बेचने के लिए विवश किया। उपनिवेशों के लिए होड़ के कारण अनेक अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष हुए। उन देशों में, जिनमें औद्योगीकरण देर से प्रारंभ हुआ था और जिनके पास अपने उपनिवेश नहीं थे, उन देशों से, जिनके पास पहले से उपनिवेश थे, जबरदस्ती उपनिवेश छीनने चाहे। जिन देशों के पास उपनिवेश थे उन्होंने और अधिक उपनिवेश प्राप्त करने के प्रयत्न किए।

औद्योगीकरण के परिणाम

गांव से शहर को

औद्योगिक क्रांति से पहले संसार की अधिकांश जनता गांवों में रहती थी और कृषि पर निर्भर थी। लोगों की प्रायः

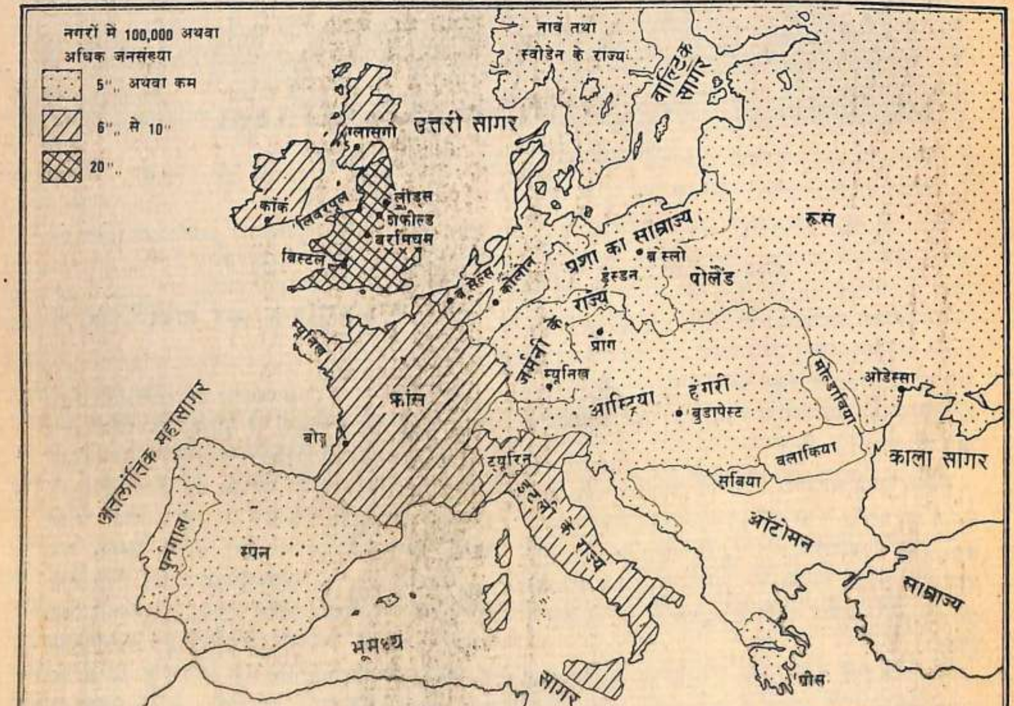

सन् 1850 में यूरोप के महानगरों की जनसंख्या। यहाँ केवल वे ही महानगर दिखाए गए हैं जिनकी जनसंख्या एक लाख या उससे अधिक थी और जो सन् 1800 से 1850 के बीच विकसित हुए।

सभी आर्थिक आवश्यकताएं गांव में ही पूरी हो जाती थीं। सारी जनता किसी न किसी प्रकार जमीन से बंधी थी। जैसा कि तुम जानते हो, सभ्यता के प्रारंभ से जो भी कस्बे और शहर बसे वे सभी शिल्प और राजनीतिक प्रशासकीय नियंत्रण के केंद्र बन गए। देश के अंदर शहरों और कस्बों के बीच और विदेशों से भी व्यापार होता था। इससे बहुत थोड़ी जनता ही प्रभावित होती थी।

औद्योगीकरण के विकास के बाद स्थिति पूरी तरह बदल गई। शहर आर्थिक जीवन के केन्द्र बन गए। जो नए शहर या कस्बे बसे वे राजनीतिक और प्रशासनीय केंद्र होने की अपेक्षा उद्योगों के केंद्र के रूप में अधिक महत्व रखते थे। अब काफी जनता शहरों में रहने लगी। इन शहरों में हजारों मनुष्य औद्योगिक कारखानों में काम करते थे। इस जनसंख्या का भूमि से कोई संबंध न था। कुछ ऐसे देशों में जिनमें पूर्ण रूप से औद्योगीकरण हो चुका है, 20 प्रतिशत से भी कम जनसंख्या का संबंध भूमि से है।

यद्यपि हमारे देश की बहुसंख्यक जनता आज भी गांवों में रहती है, उद्योग पर निर्भर रहनेवाली आबादी धीरे-धीरे बढ़ रही है। जिन देशों का बहुत अधिक औद्योगीकरण हुआ है, उनमें देश के सकल आय में औद्योगिक उत्पादन का हिस्सा कृषि की तुलना में बहुत अधिक है। नगरीय और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थाएं परस्पर निर्भर और एक दूसरे की पूरक हैं।

नगरों में जनसंख्या के अधिकांश भाग के एकत्र हो जाने के कारण मकान, स्वास्थ्य और सफाई की समस्याएं पैदा हुई हैं। इंग्लैंड में औद्योगीकरण की तेज़ गति के कारण जीवन की स्थितियों में गिरावट आई। लोग धुएं से भरे औद्योगिक नगरों में बड़ी संख्या में आए। शहर में गंदी बस्तियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई। जोकि गांवों से नगरों की तरफ लोगों के जाने की कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी सभ्यता, लेकिन हमेशा ही इसके चलते हताशा पैदा हुई है। गांव का आदमी जब शहरों में आता है तो उसे अनेक तरह के तनाव झेलने पड़ते हैं। उसके बहुत से सामाजिक संबंध समाप्त हो जाते हैं। गांव के समाज में कई नैतिक बंधन थे जो शहरों में आकर टूट गए। लेकिन साथ ही मनुष्य अपेक्षाकृत स्वतंत्र हो गया। अब वह अपनी निजी क्षमताओं का विकास कर सकता था।

औद्योगिक क्रांति के कारण विभिन्न देश और उनके लोग एक दूसरे के करीब आए। हालांकि विभिन्न देशों के आपसी संबंध समानता पर आधारित नहीं थे क्योंकि जिन देशों में औद्योगीकरण हो चुका था वहां के लोगों ने गैर औद्योगीकृत देशों की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करना शुरू किया। इन सब के बावजूद औद्योगिक क्राति की वजह से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों में जागरूकता पैदा हुई, क्योंकि एक देश में होने वाले विकास का असर दूसरे देश में भी होने लगा।

औद्योगिक पूंजीवाद और प्रथम औद्योगिक मजदूर

औद्योगिक क्रांति के बाद जो समाजव्यवस्था बनी उसको औद्योगिक पूंजीवाद कहा जाता है। इस समाज के मुख्य वर्ग थे, पूंजीपति—यानि उत्पादन के साधनों के मालिक और

कोयले की खानों में अंधेरी सुरंगों से कोयले से लदी हुई ट्रालियों को खींचने के लिए बच्चों को काम पर लगाया जाता था।

मजदूर, जो मजदूरी लेकर काम करते थे। इसके कारण कुछ लोगों के हाथ में आर्थिक शक्ति केंद्रित हो गई। स्वतंत्र रूप से काम करने वाले कारीगर दुर्लभ हो गए। पूंजीपतियों के एक छोटे से तबके का, न केवल बड़ी संख्या में उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों के जीवन पर नियंत्रण हो गया बल्कि परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से ये लोग समूचे समाज के आर्थिक जीवन को नियंत्रित करने लगे। कुछ लोगों के हाथ में आर्थिक ताकत के केंद्रित हो जाने के कारण समाज में भयंकर असमानता पैदा हुई और पूंजीपतियों और बाकी आबादी के बीच जबर्दस्त खाई पैदा हुई। ये असमानताएं इतनी स्पष्ट और इतनी अधिक थीं कि उन्नीसवीं शताब्दी के एक ब्रिटिश प्रधानमंत्री डिजरेली को यह कहना पड़ा कि इंग्लैंड के भीतर दो देश हैं–संपन्न इंग्लैंड, और निर्धन इंग्लैंड।

औद्योगिक क्रांति ने काफी बड़ी संख्या में ऐसे मजदूरों को जन्म दिया जिनके पास न तो अपनी जमीन थी, न काम करने के लिए अपने औज़ार। ये लोग पूरी तरह मालिक पर निर्भर थे। मालिक की तरफ से जो मजदूरी मिलती थी, इनको उसे स्वीकार करना पड़ता था। इसका कारण यह था कि रोजगार की तुलना में मजदूरों की संख्या प्रायः अधिक थी। यहां तक कि खानों में स्त्रियों और बच्चों को काम पर लगाया जाता था क्योंकि कम मजदूरी पर वे उपलब्ध थे। अक्सर इन लोगों को लगातार 15 से 18 घण्टे काम करना पड़ता था और इसके बीच कोई अवकाश नहीं होता था। यदि इस दौरान उनमें से किसी को नींद आ जाती तो उसको काम की निगरानी करने वाला निर्दयता से पीटता भी था। काम करने का परिवेश असुरक्षित और गंदगी से भरा हुआ था।

सन् 1816 ई० में इंग्लैंड की संसद की एक उपसमिति ने बाल मजदूरों की दशा के संबंध में सूचनाएं इकट्ठी कीं। एक व्यक्ति ने जो कपड़े की मिल में काम सीखने वाले बालकों का स्वामी रह चुका था, निम्नलिखित गवाही दी। समिति के सदस्यों ने उसके कारखाने में बाल मजदूरों की दशा के विषय में कुछ प्रश्न पूछे और उसने उनके उत्तर किस प्रकार दिए, यह इस प्रकार है–

"उन्हें किस उम्र में नौकर रखा जाता था?"

"जो लंदन के रहने वाले थे वे आठ या दस वर्ष से पंद्रह वर्ष तक के होते थे।"

"उन्हें किस उम्र तक काम सीखना पड़ता था?"

"इक्कीस वर्ष की उम्र तक।"

"काम के घंटे क्या थे?"

"प्रातः 5 बजे से रात को 8 बजे तक।"

"क्या हर रोज 15 घंटे नियमित रूप से काम करना पड़ता था?"

"जी, हां।"

"जब मिल की मरम्मत के लिए या कपास न होने के कारण काम रोका जाता था तब क्या बालकों को उस समय की कमी बाद में अधिक समय काम करके पूरी करनी पड़ती थे?"

"जी, हां।"

"बालक खड़े होकर काम करते थे या बैठकर?"

"खड़े होकर।"

"पूरे समय?"

"जी, हां।"

"क्या उस मिल में बैठने के लिए कोई प्रबंध था?"

"नहीं, मैंने उन्हें बहुधा उस समय भी जब, उन्हें सो जाना चाहिए था, मिल के फर्श पर खड़े हुए या पड़े हुए देखा था।"

"क्या कुछ बालकों को मशीन से चोट लग जाती थी?"

"बहुधा।"

मजदूरों के रहने के मकान बहुत खराब थे। औद्योगिक शहरों के उन सब इलाकों में, जहां ये मजदूर रहते थे, घनी बसी हुई गंदी बस्तियां बन गई थीं। दुर्घटनाएं, रोग और महामारियां आम बात हो गई थीं। सन् 1837 ई० की मैनचेस्टर की गंदी बस्तियों के ऊपर एक रिपोर्ट में लिखा गया है कि एक बार हैजे के प्रकोप से बहुत से मोहल्लों के सारे निवासी मर गए।

यदि कोई मालिक किसी कारण किसी मजदूर से नाखुश हो जाए तो वह उसे चाहे तो नौकरी से अलग कर सकता था। मजदूर के सामने और कोई चारा न था। उसे मालिक की सभी शर्तें माननी पड़ती थीं नहीं तो बेरोज़गार होकर उसे घर बैठना पड़ता था। यदि वह बीमार होता और काम न कर पाता तो उसे मजदूरी नहीं मिलती थी और मालिक चाहे तो उसे निकाल भी सकता था। यदि काम करते समय भी किसी दुर्घटना में चोट लग जाती तो मालिक उसे किसी प्रकार की सहायता नहीं देता था। जब काम में कुछ मंदी आ जाती तब कारखाने का मालिक जितने मजदूरों को निकालना संभव होता, निकाल देता। मजदूरों के पास ऐसे समय में जीवन-निर्वाह के कोई साधन नहीं होते थे। सबसे पहले इंग्लैंड के मजदूरों ने इन सब कष्टों को झेला, जिनका

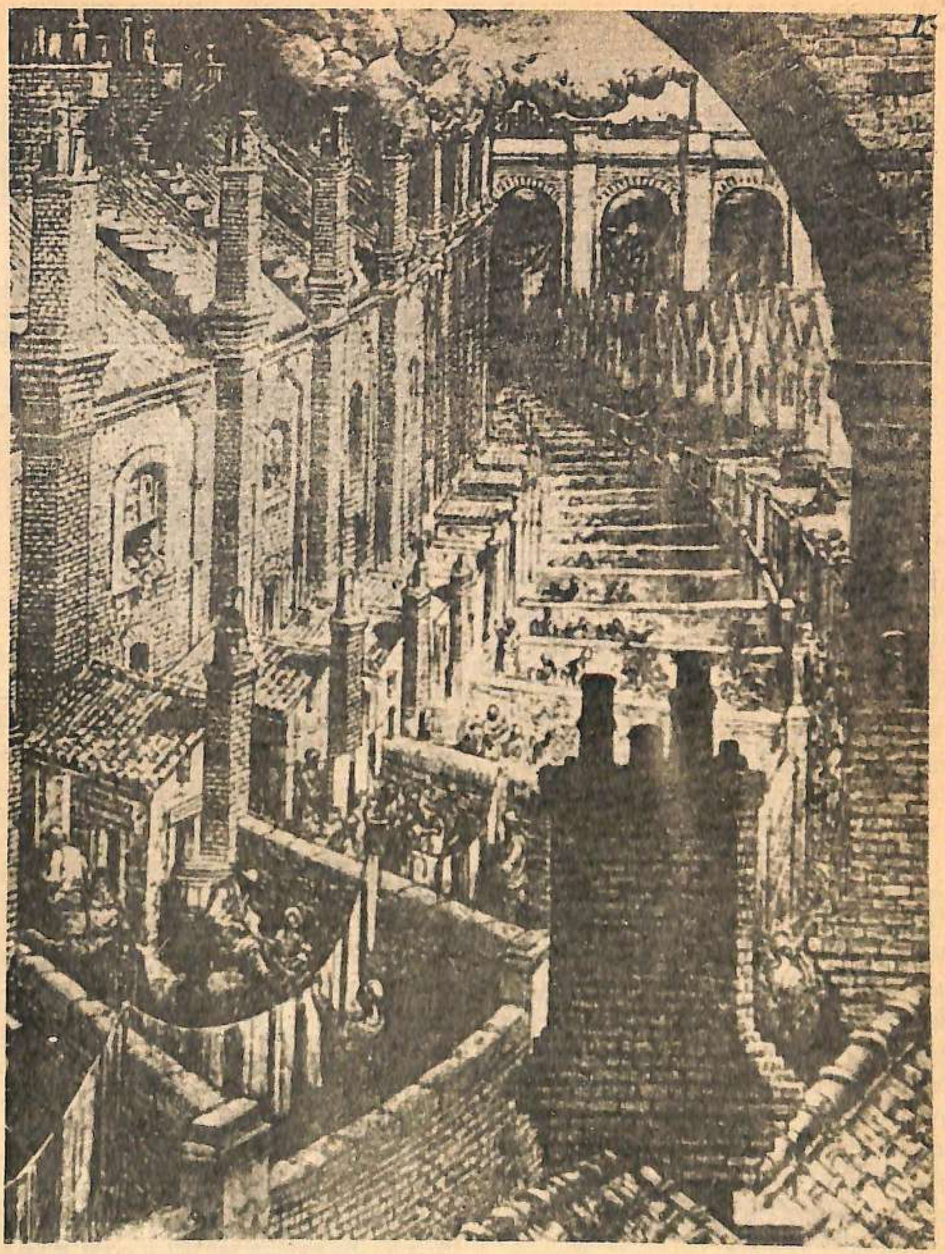

19 वीं शताब्दी के मध्य डोरे द्वारा बनाया हुआ लंदन की बस्तियों का चित्र

वर्णन ऊपर किया गया है। किंतु अन्य देशों के मजदूरों की दशा भी इससे कुछ अच्छी न थी।

उद्योगों में काम करने की दशा सुधारने के प्रयत्न

कुछ मानवतावादी सुधारकों और कुछ ऐसे जमींदारों ने, जो बड़े व्यापारियों से ईर्ष्या करते थे, इंग्लैंड के मजदूरों का साथ दिया जिससे उनके काम करने की दशा में सुधार के लिए आरंभिक कानून पास हो सके। इंग्लैंड में पहला कारखाना कानून सन् 1802 ई० में पारित हुआ। इसके अंतर्गत बालकों के लिए काम करने का अधिकतम समय बारह घंटे प्रतिदिन निश्चित किया गया। सन् 1819 ई० के कानून के अंतर्गत नौ वर्ष से कम उम्र के बालकों को कारखानों में रखना रोक दिया गया। कुछ समय बाद अन्य कानून पारित हुए, जिनके अंतर्गत खानों में स्त्रियों और बालकों को काम पर लगाने पर नियंत्रण लगाया गया।

मजदूरों की सुरक्षा के लिए बहुत से कानून मजदूर संघों के दबाव के कारण पारित किए गए हैं। जब इंग्लैंड के मजदूरों ने प्रारंभ में अपने मजदूर संघ बनाए तो मालिकों ने कहा कि ये गैर कानूनी संगठन हैं और इस "बुराई" का दमन करने के लिए कानून पारित किए गए। किंतु सन् 1824 ई० में मजदूर अपने संघों के विरुद्ध बनाए गए सभी कानूनों को रद्द कराने में सफल हो गए और सभी उद्योगों में मजदूर संघों की उल्लेखनीय प्रगति हुई।

तुम्हें शायद इस बात पर विश्वास न हो कि इंग्लैंड में उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों को वोट देने का अधिकार नहीं था। प्रारंभ में वहां के नए औद्योगिक नगरों की जनसंख्या का संसद में बिल्कुल प्रतिनिधित्व नहीं था। उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे और पांचवें दशकों के दौरान मजदूरों को वोट देने का अधिकार दिलाने के लिए एक महान जन आंदोलन आरंभ हुआ, जिसे 'चार्टिस्ट आंदोलन' कहा जाता है। यद्यपि यह आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक तक समाप्त हो गया, तथापि इसका प्रभाव बहुत दिन बाद तक रहा। सन् 1867, 1882, 1918 और 1929 ई० के कानूनों के अंतर्गत इंग्लैंड के सभी नागरिकों को मताधिकार मिल गया। इंग्लैंड के मजदूरों को मजदूर संघ बनाने का ही नहीं, अपितु अपनी मांगें मनवानें के लिए मालिकों को हड़ताल द्वारा विवश करने का भी अधिकार मिल गया था।

किसी विवाद में औद्योगिक मजदूरों की बात भी सुनी जाय, इसका हर जगह विरोध हुआ। फ्रांस और जर्मनी के

श्रमिकों के हड़ताल और आंदोलनों को तोड़ने के लिए पुलिस और कभी-कभी यहाँ तक सैनिकों को प्रयोग में लाया जाता था। इस चित्र में सन् 1886 में लंदन में श्रमिकों के प्रदर्शन को पुलिस द्वारा रोकने की कोशिश करते हुए दिखाया गया है।

मजदूरों को मजदूर संघ बनाने का अधिकार उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में मिला। संयुक्त राज्य अमरीका में मजदूर संघों को लगभग सौ वर्षों तक गुस्से की नजर से देखा जाता रहा। वहां मजदूरों को बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक पूरे कानूनी अधिकार नहीं मिले। बाद में जाकर मजदूरों को वहां संघ बनाने, हड़ताल करने और काम करने की दशा के विषय में मालिकों से सौदा करने के कानूनी अधिकार मिले। इसके बाद कुछ अन्य कानून पास किए गए जिनसे मजदूरों को कुछ और भी लाभ हुए।

भारत में 1881 ई० से ही मजदूरों की दशा सुधारने के लिए कानून हैं। अब मजदूरों से सप्ताह में अधिक से अधिक 48 घंटे ही काम कराया जा सकता है। प्रत्येक भारतीय मजदूर को अब साप्ताहिक छुट्टी पाने के कानूनी अधिकार प्राप्त हैं। कारखानों में 14 वर्ष से कम उम्र वाले मजदूरों से काम कराना निषेध है। काम करते समय दुर्घटना हो जाने

पर कारखाने के मजदूरों को हरजाना देना पड़ता है। उन्हें अब मनोविनोद की सुविधाओं और कभी-कभी रहने के लिए मकानों का भी प्रबंध करना पड़ता है।

औद्योगिक क्रांति के कारण मजदूरों और वेतन-भोगी लोगों की हालत बहुत खराब हो गई थी। इस दशा को सुधारने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए। औद्योगिक देशों में उन्हें जो भी बहुत से लाभ आज प्राप्त हैं वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं प्रयत्नों के परिणाम हैं।

औद्योगीकरण और सरकार का उत्तरदायित्व

सरकार के उत्तरदायित्व की धारणाओं में परिवर्तन हुए बिना औद्योगिक मजदूरों की सुरक्षा के संबंध में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाए जा सकते थे। जब इंग्लैंड और अन्य देशों में औद्योगिक क्रांति शक्तिशाली होती जा रही थी तब लोगों में यह विचारधारा प्रमुख हो रही थी कि सरकारों को व्यापार या उद्योग में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस सिद्धांत को **अहस्तक्षेप का सिद्धांत** (laissez faire) कहते हैं। सारे पूंजीपति इस सिद्धांत का आदर धर्म की भांति करते थे। इस सिद्धांत के अनुसार व्यापारी को अपने हितों की देखभाल करने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। उसके लाभ के परिणाम का निर्धारण मांग और पूर्ति के अलिखित कानून के आधार पर होता है। उसी अलिखित कानून से मजदूर के भाग्य का निर्धारण होता है, चाहे उसे काम मिले या न मिले। उसके काम करने की दशा और वेतन का निर्धारण भी इसी कानून के आधार पर होता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन सन् 1776 ई० में ऐडम स्मिथ नाम के व्यक्ति ने अपनी **दि वेल्थ ऑफ नेशन्स** (The Wealth of Nations) नामक पुस्तक में किया और साथ ही कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी इसका समर्थन किया।

बहुत से अन्य व्यक्तियों ने अहस्तक्षेप के इस सिद्धांत की आलोचना की। धीरे-धीरे सभी देशों ने इस विचार को मान लिया कि देश की आर्थिक व्यवस्था को विनियमित करना राज्य का कर्त्तव्य और न्यायोचित अधिकार हैं। इंग्लैंड के कारखाना-कानून और अन्य देशों के अर्थव्यवस्था संबंधी सारे कानून इसी विचारधारा के परिणाम थे। आजकल शायद ही कोई अहस्तक्षेप के सिद्धांत का समर्थन करेगा। धीरे-धीरे सभी व्यक्ति देश के आर्थिक विकास में हस्तक्षेप करना राज्य का आवश्यक कर्त्तव्य मानने लगे हैं। यह बात विकासशील देशों के संबंध में तो विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये देश बिना राज्य द्वारा किए गए व्यापक और बड़े पैमाने के प्रयत्नों के अपनी अर्थव्यवस्थाओं का आधुनिकीकरण करने में असमर्थ हैं। सच बात तो यह है कि इन देशों में आर्थिक विकास का मुख्य उत्तरदायित्व उन देशों की सरकारों पर है न कि पूंजीपतियों पर।

समाजवाद का उद्भव

समाजवाद का विचार, "अहस्तक्षेप की नीति" और यहां तक कि पूंजीवाद के लिए भी, चुनौती के रूप में उभरा। इसका आरंभ पूंजीवाद की बुराइयों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इस विचार ने मजदूरों को खासतौर से प्रभावित किया। अपने संघर्षों के जरिये अपनी जीवन दशा सुधारने के लिए इन लोगों ने काफी कुछ हासिल किया। बहरहाल, उनको विश्वास हो गया कि उनकी जिंदगी में बुनियादी सुधार के लिए समाजवाद अथवा समाज की पुनर्व्यवस्था अति आवश्यक है। आगे चलकर समाजवाद संबंधी विचारों तथा इन विचारों पर आधारित आंदोलनों के बारे में तुम लोग पढ़ोगे।

इंग्लैंड में 1750 में शुरु हुई औद्योगिक क्रांति मानवीय सेवाओं और सामग्री के उत्पादन के तरीकों में होने वाली क्रांति थी। पुरानी मध्यकालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं का खात्मा हो गया। बाद के आने वाले समाजों ने, आगे चल कर राष्ट्र के रूप में जिनका आविर्भाव हुआ, औद्योगीकरण को अपना उद्देश्य बनाया तथा धन में सहभागिता के युग का सूत्रपात किया।

जिस काम को आदमी पहले अपने हाथों से और जानवरों की सहायता से करता था, 1750 के बाद से उसने इसके लिए मशीन का इस्तेमाल क्रमशः बढ़ाना आरंभ किया। इस बीच मनुष्य ने जो मशीनें बनाईं, जिससे उसको सामान और सेवाएं प्राप्त हुईं, उनका स्वरूप काफी जटिल हो गया। इन यंत्रों की सहायता से जो कुछ हुआ, वह अन्यथा संभव नहीं था। इसके साथ ही मशीनों के कारण यह भी संभव हुआ कि थोड़े समय में मनुष्य काफी अधिक माल का उत्पादन कर सकता है, इससे लोगों को अपने रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाना संभव हुआ है।

औद्योगीकरण और पूंजीवाद के चलते लोगों को लाभ भी हुआ है, परेशानी भी बढ़ी हैं, बुराइयां भी पैदा हुई हैं जैसे बेरोजगारी, धूल-धुएं और भीड़ से भरे नगर, अस्वास्थ्यकर जीवन तथा काम की स्थितियाँ, राष्ट्रों के बीच में प्रतिस्पर्धा और टकराव आदि। चूंकि कामगारों को

मतदान के जरिए अपना प्रतिनिधि चुन कर सरकार में भेजने का अधिकार मिला तो उन लोगों ने ऐसे कानून बनाने के लिए मजबूर किया जिससे औद्योगीकरण द्वारा उत्पन्न बुराइयों को समाप्त किया जा सके। समाजवाद का विचार भी इसी दौरान अस्तित्व में आया। इसने मशीनों के महत्व को तो स्वीकारा ही, उनको बेहतर बनाने की बात भी कही। इसने नई समाज व्यवस्था के जरिए पूंजीवाद से उत्पन्न खामियों को दूर करने की वकालत की। लेकिन बहुत सी समस्याएँ अभी भी हैं। अनसुलझी समस्याएँ राष्ट्रों के लिए चुनौती हैं।

अभ्यास

जानने योग्य तथ्य

1. निम्नलिखित का अर्थ समझाओ:
औद्योगिक क्रांति, पूंजी, पूंजीवाद, समाजवाद, संरक्षी आयातकर, अहस्तक्षेप का सिद्धांत
2. औद्योगीकरण के लिए कौन-सी परिस्थितियां बहुत अनुकूल हैं?
3. 'औद्योगिक क्रांति के कारण कच्चे मालों और बाजार की आवश्यकता हुई। इस प्रकार राष्ट्र एक दूसरे पर काफी निर्भर हो गए'—इस कथन की पुष्टि में उदाहरण दो।
4. जब औद्योगिक क्रांति फैली तब औद्योगिक नगरों और कारखानों की जो दशा थी उसका वर्णन करो। इस बुरी दशा में धीरे-धीरे किस प्रकार सुधार किया गया?

करने के लिए कार्य

1. सन् 1750 ई० से सन् 1870 के बीच जो महत्वपूर्ण आविष्कार हुए उन्हें दिखलाने के लिए एक समय-सूचक रेखा बनाओ।
2. औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ के पहले सौ वर्षों में जिन मशीनों ने वस्तुओं के बनाने, कृषि करने, यातायात और संचार के तरीकों में क्रांति की हो, उनके चित्रों को एक बोर्ड पर प्रदर्शित करो।
'औद्योगिक क्रांति मिश्रित वरदान सिद्ध हुई' इस विषय पर लगभग 250 से 400 शब्दों का एक निबंध लिखो।

सोचने और विचार-विमर्श के लिए

1. सामंतवाद और पूंजीवाद में भेद करने वाली मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
2. मजदूर संघों का विकास अहस्तक्षेप की नीति को समाप्त करने में किस प्रकार सहायक सिद्ध हुआ?
3. औद्योगीकरण ने कृषि, यातायात, संचार और व्यापार को किस तरह प्रभावित किया तथा उसके कारण अधिक शिक्षा की आवश्यकता कैसे हुई?
4. उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं को उत्पन्न करने की कमजोरियों और हानियों का अध्ययन करो।
5. पूंजीवादी समाज की अपेक्षा समाजवादी समाज के क्या लाभ हैं?
6. क्या तुम इस बात से सहमत हो कि मानव की उन्नति में औद्योगीकरण 'एक स्वाभाविक कदम' था? अपने मत की पुष्टि के लिए कारण दो।

अध्याय 8

क्रांतिकारी और राष्ट्रवादी आंदोलन

अध्याय 6 और 7 में तुमने विश्व में नई आर्थिक व्यवस्था के आविर्भाव के विषय में पढ़ा था। इस अध्याय में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में होने वाले उन विकासों के बारे में तुम पढ़ोगे, जिनके कारण यूरोप तथा अमरीका के कई देशों में राजनीतिक व्यवस्था का रूपांतरण हुआ। इन विकासों की आधारभूत विशेषताएं थीं: प्रजातांत्रिक राजनीतिक प्रणालियों का विकास, राष्ट्रवाद और समाजवाद। औद्योगिक क्रांति और इन विचारों के चलते बहुत बड़े परिवर्तन हुए और आगामी लंबे समय के लिए लोगों के विचारों और लोगों की जिंदगी को इनसे दिशा निर्देश मिला। तब से, और खासतौर से 19वीं शताब्दी से, लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणालियों की स्थापना और राष्ट्रवाद पर आधारित स्वतंत्र राज्यों की स्थापना, सारी दुनिया की जनता का आधारभूत लक्ष्य रहा है। इनके साथ ही कुछ देशों में, तथा बाद में दूसरे देशों में भी समाजवाद ने सामाजिक समानता के आंदोलनों को सर्वत्र प्रेरित किया है।

तुमने उस सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन किया है जिसे हम सामंतवाद के नाम से जानते हैं। सामंतीय व्यवस्था में समाज वर्गों में विभाजित थे, इनमें से कुछ सुविधा भोगी लोग थे जब कि दूसरे शोषित लोग थे। व्यक्ति की समूची जिंदगी की दिशा उसके जन्म के समय ही तय हो जाती थी। यह इस बात पर निर्भर था कि किस वर्ग में उसका जन्म हुआ है। तुमने पढ़ा है कि सामंतीय समाज में दो मुख्य वर्ग थे, सामंती लार्ड और सर्फ। तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था उस समय की राजनीतिक प्रणाली को भी निर्धारित करती थी। अधिकांश आबादी की इसमें कोई हिस्सेदारी नहीं थी।

अनेक राजा दैवी अधिकार का दावा करते थे यानी उनका कहना था कि उन्हें अपनी सत्ता भगवान से प्राप्त हुई है भले ही उनमें शासन करने की योग्यता न हो। उनका शब्द ही कानून होता था। एक फ्रांसीसी सम्राट ने घोषणा की थी "मैं ही राज्य हूं"।

राज्यों की सरहदें भी अविवेकपूर्ण थीं। अगर तुम अध्याय 5 और 6 के मानचित्रों को देखो तो आधुनिक यूरोप के शायद ही कुछ राज्यों को पहचान पाओगे। सभी तरह के राज्य थे—साम्राज्य, सामंती, जमींदारी, नगर-राज्य इत्यादि। कोई जरूरी नहीं था कि किसी राज्य के भूभाग में निरंतरता हो। इन राज्यों में रहने वाले लोग एक ही जाति के नहीं होते थे। उदाहरण के लिए साम्राज्यों के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्र एक-दूसरे से दूर–दूर होते थे और अनेक भिन्न–भिन्न राष्ट्रीयता वाले लोग उनमें रहते थे।

अध्याय 6 में तुम पढ़ चुके हो कि किस प्रकार अनेक कारणों के परिणामस्वरूप राष्ट्र-राज्यों का निर्माण होने लगा। किंतु यह प्रक्रिया कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित थी। दीर्घकाल तक अधिकांश यूरोपीय राज्यों का कोई विवेकपूर्ण आधार नहीं था।

तुम उत्तर-मध्य युग में नए सामाजिक समूहों और वर्गों के बारे में पढ़ चुके हो। यूरोप के पुनर्जागरण को लाने में मध्यम वर्ग की भूमिका के बारे में भी तुम पढ़ चुके हो। आर्थिक जीवन में यह वर्ग धीरे-धीरे काफी महत्त्वपूर्ण हो गया किन्तु इसके विकास में विशेषाधिकार पर आधारित घिसी-पिटी राजनीतिक व्यवस्थाओं से बाधा पड़ी। इसका विकास तभी हो सकता था जब उसके हाथों में राजनीतिक

सत्ता होती। औद्योगिक क्रांति के कारण इस वर्ग की शक्ति और बढ़ गई तथा घिसी-पिटी राजनीतिक व्यवस्थाओं को हटाना अत्यंत आवश्यक हो गया। अनेक देशों में औद्योगिक क्रांति का प्रसार तत्कालीन पिछड़ी राजनीतिक व्यवस्था के कारण धीमा रहा

एक अन्य महत्त्वपूर्ण वर्ग जिसका उदय विशेषकर औद्योगिक क्रांति के बाद हुआ, मजदूर वर्ग या औद्योगिक मजदूरों का वर्ग था यह वर्ग भी निरंकुश राजनीतिक व्यवस्थाओं के खिलाफ था। कुछ राज्यों में सर्फडम या कृषिदासता की व्यवस्था का पतन हो गया था। फिर भी वह समाज व्यवस्था पर हावी था। सर्फों के अनेक विद्रोह हुए मगर सभी दबा दिए गए। किंतु 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक के काल में तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं को उखाड़ फेंकने के लिए यूरोप में कई आंदोलन हुए।

पहली सफल क्रांति, जैसा कि तुम पढ़ चुके हो, 17वीं शताब्दी में इंग्लैंड में हुई जिसके दौरान निरंकुश राजतंत्र को उखाड़ फेंका गया। साथ ही राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीय आंदोलनों का भी उदय और विकास हुआ। राष्ट्रीय आंदोलनों का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में बसे एक ही राष्ट्रीयता के लोगों को एकता के सूत्र में आबद्ध करना था। एक ही राष्ट्रीयता के लोग अनेक राज्यों में होते थे। राष्ट्रीय आंदोलनों का उद्देश्य विदेशी साम्राज्यवादी शासन को उखाड़ फेंकना होता था, यदि एक ही राष्ट्र के भूभाग विदेशी सम्राट के किसी बड़े साम्राज्य के भाग होते थे।

पुनर्जागरण ने एक ऐसा युग आरंभ किया जिसमें लोग प्रचलित धारणाओं के औचित्य के बारे में सवाल पूछने लगे। धीरे-धीरे विचार और धारणाओं के प्रत्येक पहलू के बारे में शंकाएं उठाई जाने लगीं। सोलहवीं शताब्दी के बाद के काल में एक बौद्धिक क्रांति हुई जिसके कारण विश्वास पर आधारित तत्कालीन धारणाओं पर भारी प्रहार किया गया।

विभिन्न विज्ञानों में भारी प्रगति हुई जिससे तत्कालीन धारणाओं को बड़ा धक्का लगा। नए विचारों की मुख्य विशेषता थी उनका तर्क बुद्धिवाद। वे उत्तरोत्तर लोक पदक मामलों से संबंधित थे। तर्क के बढ़ते हुए जोर के कारण यूरोप के इतिहास में अठारहवीं शताब्दी का काल **तर्क का युग** या प्रबुद्ध युग कहा जाता है। धीरे-धीरे उन विचारों को प्रभावहीन कर दिया गया जिनके कारण लोगों को जन्म के आधार पर उच्च-नीच समुदायों में तथा विशेषाधिकार से युक्त तथा विशेषाधिकार से हीन समूहो में बांटा जाता था। विचारों के क्षेत्र में चर्च का प्रभाव भी काफी घट गया। नए विचारों ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की वकालत की। इस प्रकार स्वतंत्रता, जनतंत्र और समानता के विचारों का उदय हुआ और ये विचार हर जगह जनगण के एक गुट होने के नारे बन गए। साथ ही राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता का उदय हुआ जिसने प्रत्येक राष्ट्र के लोगों में एकता और अखंडता का भाव भर दिया। अपनी विशिष्ट विशेषताओं वाले स्वतन्त्र राज्यों के रूप में अपने को संगठित करने की इच्छा भी उनमें आई।

यूरोप के अनेक भागों में और उत्तर अमरीका में तत्कालीन निरंकुश राजनीतिक व्यवस्थाओं को उखाड़ फेंकने और उनकी जगह पर जनतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओं को स्थापित करने, विशेषाधिकारों के उन्मूलन और राजनीतिक अधिकारों की समानता कायम करने के लिए आंदोलन आरंभ हुए। ये आंदोलन जो पहले आरंभ हुए थे, 19वीं शताब्दी के यूरोप में शक्तिशाली ताकत बन गए। इस अध्याय में तुम उन कुछ क्रांतियों के बारे में पढ़ोगे जिनके कारण निरंकुश सरकारों का पतन हो गया और उनकी जगह पर जनतांत्रिक सरकारें स्थापित हो गईं। तुम राष्ट्रीय स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकीकरण के लिए हुए कुछ सफल आंदोलनों के बारे में भी पढ़ोगे। इस अध्याय के अंतिम भाग में तुक समाजवादी विचारों के उदय और उन पर आधारित आंदोलनों के बारे में पढ़ोगे।

राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन बहुधा क्रांतियों के द्वारा हुए हैं। औद्योगिक क्रांति के अपने अध्ययन से तुम जानते हो कि क्रांति का अर्थ तीव्र और आमूल परिवर्तन होता है। क्रांति के द्वारा किसी स्थापित सरकार या व्यवस्था को ताकत और रक्तपात के जरिए उखाड़ फेंका जा सकता है। क्रांति से हमारा तात्पर्य किसी बड़े परिवर्तन से भी हो सकता है जो धीरे-धीरे और शांतिपूर्ण हो। इस अध्याय में जिन परिवर्तनों का वर्णन किया गया है वे कुछ पहलुओं की दृष्टि से बड़े तेज़ थे और उनके साथ हिंसा भी हुई, मगर उनके कारण जो अनेक स्थाई परिवर्तन हुए वे धीमी गति से और बिना रक्तपात के हुए। फिर भी तुम्हें यह याद रखना चाहिए कि सरकार में होने वाला परिवर्तन क्रांति नहीं होता। क्रांति के कारण देश की संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन, सरकार के स्वरूप में परिवर्तन, राजनीतिक सत्तारूढ़ वर्ग या वर्गों में परिवर्तन और सरकार के तथ्यों में भी परिवर्तन होते हैं।

आम तौर से किसी सरकार या किसी व्यवस्था के विरुद्ध लोग तब तक विद्रोह नहीं करते जब तक वे यह नहीं समझते कि पुरानी व्यवस्था में रहना अब संभव नहीं है। क्रांतियां तब होती हैं जब कोई तत्कालीन व्यवस्था बहुसंख्यक जनता के लिए असह्य हो जाती है। यही चीज एक नई व्यवस्था की स्थापना के लिए स्थितियों को परिपक्व बना देती है।

क्रांतियां 'संक्रामक' होती हैं। एक जगह जन्म लेने वाले क्रांतिकारी विचार अन्य जगह में तेजी से फैल सकते हैं और अन्य देशों की उत्पीड़क सरकारों द्वारा पीड़ित जनगणों की कार्रवाइयों तथा चिंतन पर प्रभाव डाल सकते हैं। मानव समाजों के विकास में क्रांतियों ने एक आवश्यक भूमिका अदा की है। क्रांतियों के बिना एक ही प्रकार की व्यवस्था सदा चलती रहेगी भले ही वह समय की दृष्टि से अनुपयुक्त क्यों न हो। इसके फलस्वरूप कोई प्रगति नहीं होगी।

अमरीकी क्रांति

जिस समय कुछ अंग्रेज अपने देश में संसद और धार्मिक मामलों में सुधार करने के लिए संघर्ष कर रहे थे उसी समय कुछ अन्य अंग्रेज अमरीका में उपनिवेश स्थापित करने और व्यापार की उन्नति करने के लिए अटलांटिक महासागर में जोखिम भरी यात्राएं कर रहे थे। तुम अध्याय 6 में अमरीका की खोज के विषय में पढ़ चुके हो। सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में यूरोप के देशों ने वहां अपने उपनिवेश बसाने आरंभ कर दिए थे। उत्तरी अमरीका में फ्रांस, हॉलैंड, स्पेन और इंग्लैंड ने अपने-अपने उपनिवेश बसाए। अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों को उत्तरी अमरीका और कनाडा के पूर्वी तट से खदेड़ दिया। उन्होंने डच लोगों से न्यू नीदरलैंड नाम का प्रदेश पहले ही ले लिया था। उन्होंने उस प्रदेश का नाम बदल कर न्यूयार्क रख दिया।

अमरीका में अंग्रेजों के उपनिवेश

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में उत्तरी अमरीका के अटलांटिक महासागर वाले तट के निकट अंग्रेजों के 13 उपनिवेश थे। भूमिहीन किसान, धार्मिक स्वतंत्रता चाहने वाले व्यक्ति, व्यापारी और मुनाफाखोर व्यक्ति इन उपनिवेशों में जाकर बस गए थे। इस जनसंख्या में सबसे अधिक स्वतंत्र किसान थे। वहां ऊन, पटसन और चमड़े के उद्योगों का प्रारंभ हो गया था। उत्तरी उपनिवेशों के निवासियों का मुख्य व्यवसाय मछली पकड़ना और जहाज़ बनाना था। दक्षिण में सामंती मेनरों की भांति बड़े-बड़े फार्म बन गए थे। उन पर अंग्रेज जमींदार अफ्रीका से लाए हुए दासों की सहायता से तंबाकू और कपास की खेती करते थे।

प्रत्येक उपनिवेश में एक विधान सभा थी, जिसके सदस्य विशेष योग्यता प्राप्त मतदाताओं द्वारा चुने जाते थे। ये सभाएं स्थानीय मामलों के बारे में कानून बनातीं, और कर लगातीं थीं। किन्तु वे उस देश की सरकार के आधीन थीं जिनके वे उपनिवेश थे। अठारहवीं शताब्दी में उपनिवेशवासियों ने यह अनुभव किया कि ब्रिटेन की सरकार ने उनके ऊपर जो कानून लागू किए हैं वे बहुत आपत्तिजनक हैं। उनके मन में स्वतंत्र राष्ट्र बनाने के विचार का उदय हुआ और उसने विकसित होकर एक ऐसे क्रांतिकारी युद्ध का रूप ले लिया जिसके फलस्वरूप उपनिवेशवासियों को स्वाधीनता मिल गई।

अमरीकी स्वाधीनता युद्ध के कारण

अमरीका के उपनिवेशों की अप्रसन्नता का मुख्य कारण या आर्थिक मामलों में ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति। इंग्लैंड की नीतियों ने अमरीकी उपनिवेशों को अपनी स्वयं की अर्थव्यवस्था विकसित करने के लिए प्रोत्साहन नहीं दिया। ब्रिटेन की संसद ने इन उपनिवेशों को गैर-ब्रिटेन जहाजों को काम में लाने की मनाही कर दी थी। इन उपनिवेशों की कुछ वस्तुओं, जैसे तंबाकू, कपास और चीनी का निर्यात केवल ब्रिटेन को ही किया जा सकता था। अन्य स्थानों से इन उपनिवेशों में जाने वाली वस्तुओं पर भारी तटकर लगाया जाता था। उपनिवेशों को लोहा और सूती कपड़ा जैसे उद्योगों को आरंभ करने की मनाही थी। उन्हें इन वस्तुओं का आयात केवल ब्रिटेन से ही करने के लिए मजबूर किया जाता था। इस प्रकार हर तरफ से उपनिवेशों के उद्योग और व्यापार के विकास में रोड़े अटकाए जा रहे थे।

अंग्रेजों ने उपनिवेशवासियों को पश्चिम की ओर नए प्रदेशों में बढ़ने पर प्रतिबंध लगाकर भी अप्रसन्न कर दिया था। कुलीन अंग्रेजों ने अमरीका में भूमि खरीद ली और वे किसानों से लगान वसूल करते थे। वे उपनिवेशवासियों को अपने काश्तकारों के रूप में रखना चाहते थे।

उस समय ब्रिटेन की सरकार को लगातार कई वर्षों तक यूरोप में युद्ध करने पड़े, इसलिए उस पर ऋण का भार बढ़

स्टांप एक्ट के विरोध में हुए दंगे। उत्तरी अमरीका के अंग्रेजी उपनिवेशों में इस एक्ट के विरोध में प्रदर्शन हुए। सन् 1765 ई. में स्टांप एक्ट पारित हुआ। चित्र में सड़कों पर स्टांप को जलाते हुए लोगों को दिखाया गया है।

गया और उसे धन की आवश्यकता पड़ी। सन् 1765 ई० में ब्रिटेन की संसद ने **स्टांप ऐक्ट** पारित किया जिसके अंतर्गत उपनिवेशवासियों को सभी व्यापारिक सौदों पर कर देना पड़ता था। कानूनी कागजातों और अन्य दस्तावेजों पर 20 शिलिंग तक का स्टाम्प लगाना पड़ता था। इस कानून से उपनिवेशों में जबर्दस्त विरोध की भावना जाग उठी और उपनिवेशवासियों ने ब्रिटेन से आने वाली सभी वस्तुओं का बहिष्कार करने का निश्चय किया। अनेक कस्बों में विद्रोह हुए और अनेक कर इकट्ठा करने वाले अधिकारियों की हत्या कर दी गई। उपनिवेशवासियों का कहना था कि ब्रिटेन की संसद में उनके कोई प्रतिनिधि नहीं है। इसलिए उसे उन पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। उनका यह भी कहना था कि इन करों से प्राप्त राजस्व उपनिवेशों के हित में व्यय नहीं किया जाता, वह तो ब्रिटिश साम्राज्य के हित में खर्च किया जाता है।

अमरीका के क्रांतिकारियों को सत्रहवीं शताब्दी के इंग्लैंड के दार्शनिकों के विचारों से बहुत प्रेरणा मिली थी। लॉक, हैरिंगटन, मिल्टन आदि दार्शनिकों का मत था कि मनुष्य के कुछ मौलिक अधिकार हैं जिनकी अवहेलना करने का अधिकार किसी भी सरकार को नहीं है। अमरीका के विचारकों को विशेष रूप से टॉमस जैफर्सन को तत्कालीन फ्रांसीसी दार्शनिकों के विचारों और लेखों से भी प्रेरणा

टॉमस पेन, एक अंतर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी जिसने असंख्य लेख और पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जिनमें दो पुस्तकें "कॉमन सेंस और "राइट्स ऑफ मैन" हैं। उसने इंग्लैंड, अमरीका और फ्रांस के लोगों को आजादी के लिए लड़ने के लिए उत्साहित किया।

मिली जैफर्सन ने उपनिवेशवासियों के विद्रोह करने के अधिकार का समर्थन किया और उनकी बढ़ती हुई स्वतंत्रता की इच्छा को प्रोत्साहन दिया। टॉमस पेन ने, जो अंग्रेजी समाज की विषमताओं से घृणा करता था और इंग्लैंड छोड़ कर अमरीका में आकर रहने लगा था, जोरदार शब्दों में अमरीका निवासियों की स्वतंत्रता की मांग का समर्थन किया। 'कॉमन सेंस' (Common Sense) नामक पुस्तिका में उसने लिखा, "यह मानना कि यह महाद्वीप बहुत लंबे समय तक किसी विदेशी शक्ति के अधीन रहेगा, किसी प्रकार भी तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता।... ऐसा समझना कि कोई द्वीप सदा ही एक महाद्वीप पर शासन करता रहेगा, बिल्कुल असंगत बात है।"

मैसाचुसैट्स की सभा

सब उपनिवेशों की एक सी समस्याओं पर विचार करने के लिए मैसाचुसैट्स उपनिवेश के नेताओं ने अन्य उपनिवेशों से उनके प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया। वे सब इस बात पर सहमत हुए और उन्होंने इस बात की घोषणा की कि ब्रिटेन की संसद को उन पर कर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने यह नारा बुलंद किया 'प्रतिनिधित्व के बिना कोई कर नहीं'। उन्होने ब्रिटेन की वस्तुओं का आयात रोकने की धमकी दी। इस धमकी के कारण ब्रिटेन ने स्टाम्प ऐक्ट को रद्द कर दिया, किंतु संसद अब भी इस बात पर अड़ी रही कि उसे कर लगाने का अधिकार है। तब संसद ने उपनिवेश में आनेवाली उपभोक्ता वस्तुओं पर कर लगाया। ये वस्तुएं थीं—कागज, शीशा, चाय और रोगन। उपनिवेशों ने फिर आपत्ति की और कहा कि केवल हमारे राज्य की विधान सभाओं को ही हम पर कर लगाकर धन इकट्ठा करने का अधिकार है। विरोध प्रदर्शन करने के लिए उपनिवेशवासियों ने ब्रिटेन से आयात की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा पहले से आधी कर दी। इस पर ब्रिटेन की सरकार ने इस योजना को समाप्त कर दिया। किंतु उसे कर लगाने का अधिकार है—यह बात दिखलाने के लिए चाय पर से कर नहीं हटाया।

बोस्टन की चाय-पार्टी

चाय के कर से झगड़ा बढ़ गया। सन् 1773 ई० में कुछ उपनिवेशों ने इंग्लैंड के जहाजों में आने वाली चाय को उतारने से इनकार कर दिया। बोस्टन में जब वहां के गवर्नर ने चाय को उतारने का आदेश दिया तो वहां के कुछ नागरिक अमरीका के आदिवासियों जैसे कपड़े पहने उस जहाज पर पहुँचे जिसकी चाय उतारनी थी और उन्होंने चाय की सभी पेटियां समुद्र में डाल दीं। इस घटना को 'बोस्टन की चाय-पार्टी' के नाम से जाना जाता है। ब्रिटेन की सरकार ने तब बोस्टन के बंदरगाह को सब तरह के व्यापार के लिए बंद कर दिया और इस प्रकार उपनिवेशों को तुरंत विद्रोह करने के लिए विवश किया।

फिलाडेल्फिया का सम्मेलन और स्वतंत्रता की घोषणा

अमरीका के तेरहों उपनिवेशों के प्रतिनिधि 1774 में फिलाडेल्फिया में हुए प्रथम महाद्वीपीय सम्मेलन में शामिल

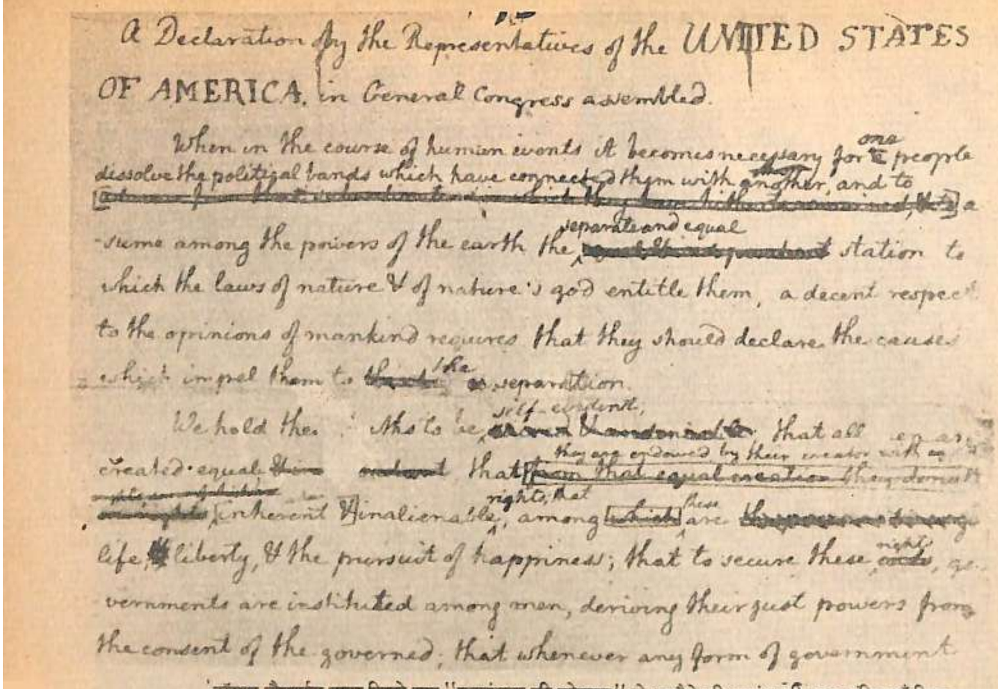

A Declaration by the Representatives of the UNITED STATES OF AMERICA, in General Congress assembled.

When in the course of human events it becomes necessary for one people to dissolve the political bands which have connected them with another, and to assume among the powers of the earth the separate and equal station to which the laws of nature & of nature's god entitle them, a decent respect to the opinions of mankind requires that they should declare the causes which impel them to the separation.

We hold these truths to be self-evident; that all men are created equal; that they are endowed by their creator with inherent & inalienable rights; that among these are life, liberty, & the pursuit of happiness; that to secure these rights, governments are instituted among men, deriving their just powers from the consent of the governed; that whenever any form of government

'टॉमस जैफर्सन द्वारा लिखे गए ''स्वतंत्रता की घोषणा'' के मसौदे की प्रारंभ की कुछ पंक्तियाँ चित्र में दिखाई गई हैं। इस मसौदे को कुछ मामूली संशोधनों के बाद 4 जुलाई, 1776 ई. में स्वीकार किया गया।

''स्वतंत्रता की घोषणा'' पर हस्ताक्षर। जॉन ट्रबल के इस चित्र में बीच में खड़े हुए बाँए से दाएँ दिख रहे हैं: जॉन ऐडम्स, रोजर शर्मन, रार्बट लिविंग्स्टन, टॉमस जैफर्सन और बेंजामिन फैंकलिन।

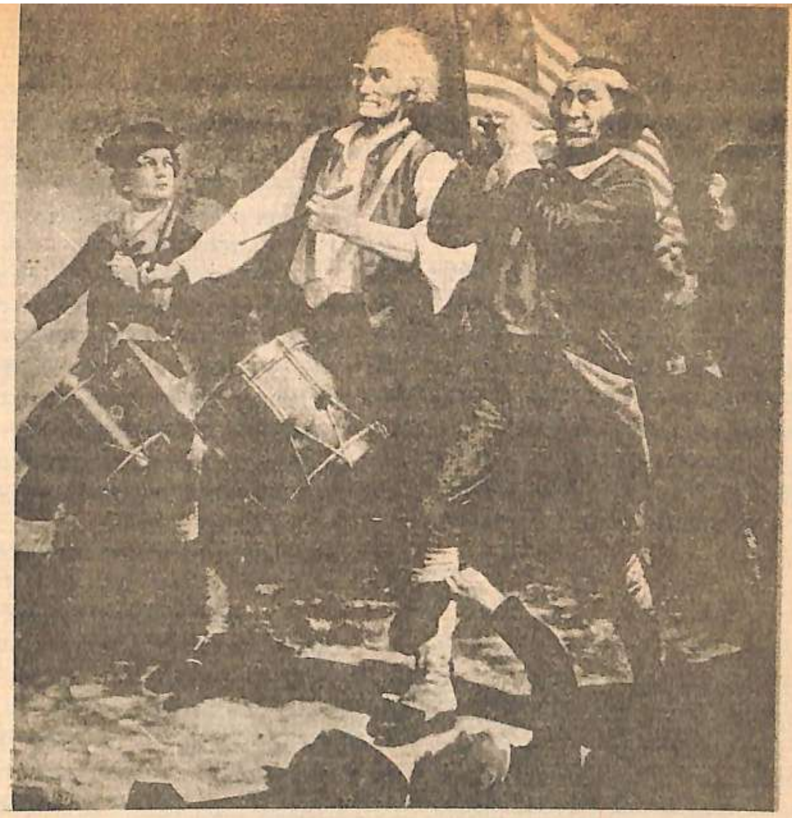

स्वतंत्रता की घोषणा पर हस्ताक्षर—ए.एम. विलार्ड्स के एक शताब्दी बाद बनाए गए इस चित्र में "76" के जोश को दिखाया गया है।

हुए। इस सम्मेलन ने ब्रिटेन के राजा से अपील की कि उद्योगों और व्यापार पर जो प्रतिबंध इंग्लैंड की सरकार ने लगा रखे हैं, उन्हें तुरंत हटा दिया जाए और उपनिवेशों के निवासियों की सहमति के बिना कोई कर नहीं लगाए जाएं। ब्रिटेन के राजा ने उनके इस कार्य को विद्रोह घोषित कर दिया और उसका दमन करने के लिए सेना भेजने का आदेश दिया तब उपनिवेशों ने एक स्थानीय सेना भर्ती करके अपनी सैनिक सुरक्षा की योजना बनाई। सन् 1775 ई० में क्रांति का प्रथम युद्ध लड़ा गया। यह युद्ध मैसाचुसैट्स में लेक्सिंगटन नामक स्थान पर लड़ा गया। इस युद्ध में उपनिवेशों की नागरिक सैनिक टुकड़ी ने ब्रिटेन के एक हजार सिपाहियों का सफलतापूर्वक मुकाबला किया।

द्वितीय महाद्वीपीय सम्मेलन 4 जुलाई 1776 ई० को हुआ जिसमें **स्वतंत्रता की घोषणा** (Declaration of Independence) को स्वीकार किया गया। इस घोषणा में वस्तुतः क्रांतिकारी विचारों का समावेश किया गया और बलपूर्वक यह घोषित किया गया कि "ईश्वर ने सब मनुष्यों को समान बनाया है। ईश्वर ने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिए हैं, जिन्हें उनसे कोई नहीं छीन सकता। इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता और सुख के लिए प्रयत्न शामिल हैं।" इस घोषणा में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया कि सत्ता का स्रोत जनता है और दृढ़तापूर्वक यह कहा गया कि जनता को अपनी सरकार बनाने का पूरा अधिकार है। इस घोषणा में यह भी कहा गया कि ब्रिटेन की

सरकार ने अमरीका के उपनिवेशों पर अत्याचार किए हैं और 'ये संयुक्त उपनिवेश स्वतंत्र हैं और उन्हें स्वतंत्र राज्य होने का पूरा अधिकार है।' इस घोषणा से पूर्व उपनिवेशों के निवासी अंग्रेज होने के नाते अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। किंतु 1776 ई० की घोषणा के बाद उन्होंने स्वतंत्र राष्ट्र बनाने के उद्देश्य से संग्राम प्रारंभ किया।

स्वतंत्रता का युद्ध

जार्ज वाशिंगटन को अमरीका की सेनाओं का सेनापति नियुक्त किया गया। प्रारंभिक लड़ाइयां बोस्टन के आस-पास लड़ी गईं। तब ब्रिटेन ने कुछ सेना कनाडा भेजी ताकि वह वहां से दक्षिण की ओर बढ़कर ब्रिटेन की दूसरी सेना से मिल सके और इस प्रकार अमरीका को दो भागों में बांट दे। परंतु इंग्लैंड के एक सेनापति ने इस योजना को कार्यान्वित करने में कुछ भूल कर दी। जैसे ही ब्रिटिश सेनाएं दक्षिण की ओर बढ़ीं, अमरीका की सेनाओं ने उनका सामना किया और उन्हें हरा दिया। अप्रशिक्षित स्थानीय अमरीकी सेना की प्रशिक्षित ब्रिटिश सेना पर विजय बड़े महत्व की बात थी। इससे अमरीका निवासियों में बहुत आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ। अब फ्रांस की सरकार ने सेना, खाद्य सामग्री और धन भेजकर उपनिवेशों की सहायता करने का निश्चय किया। ब्रिटेन फ्रांस का पुराना शत्रु था इसलिए उसे परेशान करना फ्रांस का मुख्य उद्देश्य था। ब्रिटेन के अन्य शत्रुओं स्पेन और हॉलैंड ने भी अन्यत्र ब्रिटेन के विरुद्ध शीघ्र युद्ध छेड़ दिया।

इसी बीच ब्रिटेन में भी गड़बड़ी शुरू हो गई थी। आयरलैंड में विद्रोह का डर था। संसद में कुछ नेता उपनिवेशवादियों के विरुद्ध हो रहे युद्ध का विरोध कर रहे थे। आखिर यह युद्ध 1781 ई० में तब समाप्त हुआ जब ब्रिटेन के सेनापति लॉर्ड कार्नवालिस (जो बाद में भारत का गवर्नर-जनरल बना) ने आत्मसमर्पण कर दिया। दो वर्ष बाद सन् 1783 ई० में पेरिस की संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि के द्वारा ब्रिटेन ने अपने तेरह भूतपूर्व उपनिवेशों की स्वतंत्रता स्वीकार कर ली।

सन् 1781 में कार्नवालिस द्वारा आत्मसमर्पण

अमरीका का संविधान

जब स्वतंत्रता का युद्ध प्रारंभ हुआ उस समय तेरहों उपनिवेश एक दूसरे से अलग थे। उनमें से हरेक की अपनी अलग सेना, अलग सीमाएं, तटकर और वित्त व्यवस्था थी। किंतु वे इंग्लैंड के विरुद्ध संगठित हो गए थे क्योंकि उसको सभी अपना शत्रु मानते थे। सन् 1781 ई० में उन्होंने एक योजना के अंतर्गत संयुक्त राज्य अमरीका के नाम से राष्ट्रीय सरकार बनाने का निश्चय किया। एक नया संविधान बनाने के लिए एक संवैधानिक सम्मेलन फिलाडेल्फिया में बुलाया गया। नया संविधान सन् 1789 ई० में लागू हुआ। इस प्रकार अमरीका में गणतंत्र राज्य की स्थापना की गई। उस समय संसार के अन्य भागों में अधिकतर राजा लोग ही राज कर रहे थे। किंतु अमरीका के संविधान में संघ पद्धति स्वीकार की गई जिसके अंतर्गत शक्तियों का विभाजन संघीय (केंद्रीय) सरकार और राज्य सरकारों के बीच किया गया।

जैफर्सन ने **स्वतंत्रता की घोषणा** को तैयार किया था। उसने और उसके साथियों ने इस बात के लिए आंदोलन चलाया कि संघीय संविधान में अधिकार संबंधी अधिनियम (Bill of Rights) जोड़ दिया जाय। यह कार्य दस संशोधनों द्वारा किया गया। इन संशोधनों द्वारा अमरीका के नागरिकों को अनेक अधिकार दे दिए गए। उनमें सबसे प्रमुख अधिकार हैं—भाषण, प्रकाशन (प्रेस), और धर्म की स्वतंत्रता तथा कानून के अनुसार न्याय प्राप्त करने का अधिकार। संविधान के बनते ही संयुक्त राज्य अमरीका संसार के इतिहास में एक राष्ट्र के रूप में प्रकट हुआ। इतिहास में यह पहला लिखित गणतांत्रिक संविधान था जो आज तक चल रहा है।

अमरीका की क्रांति का महत्त्व

सब मनुष्यों की समानता और उनके ऐसे अधिकार, जिनको उनसे कोई छीन नहीं सकता, इन दो तथ्यों का समावेश 'स्वतंत्रता की घोषणा' में किया गया था। इन दो तथ्यों ने अमरीका और उसके बाहर के वातावरण में बिजली की एक लहर सी दौड़ा दी। फ्रांसीसी सेनापति लाफेयत, जो अमरीका के क्रांतिकारियों की ओर से अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ा था, जल्द ही फ्रांस की राज्यक्रांति का नेता बन गया। टॉमस पेन ने भी फ्रांस की क्रांति में भाग लिया। अमरीका की क्रांति से फ्रांस के अनेक क्रांतिकारियों को प्रेरणा मिली। यूरोप के उन्नीसवीं शताब्दी के प्रायः सब क्रांतिकारियों को इससे प्रेरणा मिली। मध्य और दक्षिणी अमरीका में भी स्पेन और पुर्तगाल के उपनिवेशों को इससे विद्रोह करने और स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रोत्साहन मिला।

अमरीका की क्रांति की मुख्य उपलब्धि गणतंत्र की स्थापना थी। परंतु यह गणतंत्र लोकतंत्रीय न था। इसमें बहुत कम व्यक्तियों को मताधिकार दिया गया था परन्तु काले लोगों को, जो अधिकतर दास थे, अमरीका के इंडियनों (आदि निवासी) और स्त्रियों को मतदान का अधिकार न था। अनेक वर्षों तक बहुत से राज्यों में चुनाव के नियम ऐसे थे कि उनसे जमीन-जायदाद वाले व्यक्तियों को ही मतदान का अधिकार प्राप्त था थोड़े दिन बाद लोकतंत्र की दिशा में प्रगति होने लगी। कुछ राज्यों में राज्य का अपना कोई धर्म नहीं माना गया और सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति के लिए धार्मिक योग्यता आवश्यक नहीं मानी गई।

एक राष्ट्र का विकास

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में संयुक्त राज्य में अनेक क्षेत्र जोड़ दिए गए। महाद्वीप के मध्य में लुसियाना नाम का विस्तृत प्रदेश फ्रांस वालों के अधिकार में था इसे उनसे खरीद लिया गया। स्पेन से फ्लोरिडा ले लिया गया। सन् 1850 ई० से पहले ही मेक्सिको के विरुद्ध युद्ध समाप्त होने के बाद संयुक्त राज्य अमरीका ने अपनी सीमा प्रशांत महासागर तक फैला ली। वहां की जनता पश्चिम की ओर बराबर बढ़ती जा रही थी। पश्चिम की ओर संयुक्त राज्य के विस्तार का नुकसान अमरीकी इंडियनों को भुगतना पड़ा। अमरीकी इंडियनों को अपने इलाकों से खदेड़ दिया गया और कुछ ही दशकों में उनकी जनसंख्या नगण्य हो गई। जब पश्चिम में अधिक बस्तियां बस गईं तब उन बस्तियों के निवासियों का संघर्ष दक्षिण के राज्यों से हुआ क्योंकि दक्षिण के राज्य पश्चिमी प्रदेशों और उत्तरी राज्यों में भी दासता की प्रथा रखना चाहते थे। उत्तरी राज्य दासता पर आधारित अर्थव्यवस्था के पूरी तरह खिलाफ थे।

गृह-युद्ध के समय उनमें एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। दक्षिण के राज्य, जिनमें बड़ी संख्या में दास थे, संघ से अलग हो गए। उन्होंने अपनी अलग सरकार बना ली। गृह-युद्ध सन् 1861 ई० से 1865 ई० तक चलता रहा। अंत में

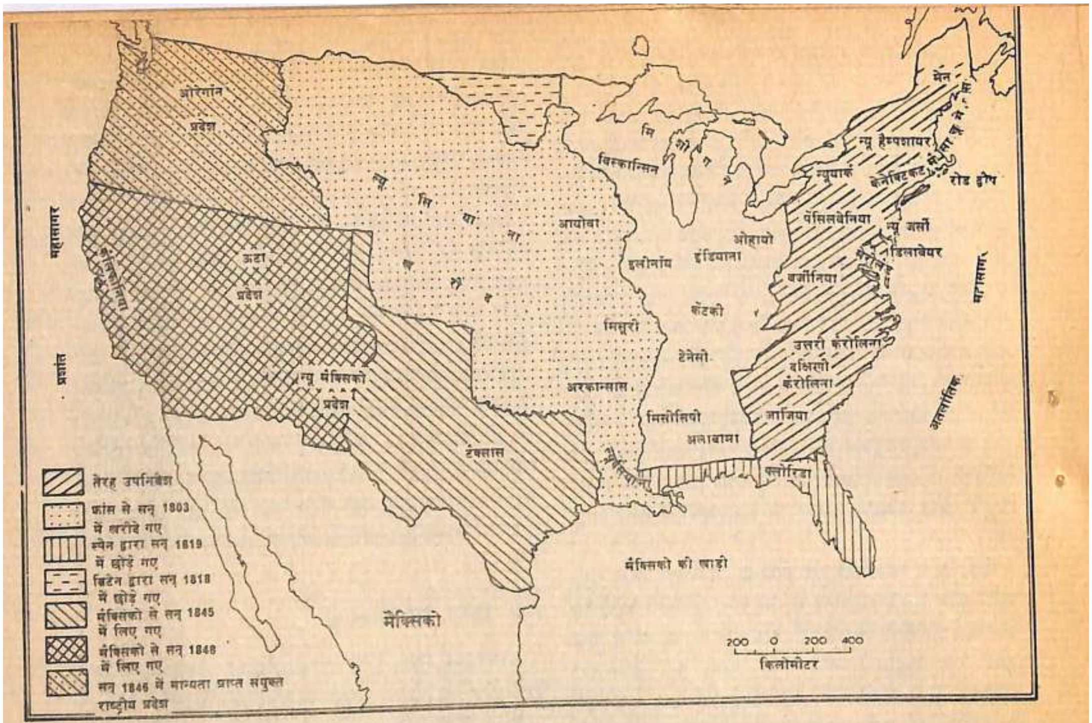

सन् 1850 में संयुक्त राज्य अमरीका की स्थिति

1853 ई. में दासों की नीलामी का एक दृश्य। "स्वतंत्रता की घोषणा में कहा गया था कि सभी मनुष्य समान हैं" किन्तु घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर होने के 90 वर्षों बाद तक भी दास प्रथा बनी रही। इस प्रथा को दिसम्बर सन् 1865 में बिलकुल समाप्त कर दिया गया।

दक्षिणी राज्यों की पराजय हो गई। यह विजय उत्तर के उन राज्यों की विजय थी जिनमें औद्योगिक पूंजीपतियों की प्रमुखता थी। इसके विपरीत दक्षिण के राज्यों में दास रखने वाले स्वामियों का प्रभुत्व था। संघीय सरकार ने दासता को समाप्त कर दिया। दास प्रथा के उन्मूलन के बाद भी काले लोगों के साथ भेदभाव का अंत नहीं हुआ। समान अधिकारों को यथार्थ रूप देने के लिए उनका संघर्ष जारी रहा।

फ्रांस की क्रांति

जिस समय अमरीका की स्वतंत्रता का युद्ध लड़ा जा रहा था उसी समय फ्रांस की क्रांति के बीज बोए जा रहे थे। फ्रांस की स्थिति अमरीका से बिल्कुल भिन्न थी, किंतु वहां भी अनेक समान क्रांतिकारी विचार जनता पर अपना प्रभाव डाल रहे थे। अमरीका की क्रांति की अपेक्षा फ्रांस की क्रांति ने संसार को अधिक प्रभावित किया। इसके कारण ससार के अनेक देशों में उथल-पुथल हुई जिसके प्रति कोई भी देश तटस्थ नहीं रह सका।

अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की सामाजिक स्थिति

फ्रांस की क्रांति क्यों और कैसे हुई, यह समझने के लिए हमें तत्कालीन फ्रांसीसी समाज का अध्ययन करना होगा। हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि फ्रांस की दशा यूरोप के अन्य देशों की दशा से अधिक खराब न थी। फिर भी साधारण जनता को अनेक कष्ट सहन करने पड़ते थे। शासक निरंकुश और फ़िज़ूलखर्च थे। अभिजात वर्ग और पादरियों के विशेषाधिकार थे। किसान भूमिहीन थे, मजदूर बेरोजगार थे और कराधान में बड़ी असमानताएं थीं। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस एक शक्तिशाली राज्य था। उसने उत्तरी अमरीका के एक विस्तृत क्षेत्र, और वेस्टइण्डीज के द्वीपों के समूह पर अधिकार कर लिया था। किन्तु इस दिखावटी शक्ति के होते हुए भी फ्रांसीसी राजतंत्र को एक महान् आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था। इसी के कारण अंत में इसकी समाप्ति हुई।

विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग या एस्टेट्स (Estates)

फ्रांसीसी समाज वर्गों या एस्टेट्स में विभाजित था। विशेषाधिकार प्राप्त दो वर्ग थे—पादरी और अभिजात वर्ग। इनको क्रम से पहला और दूसरा वर्ग कहा जाता था। पहले वर्ग में लगभग एक लाख तीस हजार पादरी थे। दूसरे वर्ग में लगभग 80,000 परिवार या 4,00,000 व्यक्ति थे। इन दोनों वर्गों के व्यक्ति प्रायः सभी करों से मुक्त थे। प्रशासकीय पदों और सेना के उच्च पदों पर अधिकतर उन्हीं की नियुक्ति की जाती थी। फ्रांस की जनसंख्या उस समय 2,50,00,000 थी। मगर फ्रांस की कुल भूमि का 40 प्रतिशत भाग इन्हीं दोनों वर्गों के व्यक्तियों के पास था। इन दोनों वर्गों की आय मुख्य रूप से उनकी बड़ी जमींदारियों से होती थी। इनमें से कुछ ऐसे थे जो अपने जीवन-निर्वाह के लिए राजा से मिलने वाली पेंशनों या भेंटों पर निर्भर थे। व्यापार करना, वस्तुएं बनाना, या किसी प्रकार का भी कार्य करना वे अपनी शान के खिलाफ समझते थे।

हर स्थान पर अभिजात वर्ग के व्यक्ति फिज़ूलखर्ची तथा भोग-विलाप का जीवन बिताते थे किंतु दोनों उच्च वर्गों में भी कुछ निर्धन व्यक्ति थे। वे भी बहुत असंतुष्ट थे और अपने वर्गों के धनी लोगों को अपने कष्टों के लिए दोषी ठहराते थे।

तीसरा वर्ग (Third Estate)

फ्रांस की शेष जनता तीसरे वर्ग (Third Estate) में आती थी। इस वर्ग में जनसाधारण थे जो जनसंख्या के लगभग 95 प्रतिशत थे। तीसरे वर्ग के कोई विशेषाधिकार न थे। उनके बीच भी जीवन-स्तर और संपत्ति को लेकर बहुत अंतर था।

किसान—तीसरे वर्ग में सबसे अधिक संख्या किसानों की थी। फ्रांस की कुल जनसंख्या में लगभग 80 प्रतिशत किसान थे। इस बड़े वर्ग का जीवन बहुत ही निम्न स्तर का था। फ्रांस के किसान मध्यकाल के कृषिदासों या पूर्वी यूरोप के अठारहवीं शताब्दी के कृषिदासों की तरह न होकर स्वतंत्र किसान थे। कइयों के पास अपनी भूमि थी। किंतु अधिकांश किसान भूमिहीन थे या उनके खेत बहुत छोटे थे। वे बड़ी कठिनाई से अपने जीवन-निर्वाह के लिए धन कमा पाते थे। काश्तकारों और बटाईदारों की दशा इन किसानों की दशा से अधिक खराब थी। लगान देने के बाद किसान के पास उपज का लगभग एक-तिहाई या चौथाई भाग ही शेष रह जाता था। खेतों पर मजदूरी

करने वालों की आय इससे भी कम थी।

अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की कृषि व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किए गए। इससे किसान की दशा पहले से भी खराब हो गई। वह जंगल से जलाने के लिए न ईंधन ले सकता था और न अपने पशुओं को घास के मैदानों पर ही चरा सकता था। उसके ऊपर करों का असह्य भार था। करों के अतिरिक्त उसे बेगार करनी पड़ती थी। यह लॉर्डों का सामंती विशेषाधिकार था। अब सार्वजनिक कार्य पूरा करने के लिए पहले से अधिक बेगार कराई जाती थी। समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जैसे स्थानीय सड़कें और पुल बनाने और गिरजाघरों के लिए अलग कर लगाए जाते थे। ऐसी दशा में यदि फसल खराब हो जाती थी तो फ्रांस के किसानों की दशा और भी शोचनीय हो जाती थी और उनमें से बहुतों को भूखे पेट रहना पड़ता था।

मध्यम वर्ग—तीसरे वर्ग के सभी व्यक्ति भूमि पर काम नहीं करते थे। इसी वर्ग में कस्बों और शहरों में रहने वाले शिल्पी, मजदूर और निर्धन व्यक्ति शामिल थे। बुर्जुआ (Bourgeoisie) या मध्यम वर्ग में लेखक, डॉक्टर, जज, वकील, अध्यापक और असैनिक अधिकारी जैसे शिक्षित व्यक्ति तथा व्यापारी, बैंकर और कारखाने वाले धनी व्यक्ति शामिल थे। आर्थिक दृष्टि से इस वर्ग के लोगों का महत्व बहुत अधिक था। वे उन उद्योगपतियों के अगुआ थे जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी में आर्थिक और सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन कर दिया।

इतिहास में व्यापारियों-उद्योगपतियों के ये समूह बिल्कुल नए थे, किंतु अमरीका के फ्रांसीसी उपनिवेशों से व्यापार करने के कारण ये बहुत धनी हो गए थे और इनका महत्त्व बहुत बढ़ गया था। इनमें से कुछ ने जमीन खरीद ली थी और उनके पास बड़ी-बड़ी जमींदारियां हो गई थीं। इन व्यक्तियों के पास पर्याप्त धन था, इसलिए राज्य, पादरी और अभिजात वर्ग सभी इनके ऋणी थे। इसके बावजूद मध्यमवर्ग को राजनीतिक अधिकार बिल्कुल नहीं मिले थे। इस वर्ग का समाज में भी कोई विशेष आदर नहीं था। इस वर्ग के सदस्यों को बार-बार अपमान सहना पड़ता था।

दस्तकार तथा शहरों के मजदूर

अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस के शहरों के निर्धन वर्ग की दशा बहुत खराब थी। इस वर्ग में मजदूर और दस्तकार शामिल थे उनको हीन प्राणी समझा जाता था और उनके कोई अधिकार नहीं थे। बिना मालिक की इच्छा के और उससे अच्छे आचरण का प्रमाण-पत्र लिए बिना कोई मजदूर अपनी नौकरी छोड़कर दूसरी नौकरी नहीं कर सकता था। जिन मजदूरों के पास प्रमाण-पत्र न होता, उन्हें बंदी बनाया जा सकता था। उन्हें सुबह से शाम तक कठिन परिश्रम करना पड़ता था और बहुत से कर देने पड़ते थे।

सताए हुए मजदूर बहुत-सी गुप्त संस्थाएं बना लेते थे और बहुधा हड़ताल और विद्रोह करते थे। आगे चलकर फ्रांसीसी क्रांति में इस वर्ग के साथ-साथ पेरिस की जनता ने भी प्रमुख भाग लिया। इसकी जनसंख्या पांच लाख से अधिक थी। इनमें से अधिकतर विद्रोह करने का अवसर ढूंढ रहे थे जिससे कि वे पुरानी व्यवस्था पर पूरी चोट कर सकें।

राजतंत्र

फ्रांस में राज्य का अध्यक्ष राजा था, जो पूर्णतया निरंकुश होता था जब क्रांति प्रारंभ हुई तब फ्रांस में लुई सोलहवां राज कर रहा था। वह बुद्धिमान नहीं था। वह बहुत जिद्दी तथा सरकारी कार्यों से उदासीन रहने वाला व्यक्ति था। कहते हैं कि दिमागी कार्यों में उसका मन नहीं लगता था। उसकी सुंदर किंतु निपट मूर्ख पत्नी मेरी एंतोइने उत्सवों में काफी रुपये लुटाती थी। वह अपने आदमियों को ओहदे दिलाने के लिए राजकाज में दखल देती रहती थी। लुई भी अपने प्रिय व्यक्तियों को बहुत से उपहार और वृत्तियां देता था। ऐसी परिस्थिति में, जैसी कि आशा की जा सकती है, सरकार को बहुधा आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था। बड़ी सेना और युद्धों के व्यय ने आर्थिक दशा और भी बिगाड़ दी। अंत में सरकार का दिवाला निकल गया।

बुद्धिजीवियों का आंदोलन

किसी भी क्रांति की सफलता के लिए जनता का असंतोष और उसकी दीन अवस्था ही पर्याप्त नहीं है। कोई ऐसी शक्ति होनी चाहिए जो असंतुष्ट वर्ग को अपनी सारी शक्ति शत्रु पर केन्द्रित करने के लिए प्रोत्साहित करे और उन आदर्शों को इस वर्ग के सामने रखे जिनके लिए वह लड़ सके। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि क्रांतिकारी कार्यों से पूर्व क्रांतिकारी विचारधारा का होना आवश्यक है।

वाल्टेयर

अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस में अनेक क्रांतिकारी विचारक हुए। यदि इन अर्थशास्त्रियों और दार्शनिकों के विचार जनसाधारण तक न पहुंचते, तो फ्रांसीसी क्रांति में हिंसात्मक कार्यों के सिवाय और कुछ न होता।

रूसो

तर्कवाद और तर्क का युग

फ्रांसीसी बुद्धिजीवियों ने अठारहवीं शताब्दी में जो विचार व्यक्त किए वे तर्क पर आधारित थे। इसलिए इस काल को **'तर्क का युग'** कहते हैं। ईसाई धर्म की शिक्षा थी कि मनुष्य का जन्म ही कष्ट भोगने के लिए हुआ है। क्रांतिकालीन फ्रांस के दार्शनिकों ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा कि मनुष्य का जन्म इस संसार में सुखी रहने के लिए हुआ है। इन बुद्धिजीवियों का मत था कि यदि तर्क के आधार पर मिथ्या विश्वासों को नष्ट कर दिया जाए और मानवीय प्रथाओं तथा संगठनों में सुधार कर दिया जाए तो मनुष्य सुख प्राप्त कर सकता है। वे ईश्वर के अस्तित्व को या तो मानते ही न थे, या उसकी उपेक्षा करते थे। ईश्वर के स्थान पर वे प्रकृति को मानते थे और कहते थे कि मनुष्य को 'प्राकृतिक' नियमों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और तर्क में आस्था रखनी चाहिए। उनके अनुसार समाज को सुधारने और पूर्णता प्रदान करने के लिए केवल तर्क बुद्धि ही पर्याप्त है।

पादरियों पर प्रहार

फ्रांसीसी दार्शनिकों के विचारों का प्रभाव सबसे पहले पादरियों पर पड़ा। इन दार्शनिकों ने पुनर्जागरण युग में होने वाली वैज्ञानिक प्रगति का आश्रय लेकर पादरियों के विरुद्ध अपना आंदोलन प्रारंभ किया। इस समय के सबसे प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखकों में वाल्तेयर का नाम उल्लेखनीय है। वह नास्तिक नहीं था किंतु उसका मत था कि सभी धर्म व्यर्थ हैं, क्योंकि वे तर्क पर आधारित नहीं हैं। वाल्तेयर के बाद अन्य नास्तिक या भौतिकवादी दार्शनिक फ्रांस में बहुत लोकप्रिय हो गए। उनका विश्वास था कि मनुष्य का भवितव्य स्वर्ग में नहीं अपितु इसी संसार में है। कैथोलिक धर्म की आलोचना में जो रचनाएं लिखी गईं उन्होंने क्रांति की ज्वाला को अधिक तीव्र कर दिया, क्योंकि चर्च निरंकुश, राजतंत्र और प्राचीन सामंती व्यवस्था का समर्थन करता था। पादरियों पर जो भी प्रहार किए गए वे वास्तव में प्राचीन सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार थे।

अर्थशास्त्री

उस समय फ्रांस के अर्थशास्त्रियों को 'फिजियोक्रेट' कहा जाता था। 'अहस्तक्षेप के सिद्धांत' में उनकी पूरी आस्था थी। इस सिद्धांत के विषय में तुम पिछले अध्याय में पढ़ चुके

हो। तुम्हें याद होगा कि इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति का प्रबंध करने या बेचने की पूरी आजादी थी। इंग्लैंड और अमरीका के क्रांतिकारियों की भांति फिजियोक्रेटों का मत था कि कर जनता की सहमति से ही लगाए जाने चाहिए। ये विचार उच्च वर्गों के विशेषाधिकारों और सामंती अधिकारों पर कुठाराघात थे।

लोकतंत्र

मांटेस्क्यू नामक दार्शनिक ने इस बात पर विचार किया कि मनुष्य के लिए किस प्रकार का शासन सर्वश्रेष्ठ रहेगा। उसने गणतंत्रीय लोकतंत्र के सिद्धांतों की रूपरेखा तैयार की। रूसो पहला लेखक था जिसने लोकप्रिय प्रभुसत्ता (Popular Sovereignty) और लोकतंत्र का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। उसका कथन था कि 'मानव इस जगत में आजाद पैदा हुआ परंतु अब वह जंजीरों में जकड़ा हुआ है।' उसने कहा कि प्राकृतिक अवस्था में मानव पूर्णतया स्वतंत्र था किंतु संपत्ति की भावना के विकास के साथ-साथ उसकी स्वतंत्रता समाप्त हो गई। उसका मत था कि आधुनिक समाजों में संपत्ति एक आवश्यक बुराई है। रूसो के अनुसार एक नई सामाजिक संविदा (Social Contract) की आवश्यकता है। इस संविदा के द्वारा मनुष्य को उस स्वतंत्रता, समानता और सुख की गारंटी मिलनी चाहिए, जिसका उसने प्राकृतिक अवस्था में उपभोग किया था। रूसो के सिद्धांतों में एक सिद्धांत वह भी था जिसको अमरीका की स्वतंत्रता की घोषणा में सम्मिलित किया गया। यह सिद्धांत है : कोई राजनीतिक पद्धति जो जनता के सहयोग पर आधारित न हो, सफल नहीं हो सकती।

क्रांति का प्रारंभ

सन् 1789 ई० में जब सोलहवें लुई को धन की

जे.एल. डेविड द्वारा बनाया हुआ 20 जून सन् 1789 को हुई राष्ट्रीय सभा की बैठक का दृश्य। बैठक टेनिस खेल के मैदान में संपन्न हुई थी। इसमें राष्ट्रीय सभा के सदस्यों ने शपथ ली कि जब तक उन्हें संविधान नहीं मिल जाता, वे बराबर सभा जारी रखेंगे।

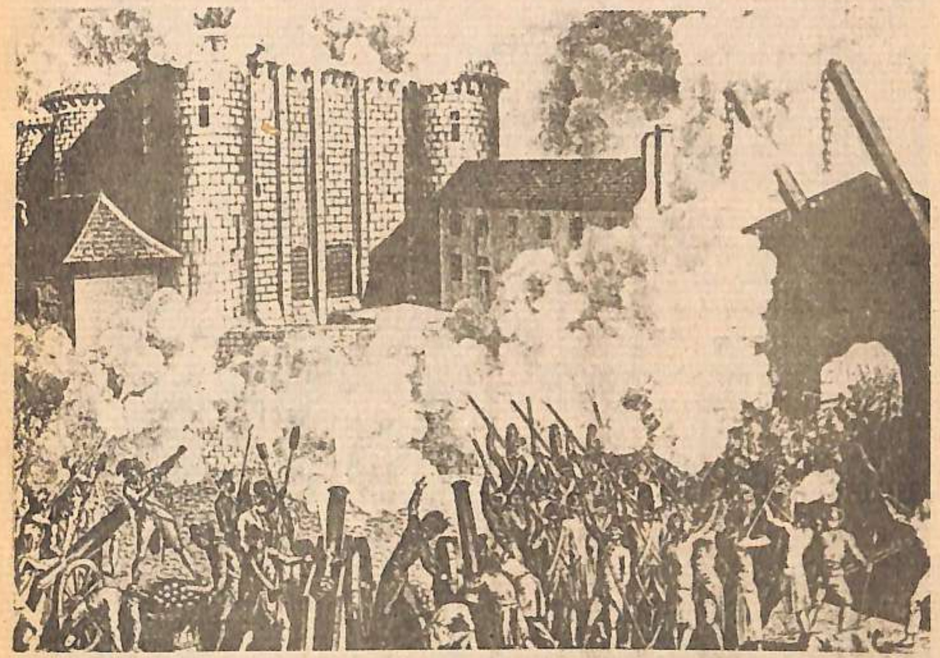

बैस्टील पर धावे का दृश्य

आवश्यकता हुई तो विवश होकर वह पुरानी सामंती सभा—स्टेट्स-जनरल का अधिवेशन बुलाने के लिए सहमत हो गया। 1614 ई० से इस सभा का कोई अधिवेशन नहीं हुआ था। अब लुई नए ऋण लेने और कर लगाने के लिए इस सभा की सहमति चाहता था। इस सभा में तीनों वर्गों का प्रतिनिधित्व था, किंतु तीनों वर्ग अपने अलग-अलग अधिवेशन करते थे। 17 जून 1789 को तीसरे वर्ग के सदस्यों ने इस आधार पर कि वे जनसंख्या के 96 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते हैं, अपने को राष्ट्रीय सभा घोषित किया। 20 जून को जब वे अधिवेशन करने के लिए इकट्ठे हुए तो उन्होंने देखा कि जिस हॉल में उनका अधिवेशन होने वाला था, उस पर शाही अंगरक्षकों का पहरा है। वे अधिवेशन करने के लिए दृढ़संकल्प थे। इसलिए वे पास के शाही टेनिस-कोर्ट में एकत्रित हुए और वहीं उन्होंने फ्रांस का संविधान बनाना प्रारंभ किया। तब लुई ने उस सभा को भंग करने का प्रयत्न किया। सेना बुला ली गई और इस बात की अफवाह फैल गई कि शीघ्र ही सभा के प्रमुख सदस्यों को बंदी बना लिया जाएगा। इससे जनता में रोष की लहर दौड़ गई और हजारों की संख्या में लोग वहां इकट्ठे होने लगे। थोड़ी देर बाद शाही अंगरक्षक भी उनसे जा मिले। 14 जुलाई को उन्होंने बैस्टील नाम के राज्य के कारागृह को घेर लिया। चार घंटे घेरा डालने के बाद वे जेल का फाटक तोड़ने में सफल हुए और उन्होंने सभी बंदियों को मुक्त कर दिया। बैस्टील कारागृह की समाप्ति निरंकुश शासन के पतन की प्रतीक थी। फ्रांस में हर वर्ष 14 जुलाई का दिन राष्ट्रीय त्यौहार के रूप में मनाया जाता है।

राजा और दरबारी दोनों ही इस समाचार से भौंचक्के हो गए। अगले दिन जब लुई को उस सभा और पेरिस की घटनाओं का पूरा ब्यौरा दिया गया तो उसने कहा 'यह तो सरासर विद्रोह है।' समाचार लाने वाले ने उत्तर दिया, 'महाराज, यह विद्रोह नहीं, यह तो क्रांति है।'

मानव और नागरिक अधिकारों की घोषणा जिसे 26 अगस्त सन् 1789 में राष्ट्रीय सभा द्वारा स्वीकार किया गया। घोषणा के अनुच्छेद-1 में कहा गया है: "सभी मनुष्यों को जन्मजात स्वतंत्रता और अधिकारों के मामले में समानता प्राप्त हैं।"

14 जुलाई 1789 के पश्चात् सोलहवां लुई नाममात्र के लिए राजा बना रहा। राष्ट्रीय सभा देश के लिए अधिनियम बनाने लगी। बैस्टील के पतन के पश्चात् अन्य कस्बों, गांवों और शहरों में भी क्रांति फैल गई। राष्ट्रीय सभा ने **मानव और नागरिकों के अधिकारों की घोषणा** को स्वीकार किया। इस घोषणा के द्वारा कानून की दृष्टि में सब व्यक्तियों की समानता, समस्त सार्वजनिक पदों पर सब नागरिकों के नियुक्त हाने का अधिकार, बिना कारण दंड देने या बंदी बनाए जाने से मुक्ति और भाषण व प्रकाशन (प्रेस) की स्वतंत्रता के सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया था। मध्यवर्ग के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण निश्चय वे थे जिनके अनुसार कर का भार सभी वर्गों पर बराबर डालने का निश्चय किया गया और सभी को निजी संपत्ति रखने का अधिकार दिया गया। यूरोप के लिए यह क्रांतिकारी घोषणा अत्यधिक महत्त्व की थी। यूरोप के सभी देशों का शासन उस समय विशेषाधिकारों पर आधारित था। यदि सभी देशों में इन नवीन सिद्धांतों पर आचरण किया जाता, तो यूरोप की संपूर्ण पुरानी व्यवस्था समाप्त हो जाती।

युद्ध और राजतंत्र का अंत

तुरंत ही फ्रांस की जनता को क्रांति और राष्ट्र की रक्षा के लिए युद्ध में फंसना पड़ा। बहुत से अभिजात वर्ग के व्यक्ति और पादरी भागकर दूसरे देशों में चले गए और उन्होंने

जे.एल. डेविड का बनाया हुआ मेरी एंतोइने का उस समय का रेखा चित्र जब उन्हें प्राणदंड दिया जाने वाला था।

वहां की सरकारों को क्रांति के विरुद्ध हस्तक्षेप करने के लिए भड़काया। राजा और रानी ने भी भेष बदल कर फ्रांस से भागना चाहा किंतु जनता ने उन्हें पहचान लिया और उन्हें देशद्रोहियों और बंदियों के रूप में वापस लाया गया।

कुछ दिनों बाद पुरानी राष्ट्रीय सभा के स्थान पर नई विधान सभा बनाई गई। इस सभा ने उन सभी व्यक्तियों की संपत्ति, जो देश छोड़कर भाग गए थे, जब्त कर ली। इसने आस्ट्रिया के सम्राट के पास, जो फ्रांस के विरुद्ध संगठन बना रहा था, यह संदेश भेजा कि वह इस प्रकार का कोई कदम न उठाए जो फ्रांसीसी राष्ट्र के विरुद्ध हो। जब आस्ट्रिया के सम्राट ने यह स्वीकार न किया तो फ्रांस की विधान सभा ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

फ्रांस को आस्ट्रिया, प्रशा और सेवॉय (इटली) के राजाओं के विरुद्ध लड़ना पड़ा। देश से भाग जाने वाले फ्रांस के निवासियों की सेना ने भी इन तीनों राजाओं की सहायता की। फ्रांस ने सामंतवाद और राजतंत्र की समाप्ति कर दी और अपनी नई संस्थाओं का निर्माण स्वतंत्रता तथा समानता के आधार पर किया। आस्ट्रिया, प्रशा और सेवॉय में अभी पुरानी जीवन-पद्धति ही चल रही थी। आस्ट्रिया तथा प्रशा के सेनापतियों ने घोषणा की थी कि उनका उद्देश्य फ्रांस में अराजकता का दमन करना और वहां के राजा को उसके अधिकार दिलाना था। फ्रांस के क्रांतिकारियों ने इसका उत्तर उन सभी व्यक्तियों को मित्रता और सहायता का वचन देकर दिया जो अपने देशों में पुरानी व्यवस्था समाप्त करने के इच्छुक थे।

बाद में, राजा और रानी पर मुकद्दमा चलाया गया और उन्हें 1793 ई० में फांसी दे दी गई। इसके बाद ब्रिटेन, हालैंड, स्पेन और हंगरी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की गई। तब फ्रांस के एक उग्र दल जैकोबिन्स ने जिसके, सदस्य प्रत्यक्ष लोकतंत्र में विश्वास करते थे, अपनी सरकार बनाई। क्रांति-विरोधी शक्तियों को कुचलने के लिए इस दल ने कठोर कदम उठाए। चौदह महीनों में लगभग 17,000 व्यक्तियों पर मुकद्दमें चलाए गए और उन्हे फांसी दे दी गई। इनमें ऐसे भी लोग थे जो निर्दोष थे। कुछ लोगों ने इसे 'आतंक का राज्य' कहा है। एक नया संविधान बनाया गया। किंतु इस बीच में सेना की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इस कारण नेपोलियन की शक्ति का उदय हुआ।

जे.एल. डेविड द्वारा बनाया हुआ 1800 ई. में नेपोलियन का चित्र

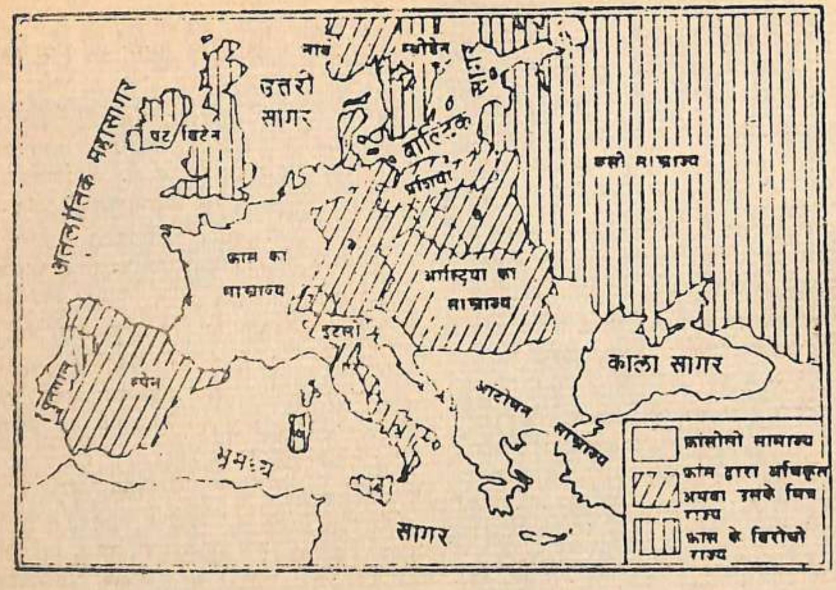

सन् 1810 का यूरोप-1. डेनमार्क 2. राइन का संगठन, 3. नेपुल्स का साम्राज्य, 4. सिसिली का साम्राज्य, 5. कोर्सिका, 6. सार्डिनिया, 7. स्विटजरलैंड, 8. वारसा की बड़ी रियासत

थोड़े दिन बाद उसने अपने को फ्रांसीसी गणराज्य का सम्राट घोषित किया।

क्रांति और नेपोलियन के युद्ध

सन् 1792 ई० से 1815 ई० तक फ्रांस बराबर युद्धों में फंसा रहा। इन युद्धों में एक ओर अकेला फ्रांस था और दूसरी ओर अन्य राष्ट्र। कुछ इतिहासकारों ने इसे अंतर्राष्ट्रीय गृह-युद्ध कहा है क्योंकि यह युद्ध क्रांतिकारी फ्रांस और पुरानी व्यवस्था का समर्थन करने वाले देशों में हुआ। इस युद्ध में सैनिक दृष्टि से फ्रांस अकेला था। किंतु नेपोलियन के सम्राट बनने से पूर्व संसार के प्राय प्रत्येक विचारशील व्यक्ति ने फ्रांसीसी क्रांति के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी।

सन् 1793-96 के मध्य फ्रांसीसी सेनाओं ने लगभग संपूर्ण पश्चिमी यूरोप पर विजय हासिल कर ली। जब नेपोलियन माल्टा, मिस्र और सीरिया की ओर बढ़ा (1797-99) तथा इटली से फ्रांसीसियों को बाहर ढकेल दिया गया। जब सत्ता पर नेपोलियन का कब्जा हुआ, फ्रांस ने अपने खोए हुए भूखण्ड पुनः वापस ले लिये। उसने आस्ट्रिया को 1805, में प्रशा को 1806 में और रूस को 1807 में परास्त किया। समुद्र के ऊपर ब्रिटिश नौ सेना पर फ्रांसीसी अपना प्रभुत्व कायम नहीं कर सके। अंततोगत्वा तकरीबन सारे यूरोपीय देशों ने मिलकर सन् 1813 में लिब्जिग में फ्रांस को परास्त किया। बाद में इन मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने पेरिस पर कब्जा कर लिया। नेपोलियन पराजित हो गया। जून 1815 में वाटरलू में पुनः विजय हासिल करने की उसकी कोशिश नाकाम कर दी गई। वियना सम्मेलन में शांति संधियां हुईं। इन संधियों का यूरोप के सभी देशों से संबंध था।

क्रांति के नतीजे

क्रांति का एक महत्वपूर्ण नतीजा फ्रांस में सामंतवाद का विनाश था। पुराने सामंतवादी सारे कानून रद्द कर दिए गए। मध्यवर्ग के लोगों ने चर्च और समुदाय की जमीन खरीद ली। अभिजात वर्ग की जमीन जब्त कर ली गई। सुविधाजीवी वर्गों को समाप्त कर दिया गया। जब

नेपोलियन सत्ता में आया तो नेपोलियन के कानून चलाए गए थे। इन कानूनों की बहुत सी बातें लंबे समय तक चलन में बनी रहीं। उनमें से कुछ तो आज भी बरकरार हैं। फ्रांस में क्रांति का दूसरा स्थायी नतीजा यह हुआ कि सामंतीय अर्थव्यवस्था को उखाड़ फेंका गया। सामंतीय अर्थव्यवस्था की जगह एक नई अर्थ-व्यवस्था कायम हुई। इस नई व्यवस्था का नाम पूंजीवाद था जिसके बारे में तुम अध्याय 7 में पढ़ चुके हो। यहां तक कि राजतंत्र के पुनः सत्ता में आने के बाद भी सामंती व्यवस्था को वापस नहीं लाया जा सका। न ही नई अर्थतंत्रीय प्रणाली को समाप्त किया जा सका और न ही आधुनिक उद्योग वाणिज्य के मालिकों की बढ़ती हुई शक्ति को रोका जा सका।

फ्रांस की क्रांति ने 'राष्ट्र' शब्द का आधुनिक अर्थ स्पष्ट किया। राष्ट्र केवल उस प्रदेश को नहीं कहते जहां वहां के लोग रहते हैं बल्कि स्वयं उन लोगों को ही कहते हैं। अब फ्रांस केवल वह देश-प्रदेश नहीं रहा जिसे लोग फ्रांस नाम से जानते थे, बल्कि फ्रांस का अर्थ 'फ्रांस के लोग' समझा जाने लगा। इससे प्रभुसत्ता के विचार का आविर्भाव हुआ-प्रभुसत्ता, अर्थात् कोई राष्ट्र अपने स्वयं के कानूनों और प्रभुत्व के अलावा किसी और कानून या प्रभुत्त्व को मान्यता नहीं देता। किसी राष्ट्र के प्रभुसत्ता संपन्न होने का अर्थ यह हुआ कि जिन लोगों द्वारा वह राष्ट्र बना है, वे ही लोग उस राष्ट्र की शक्ति और प्रभुता के आधार हैं। लोगों से ऊपर कोई और शासक नहीं हो सकता, केवल एक गणतंत्र होगा जिसकी सरकार लोगों से प्रभुता अथवा अधिकार प्राप्त करेगी और लोगों के प्रति उत्तरदायी होगी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब नेपोलियन सम्राट बना तो उसने अपने को 'फ्रांसीसी गणतंत्र का सम्राट' कहलवाया हालांकि उसने वहां के गणतंत्र को खत्म कर दिया। राष्ट्रीय अर्थात् लोगों की प्रभुता होने के विचार के पीछे ऐसी ही शक्ति थी। लोगों के सर्वप्रभुता संपन्न होने के विचार के कारण ही फ्रांस की सैनिक शक्ति प्रबल हो सकी और संपूर्ण राष्ट्र उस सेना के साथ संगठित हो गया जिसके सैनिक क्रांतिदर्शी नागरिक थे। इस युद्ध में, जिसमें यूरोप के सारे देश फ्रांस का विरोध कर रहे थे, भाड़े के सैनिकों को भर्ती कर फ्रांस कभी टिक नहीं सकता था।

जैकोबिन संविधान के अंतर्गत समस्त लोगों को मताधिकार और विद्रोह करने का अधिकार दिया गया। संविधान में यह स्पष्ट लिखा गया कि सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्रत्येक नागरिक की आजीविका का प्रबंध करे। सरकार का उद्देश्य समस्त जनता को सुखी बनाना रखा गया। यह उद्देश्य कभी भी पूर्णरूप से कार्यान्वित नहीं किया जा सका किंतु यह वास्तव में इतिहास में पहला लोकतंत्रीय संविधान था। इस सरकार ने फ्रांसीसी उपनिवेशों में दासता समाप्त कर दी। नेपोलियन की राजसत्ता को अपने हाथ में लेना जनस्वातंत्र्य की प्रगति के पथ में पीछे हटना था। यद्यपि उसने गणतंत्र को समाप्त करके साम्राज्य को स्थापित किया, किंतु गणतंत्र की भावना नष्ट न हो सकी। नेपोलियन की हार के बाद, फ्रांस का पुराना शासक राजघराना फिर राजगद्दी पा गया। यद्यपि कुछ ही वर्षों बाद 1830 ई० में फिर एक क्रांति हुई। 1848 ई० में राजतंत्र को फिर उखाड़ फेंका गया हालांकि वह जल्दी ही फिर शक्ति-संपन्न हो गया। अंत में 1871 ई० में गणतंत्र की पुनः स्थापना की गई।

जनसाधारण, अर्थात् शहरों के निर्धन मजदूरों और किसानों के पूर्ण सहयोग और प्रयत्न से यह क्रांति हुई थी। 1792 ई० का वर्ष इतिहास का वह प्रथम वर्ष है जब बिना संपत्ति वाले वर्गों, मजदूरों और किसानों को समान राजनीतिक अधिकार दिए गए।

किंतु मतदान और प्रतिनिधि चुनने के अधिकारों से जन-साधारण की सब समस्याओं का हल नहीं निकला। किसानों को भूमि मिल गई। किंतु मजदूरों और कारीगरों को क्रांति के कारण वास्तविक समानता प्राप्त न हुई जबकि वास्तव में क्रांति के मुख्य संचालक वही थे। शीघ्र ही फ्रांस उन देशों में से हो गया जिनमें सामाजिक समानता एवं समाजवाद के विचारों ने पहली बार एक नए किस्म के राजनीतिक आंदोलन को उठाया।

सन् 1815 ई० के बाद के क्रांतिकारी और राष्ट्रीय आंदोलन

फ्रांस की क्रांति का विश्व पर प्रभाव

फ्रांस की क्रांति ने सारे संसार को झंझोड़ कर रख दिया था। संसार के अनेक भागों में इसका सीधा प्रभाव आगे आने वाले वर्षों में महसूस किया गया। यूरोप के लगभग सभी देशों में और दक्षिण व मध्य अमरीका में अनेक क्रांतिकारी आंदोलन इससे प्रेरित हुए। बहुत समय तक अनेक राष्ट्रों के लोग फ्रांस की क्रांति को एक उत्तम आदर्श मानकर अपने यहां भी इसी प्रकार की क्रांति लाने की चेष्टा

'मनुष्यों के बीच समता' का लाक्षणिक चित्रण

करतें रहे। फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव को यूनानी स्वातंत्र्य युद्ध के एक क्रांतिकारी सेनानी टी० कोलोकोट्रांस के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं: 'मेरी दृष्टि में फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन के कर्मों ने सारे संसार की आंखें खोल कर रख दीं। पहले राष्ट्रों को कुछ नहीं मालूम था और लोग सोचते थे कि राजा ही पृथ्वी के भगवान हैं और वे जो कुछ करते हैं, उसकी तारीफ करने के लिए लोग बाध्य हैं। इस वर्तमान परिवर्तन द्वारा लोगों पर शासन करना अब कठिन हो गया है'। यद्यपि 1815 ई० में फ्रांस के पुराने राजघराने को पुनः सत्ता प्राप्त हो गई, और यूरोप की तानाशाही सरकारें अपने आपको फिलहाल सुरक्षित समझने लगीं, फिर भी शासकों को लगा कि अब लोगों पर हुकूमत करना कठिन होता जा रहा है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यूरोप के अनेक भागों व अमरीका में जो परिवर्तन हुए, उनमें से कुछ क्रांति और नेपोलियन के युद्धों के कारण पड़ने वाले प्रत्यक्ष व तात्कालिक परिणाम थे। अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ फ्रांस जिन लड़ाइयों में लगा रहा उनके परिणामस्वरूप यूरोप के बहुत से बड़े-बड़े इलाके कुछ समय के लिए फ्रांस के कब्जे में आ गए थे। फ्रांस के सैनिक जहां कहीं भी गए, अपने साथ वे आजादी व समानता के विचार ले गए। इससे पुरानी सामंती व्यवस्था को धक्का लगा। अधिकृत प्रदेशों में उन्होने कृषि-दासता की प्रथा समाप्त की और प्रशासन का आधुनिकीकरण किया। नेपोलियन की अधीक्षता में फ्रांसीसी लोग उद्धारक की बजाय विजेता हो गए थे। फ्रांसीसी आक्रमण का जिन देशों ने विरोध किया, उन्होंने अपने यहां की सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं में सुधार किए। यूरोप की अग्रगामी शक्तियां फ्रांस अथवा क्रांति से प्रभावित देशों में पुरानी व्यवस्था को कायम रखने में सफल न हो सकी। अठारहवीं शताब्दी की राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्थाओं को करारा धक्का लगा। उन्हें शीघ्र ही यूरोप के हर कोने में पहुंचे हुए क्रांतिकारी आंदोलन के प्रभाव के कारण मौत का शिकार होना पड़ा

अमरीका में क्रांतियां

सुदूर स्थित अमरीकी महाद्वीप में क्रांति का प्रभाव

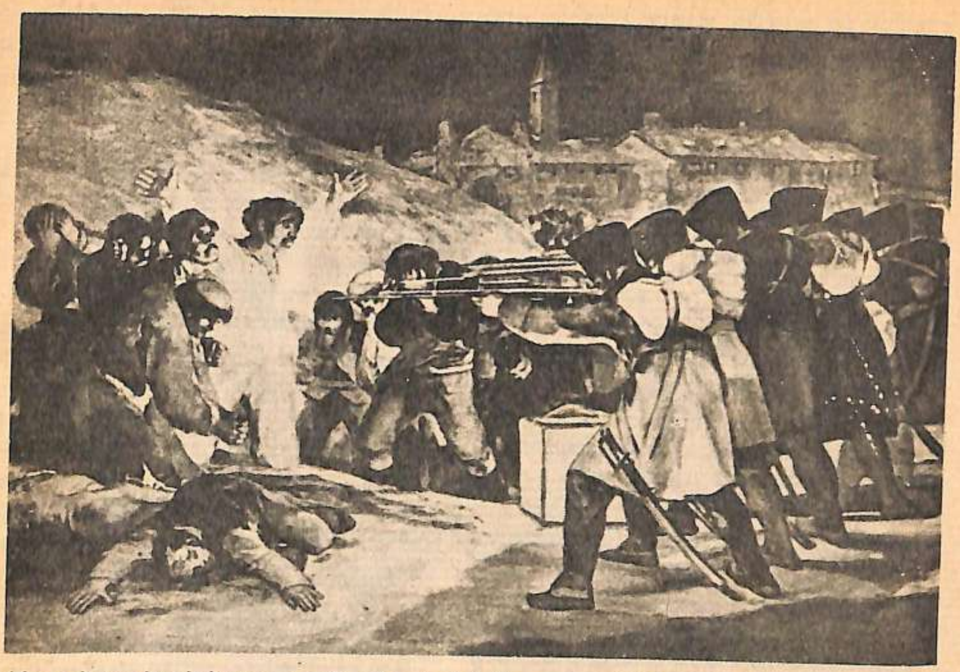

नेपोलियन के सत्ता में आने के बाद युद्ध, क्रांतिकारी युद्ध दूसरे देशों पर कब्जा करने के लिए युद्ध में बदल गया। स्पेनी चित्रकार गोया के इस चित्र में फांसीसी सैनिकों को स्पेन निवासियों की हत्या करते हुए दिखाया गया है।

महसूस किया गया। क्रांतिकारी फ्रांस ने अपने उपनिवेशों में दासता की प्रथा समाप्त कर दी थी। पहले का फ्रांसीसी उपनिवेश हैती गणतंत्र हो गया। यह उत्तरी व दक्षिणी अमरीका के काले लोगों द्वारा जो पूर्वकाल में दास थे, स्थापित पहला गणतंत्र था। इससे प्रेरणा पाकर उत्तरी व दक्षिणी अमरीका में विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने, दासता की प्रथा समाप्त करने और स्वतंत्र गणतंत्रों की स्थापना करने के लिए क्रांतिकारी आंदोलन शुरु हुए। मध्य व दक्षिणी अमरीका में प्रमुख यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियां स्पेन और पुर्तगाल की थीं। फ्रांस ने स्पेन पर कब्जा कर लिया था और पुर्तगाल को संघर्ष में उलझाए हुए था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ये दोनों साम्राज्यवादी देश अपने उपनिवेशों से काट दिए गए, नतीजा यह हुआ कि मध्य व दक्षिणी अमरीका के अधिकांश स्पेनी व पुर्तगाली उपनिवेश स्वतंत्र हो गए। इन देशों में स्वाधीनता के आंदोलनों ने अमरीकी स्वाधीनता युद्ध की सफलता से प्रेरणा पाई थी। फ्रांस की क्रांति से उनको अपनी सफलता की उम्मीद बंधी। उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक लगभग संपूर्ण मध्य व दक्षिणी अमरीका स्पेनी-पुर्तगाली शासन के चंगुल से मुक्त हो गया था और कई स्वतंत्र गणराज्यों की स्थापना हो चुकी थी। इन गणराज्यों में दासता की प्रथा समाप्त कर दी गई। हां, संयुक्त राज्य में अवश्य ही यह प्रथा कई दशकों तक बनी रही जहां से अंततः गृह-युद्ध के बाद ही समाप्त हो सकी। इस गृह-युद्ध के बारे में तुम इस अध्याय के शुरू में पढ़ चुके हो। इस समय के दक्षिणी अमरीका के क्रांतिकारी आंदोलनों के महान् नेता साइमन बोलीवार, बर्नार्डो ओ' हिगिंस और सैन मार्टिन थे।

यूरोप में क्रांतिकारी आंदोलन

सन् 1815 ई० के बाद के काल में यूरोप के हर देश में क्रांतिकारी गतिविधियों का आविर्भाव हुआ। कुछ देशों में

क्रांतिकारियों का उद्देश्य राजतंत्रीय शासकों को उखाड़ फेंकना व कृषिदासता को समाप्त करना था और कुछ अन्य देशों में सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक सुधार करना था। इस काल में एक बलवती शक्ति के रूप में राष्ट्रीयता का उदय हुआ। यह अवश्य है कि यह राष्ट्रीयता न तो किसी खास प्रदेश के लिए विशिष्ट थी न अंध देशभक्ति वाली थी। स्वाधीनता के लिए लड़ने वाले क्रांतिकारी केवल अपनी स्वाधीनता के लिए या केवल अपने शासकों को ही समाप्त करने के लिए नहीं लड़ रहे थे। वे यह भी नहीं चाहते थे कि उनका राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों पर शासन करे। असल में वे तो सर्वत्र तानाशाही को खत्म करने के उद्देश्य से प्रेरित हुए थे। वे सब प्रकार की निरंकुशता के खिलाफ लड़ने वाले जनगणों के एक प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय भाई-चारे के रूप में संगठित हो गए थे। दक्षिणी अमरीका के क्रांतिकारीओं हिगिंस, साइमन बोलीवार और सैन मार्टिन दक्षिण अमरीका के अनेक देशों के लिए लड़े। इटली की आजादी और एकता के लिए लड़ने वाले नेताओं में सर्वोच्च मेज़िनी था। उसने पोलैंड, जर्मनी और इटली के स्वातंत्र्य के लिए 'यंग पोलैंड', 'यंग जर्मनी', 'यंग इटली' जैसे कई संगठन बनाए। इटली के क्रांतिकारियों का दूसरा बड़ा नेता गैरीबाल्डी भी दक्षिणी अमरीका के जनगणों की स्वाधीनता के लिए लड़ा। इन क्रांतिकारियों की मनोवृत्ति को संक्षेप में इंग्लैंड के महाकवि लॉर्ड बायरन, जो यूनान की आज़ादी के लिए लड़ा और मरा था, के शब्दों में यों प्रकट कर सकते हैं: "और मैं लड़ूंगा...हर तानाशाही के खिलाफ़...हर देश में..."

जिस प्रकार क्रांतिकारियों ने तानाशाही को खत्म करने के अपने सर्वसामान्य लक्ष्य के लिए अपने को संगठित कर लिया था उसी प्रकार से राजतंत्रीय सरकारों ने भी इस तरह के हर विद्रोह और आंदोलन को कुचलने के लिए अपने को एक कर लिया था। 1815 ई० में आस्ट्रिया, ब्रिटेन, रूस और प्रशा ने एक संधि की। इस संधि के घोषित लक्ष्यों में से एक था—जनता द्वारा किसी ऐसे शासक को जिसे ये देश 'वैध' शासक मानते हों—उखाड़ने की कोशिश को कुचलना। फ्रांस का शासक भी शीघ्र ही इस संधि में शामिल हो गया। आस्ट्रिया, रूस और प्रशा ने एक और संधि कर रखी थी जिसे वे **पवित्र संधि** कहते थे इसमें आगे चल कर और शासक भी शामिल हो गए। यह संधि पहले वाली संधि से भी कहीं अधिक लोकतंत्रीय विचारों और आंदोलनों का खुला विरोध करती थी। 1815 ई० के बाद यूरोप के शासकों ने अपने और दूसरे देशों में चलने वाले स्वाधीनता और लोकतंत्र के सभी आंदोलनों को कुचलने की पूरी कोशिश की। उदाहरण के लिए 1821 ई० में आस्ट्रिया ने अपनी फौजें इटली के नेपल्स और पदीमांत में हुए विद्रोह को दबाने के लिए वहां भेजी। यूरोप के अनेक देशों में प्रेस की आज़ादी छीन ली गई और क्रांतिकारियों की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए बहुत बड़ी संख्या में जासूस भर्ती किए गए।

यूरोप के क्रांतिकारी आंदोलनों को दबाने के लिए वहां के शासकों ने जो उपाय किए वे असफल रहे। सन् 1830 ई० में अनेक देशों में क्रांति की चिनगारी दहक उठी। फ्रांस का राजा भाग कर इंग्लैंड पहुँचा और उसकी जगह लुई फिलिप ने ले ली जिसने जनता की इच्छानुसार शासन करने का वचन दिया। हॉलैंड से आजादी लेने के लिए बेल्जियम में विद्रोह हुआ। इटली व जर्मनी के कई राज्यों में और पोलैंड में बगावत के झंडे खड़े किए गए। हालांकि अधिकांश विद्रोहों को दबा दिया गया, फिर भी दो नए राष्ट्रों की आजादी को मान्यता मिल ही गई—सन् 1830 में यूनान को और 1839 में बेल्जियम को।

सन् 1848 ई० की क्रांतियां

1830 ई० को विद्रोहों को दबा दिए जाने के कुछ ही वर्षों बाद यूरोप के क्रांतिकारी आंदोलन फिर भड़कने लगे। 1848 ई० में यूरोप के लगभग सभी देशों में क्रांति के शोले सुलग उठे जिन्होने पवित्र संधि वाले देशों को झुलसा कर रख दिया। 1848 ई० के शुरू में इटली में एक विद्रोह हो चुका था। फरवरी में फ्रांस में क्रांति की निर्झरिणी बह चली और लुई फिलिप, जिसे 1830 ई० के विद्रोह के बाद राजा बनाया गया था, भाग गया। फ्रांस फिर गणतंत्रवादी बन गया, लेकिन कुछ ही समय के लिए, क्योंकि नेपोलियन के भतीजे लुई नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने को 1852 ई० में फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिया और वहां की सत्ता हड़प ली। अंत में जब इस लुई बोनापार्ट का साम्राज्य ढहा तभी 1871 ई० में फ्रांस गणतंत्र बन सका।

फ्रांस की क्रांति के तुरंत बाद जर्मनी के अनेक शहरों में विद्रोह हुए। जर्मनी के कई राज्यों के शासक जिनमें पवित्र संधि का सदस्य प्रशा भी शामिल था, अनेक सुधार करने को तैयार हो गए। उसी समय पवित्र संधि के दूसरे सदस्य आस्ट्रियाई साम्राज्य की राजधानी वियना और कई नगरों में विद्रोह हुए। फलस्वरूप वहां के अधिपति (चांसलर)

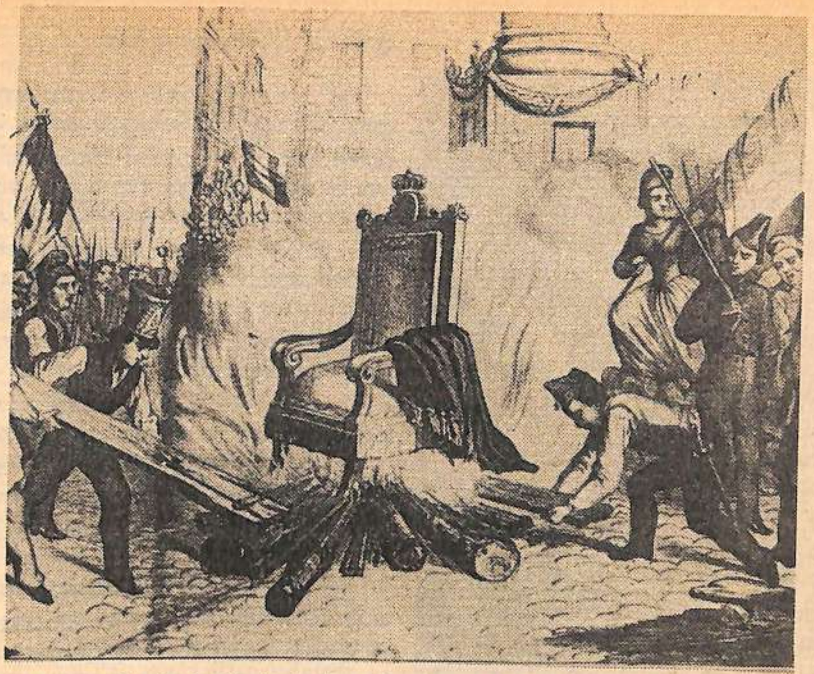

सन् 1848 में सारे यूरोप में क्रांतियाँ हुईं। इस चित्र में फ्रांस के राजा लुई फिलिप के सिहाँसन को आग में जलाते हुए क्रांतिकारी दिखाए गए हैं।

मेटरनिक को, जो वहाँ का सबसे घृणास्पद व्यक्ति था, भागना पड़ा। उन दिनों का आस्ट्रियाई साम्राज्य यूरोप के अनेक राष्ट्रों के लिए एक बड़े जेलखाने के समान था। उसका आस्ट्रिया, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, पोलैंड, यूगोस्लाविया और बहुत से अन्य प्रदेशों पर शासन चलता था। आस्ट्रिया तथा साम्राज्य के दूसरे सभी अधीन राष्ट्रों में विद्रोह भड़क चुके थे। यद्यपि ये विद्रोह सफल नहीं हुए, पर साम्राज्य की जड़ें बुरी तरह से हिल गईं।

सन् 1848 ई० की क्रांतियां यूरोप की जमी हुई अत्याचारी शासन प्रणालियों को उखाड़ फेंकने में असफल रहीं हालांकि उन्होंने उनको काफी कमजोर कर दिया। 1848 ई० की क्रांतियों का सबसे सशक्त पहलू यह है कि यूरोप में एक नई राजनीतिक शक्ति का आविर्भाव हुआ। अध्याय 7 में तुम पढ़ चुके हो कि औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप में एक नए सामाजिक वर्ग—श्रमिक वर्ग—का उदय

बर्लिन में विद्रोह के बाद 18 मार्च सन् 1848 को लोगों ने शहर पर कब्जा कर लिया।

मई सन् 1848 के वियना में विद्रोह का एक दृश्य

हुआ। 1848 ई० की क्रांतियों की एक बड़ी ताकत श्रमिक ही थे। उनका उद्देश्य केवल राजतंत्रों को उखाड़ फेंकना ही नहीं था बल्कि औद्योगिक क्रांति के साथ जन्मी आर्थिक प्रणाली—पूंजीवाद—को समूल नष्ट करना भी था। क्रांति में हिस्सा लेने वाले दूसरे लोग—पूंजीपति, व्यापारी और मध्यम वर्ग के लोग—संवैधानिक सुधार ही चाहते थे। वे श्रमिकों की सामाजिक क्रांति की मांग को घृणा की दृष्टि से देखते थे। जब क्रांतिकारी आंदोलन चोटी पर थे तो उन्होने शासकों के साथ समझौता करने की सोची।

इंग्लैंड में लोकतंत्र का विकास

अध्याय 6 में तुम पढ़ चुके हो कि निरंकुश राजतंत्र को उखाड़ फेंकने वाली प्रथम सफल क्रांति इंग्लैंड में सत्रहवीं शताब्दी के दौरान हुई। इसके परिणामस्वरूप इंग्लैंड में संसद को सर्वोच्च स्थान मिल गया। फिर भी, उस समय संसद लोकतांत्रिक संस्था नहीं थी। मतदान का अधिकार थोड़े से लोगों को ही प्राप्त था। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान संसद को लोकतांत्रिक संस्था बनाने की मांग ने जोर पकड़ा। हर नागरिक को मतदान का अधिकार दिलाने के लिए आंदोलन चलाए गए। इन आंदोलनों का नेतृत्व करने वालों में वे क्रांतिकारी नेता थे जो मजदूरों और नगर के निर्धन व्यक्तियों के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे, और वे लोग थे जो उद्योगपतियों के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। सन् 1832 ई० तक संसद के लिए प्रतिनिधि जनसंख्या के नहीं बल्कि चुनाव क्षेत्रों (काउन्टियों और बरो) के आधार पर चुने जाते थे। इन चुनाव क्षेत्रों में से कई में सिवाय दो-चार मकानों के और कुछ नहीं था। बड़ी जनसंख्या वाले नये कस्बों और शहरों का संसद में कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। सन् 1832 ई० के अधिनियम के द्वारा पुराने जनसंख्या विहीन क्षेत्रों या 'सड़े हुए बरो' (उस समय उन क्षेत्रों को इसी नाम से पुकारा जाता था) को चुनाव-क्षेत्र के रूप में समाप्त कर दिया गया और उनके स्थान पर नये कस्बों और शहरों को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दे दिया गया। परन्तु उस समय भी मतदान का अधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों को था जिनके पास कस्बे या गांव में अपना निजी मकान हो या जिन्होंने एक निश्चित मूल्य या उससे ऊपर का मकान किराये पर ले रखा हो। इस प्रकार केवल दस प्रतिशत जनता को ही मतदान का अधिकार था। तुम चार्टिस्ट आंदोलन के बारे में पढ़ चुके हो। यह आंदोलन मजदूरों को मतदान का अधिकार दिलवाने के लिए आरम्भ किया गया था। इस आंदोलन का 19वीं शताब्दी के छठे दशक में ह्रास हो गया। परन्तु इसका प्रभाव 1867-1882, 1918 और 1929 के अधिनियमों पर स्पष्ट है जिनके अन्तर्गत सभी वयस्क नागरिकों को मतदान का अधिकार दिया गया। इस प्रकार संसद के सर्वोच्च बन जाने के बाद उसे सच्चे अर्थ में ब्रिटिश जनता की प्रतिनिधि संस्था बनने में दो सौ साल से भी अधिक लगे।

उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के इतिहास की एक प्रमुख

विशेषता थी राष्ट्रीय एकीकरण और आज़ादी के लिए किए जाने वाले संघर्ष। यूनान और बेल्जियम को मिली आज़ादी की चर्चा पहले की जा चुकी है। जर्मनी और इटली दो अन्य प्रमुख राष्ट्र थे जो उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्यों के रूप में उभरे।

जर्मनी का एकीकरण

अठारहवीं शताब्दी में जर्मनी अनेक राज्यों में बंटा हुआ था जिनमें से कुछ तो इतने छोटे थे कि शहरों से बड़े न थे। नेपोलियन की लड़ाइयों के जमाने में इनमें से बहुत से समाप्त हो गए। युद्ध के बाद भी जर्मनी में अड़तीस स्वतंत्र राज्य बचे रह गए थे। इनमें से प्रशा, वर्तेम्बर्ग, बावेरिया, बेडेत और सैक्सोनी काफी बड़े थे। आकार और सैनिक शक्ति की दृष्टि से प्रशा सबसे शक्तिशाली था। यह अधिक प्रतिक्रियावादी भी था। प्रशा की सामाजिक व्यवस्था में सबसे प्रभावकारी वर्ग बड़े जमींदारों का था जिन्हें 'जुंकर' कहते थे। प्रशा भी पवित्र संधि के सदस्यों में से था।

अनेक राज्यों में बंटे होने के कारण जर्मनी के आर्थिक विकास को बड़ा नुकसान उठाना पड़ा था। इन राज्यों की सामाजिक व राजनैतिक प्रणालियां भी बड़ी पिछड़ी हुई थीं। राष्ट्रीय चेतना की जागृति के साथ, विशेष कर फ्रांस की क्रांति के बाद, इन राज्यों के लोगों ने जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण, लोकतंत्रीय सरकार की स्थापना और सामाजिक व आर्थिक सुधारों की मांग करना शुरू कर दिया। 1815 ई० में जर्मनी के राज्यों को आस्ट्रिया के साथ एक जर्मनीय संघ में संगठित कर दिया गया। फिर भी हर राज्य ने अपनी स्वाधीनता और दमनकारी राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था को बचा रखने की कोशिश की।

1848 ई० में जर्मनी के प्रत्येक राज्य में विद्रोह हुए और शासकों को लोकतंत्रीय संविधान बनाने पर मजबूर किया गया। जर्मनी को एक करने की दृष्टि से और संयुक्त जर्मनी के लिए संविधान बनाने के उद्देश्य से फ्रैंकफर्ट में एक विधान सभा बैठी। विद्रोहों की प्रारंभिक सफलता ने जर्मनी के लोकतांत्रिकों और राष्ट्रवादियों के मन में यह भर दिया था कि विजय प्राप्त की जा चुकी है। जब वे संविधान की धाराएं बनाने में लगे थे, तब शासक आंदोलन को कुचलने की तैयारियों में लगे हुए थे। फ्रैंकफर्ट की सभा ने जर्मनी के एकीकरण का प्रस्ताव रखा। इसके अंतर्गत एक संवैधानिक राजतंत्र का निर्माण होना था जो प्रशा के राजा के अधीन काम करता और यह राजा जर्मनी का सम्राट कहलाता। लेकिन प्रशा के राजा ने प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उसने जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों से राजमुकुट ग्रहण करने से इंकार कर दिया। इसके साथ ही दमनचक्र शुरू हो गया और लोगों को क्रांति के प्रारंभ में ही जो अधिकार मिल चुके थे, वे भी छिन गए। हज़ारों जर्मन क्रांतिकारियें को देश छोड़ कर भागना और परदेश में अज्ञातवास करना पड़ा।

जर्मनी के एकीकरण के लिए हुई 1848 ई० की क्रांति की असफलता से एकीकरण के संघर्ष का पहला दौर समाप्त हो गया। अब जर्मनी का एकीकरण एक लोकतंत्रीय देश के रूप में क्रांतिकारियों के प्रयत्न से नहीं होना था बल्कि एक सैन्यशक्ति प्रधान साम्राज्य के रूप में शासकों द्वारा होना था। इस नीति का नेता बिस्मार्क था जो प्रशा के एक अभिजात घराने का था। वह संयुक्त जर्मन राज्य में जमींदार अभिजातों और फौज की प्रधानता चाहता था। वह जर्मनी का एकीकरण भी प्रशा के राजघराने के अधीन ही चाहता था। उसने एकीकरण की अपनी नीति को 'रक्त और लोहे' की नीति कहा।

'रक्त और लोहे' की नीति का मतलब था युद्ध। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने आस्ट्रिया को जर्मनीय संघ से निकाल बाहर किया। फिर आस्ट्रिया का पक्ष लेकर उसने डेनमार्क पर हमला बोल दिया। यह युद्ध श्लेषविग और होल्स्टीन के अधिकार को लेकर हुआ। इस युद्ध में डेनमार्क पराजित हुआ। इसके बाद उसने इटली का पक्ष लेकर आस्ट्रिया पर हमला कर दिया और उसे हरा कर जर्मनीय संघ को ही समाप्त कर दिया। इस प्रकार आस्ट्रिया को जर्मनी के दूसरे राज्यों से बिल्कुल अलग कर दिया गया। पुराने संघ के स्थान पर उसने 1866 में जर्मनी के 22 राज्यों को संयुक्त करके उत्तरी जर्मन संघ बनाया। इस संविधान के अनुसार प्रशा का राजा पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए संघ का प्रधान बन गया।

जर्मनी का एकीकरण प्रशा और फ्रांस के बीच हुए एक युद्ध के बाद पूरा हो गया। 1870 ई० में लुई बोनापार्ट ने, जिसकी शक्ति क्षीण होने लगी थी, प्रशा पर आक्रमण कर दिया। उसे यह उम्मीद थी कि फौज की विजय के बाद वह अपना साम्राज्य बचा ले जाएगा। इस लड़ाई के लिए बहुत कुछ फूंक बिस्मार्क ने भरी थी। यह लड़ाई बोनापार्ट को ले डूबी। फ्रांस की सेना पराजित हुई और सम्राट बंदी बना लिया गया। बिस्मार्क ने लड़ाई से फायदा उठा कर जर्मनी

के बच रहे राज्यों को संयुक्त जर्मनी में शामिल कर लिया। पराजय के बाद फ्रांस एक गणतंत्र हो गया और जर्मनी का एकीकरण भी पूरा हो गया। जर्मन सम्राट का पद धारण करने के लिए प्रशा के राजा विलियम प्रथम ने जो औपचारिक उत्सव किया वह जर्मनी की धरती पर नहीं हुआ बल्कि वह फ्रांस के वर्साय स्थित फ्रांसीसी राजमहल में हुआ।

एकीकरण के बाद जर्मनी यूरोप की एक बहुत मजबूत शक्ति के रूप में उठा। वहां थोड़े ही समय में अत्यधिक औद्योगीकरण हुआ जिसके बाद वह भी उपनिवेशों की छीनाझपटी में शामिल हो गया। हां, जिस सैन्यवाद ने उसे इतना शक्तिशाली बनाया, उसी ने आगे आने वाले वर्षों में जर्मनी के लोगों पर तबाही भी ढा दी।

इटली का एकीकरण

जर्मनी की ही भांति इटली भी छोटे-छोटे अनेक राज्यों में बंटा हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी के इटली के प्रमुख राज्य सार्डीनिया, लोम्बार्डी, वेनेशिया, सिसली के दो राज्य (अर्थात् सिसली और नेपल्स), पोप के अधीन राज्य, टस्कनी, पर्मा और मॉडेना थे। इनमें सबसे शक्तिशाली सार्डीनिया का राज्य था। वेनेशिया और लोम्बार्डी आस्ट्रियाई कब्जे में थे। इस प्रकार इटली वालों के सम्मुख आस्ट्रियाई शासन को हटाने और स्वतंत्र राज्यों के शासकों को संगठित करने के दो मुख्य कार्य थे। इटली की स्वाधीनता और एकीकरण का संघर्ष इटली के उन दो प्रसिद्ध क्रांतिकारियों ने शुरू किया जिनका उल्लेख इस अध्याय के प्रारंभ में हो चुका है। शायद तुम समझ गए होंगे ये थे-गिसीपी मेज़िनी और गिसीपी गैरीबाल्डी। उनके द्वारा चलाए गए आंदोलन को 'यंग इटैली आंदोलन' कहते हैं। इसका उद्देश्य इटली को स्वाधीनता दिलाना, उसका एकीकरण करना और वहां गणतंत्र की स्थापना करना था। यूरोप के अन्य भागों की तरह 1848 ई० में इटली में भी क्रांतिकारी विद्रोह शुरु हो गए थे और शासकों को जनहित में लोकतांत्रिक सुधार करने के लिए मजबूर किया जा चुका था। फिर भी एकीकरण और आजादी का लक्ष्य अभी दूर ही था।

1848 ई० की क्रांति के बाद सार्डीनिया के राजा ने अपने राज्य के राजनीतिक तंत्र में अनेक सुधार कर लिये थे। 1848 ई० के बाद उसके प्रधान मंत्री काउंट कैवूर ने सार्डीनिया के नेतृत्व में इटली का एकीकरण करने के काम में पहल की। कैवूर की नीति कुछ मायनों में जर्मनी के बिस्मार्क द्वारा अपनाई गई नीति के समान थी। ब्रिटेन और फ्रांस का समर्थन पाने की उम्मीद से उसने सन् 1853-56 में रूस के खिलाफ क्रीमिया का युद्ध छेड़ा हालांकि सार्डीनिया का रूस से कोई झगड़ा न था। इस युद्ध से कोई बात न बनी। 1859 ई० में कैवूर ने लुई बोनापार्ट के साथ एक संधि की और उसके अनुसार उसने आस्ट्रिया के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। हालांकि फ्रांस शीघ्र ही लड़ाई से हट गया, फिर भी सार्डीनिया ने लोम्बार्डी से आस्ट्रियाई शासन को हटा दिया और उस पर अपना कब्जा जमा लिया। टस्कनी, मॉडेना, पर्मा और उत्तर के पोप के राज्य भी सार्डीनिया से आ मिले। वेनेशिया अब भी आस्ट्रिया के कब्जे में था। सार्डीनिया के साथ संयुक्त होने के लिए अब भी जो राज्य बच गए थे, वे थे सिसिली के दोनों राज्य और रोम जिस पर पोप का शासन था।

गिसिपी मेजिनी

इस बीच सिसिली के दोनों राज्यों में एक विद्रोह शुरू हो गया था। गैरीबाल्डी अपने क्रांतिकारी साथियों के साथ

सिसिली द्वीप गया और तीन महीनों के अंदर उसने राजा के शासन से उसको मुक्त करा दिया। फिर वह नेपल्स गया जहां पहले से एक विद्रोह चल रहा था जिसको उसने अपना समर्थन दिया। नवंबर 1860 ई० तक संपूर्ण सिसिली के दोनों राज्य मुक्त हो चुके थे। इटली के क्रांतिकारी संभवतः इतने मजबूत नहीं थे कि इटली के एक संयुक्त गणतंत्र की स्थापना के लिए सिसिली की क्रांति को और आगे बढ़ाते। उन्होंने पूर्ववर्ती राज्य को सार्डीनिया के राजा विक्टर एमैनुएल द्वितीय को सौंप दिया जिसने 1861 ई० में इटली के राजा की उपाधि से अपने को विभूषित किया। क्रांतिकारी गैरीबाल्डी जिसने इटली की स्वाधीनता और एकीकरण के लिए इतना महत्वपूर्ण कार्य किया था, अब विस्मृति का जीवन जीने के लिए पीछे हट गया।

रोम अब भी इटली के राज्य से बाहर था। उसका शासन लुई बोनापार्ट द्वारा प्रदान किए गए फ्रांसीसी सैनिकों की मदद से पोप किया करता था। जब 1870 ई० में फ्रांस और प्रशा के बीच लड़ाई छिड़ी, बोनापार्ट को अपनी सेनाएं लेकर रोम से हटना पड़ा। 1870 में रोम के नगर पर इटली के सैनिकों ने कब्जा कर लिया और जुलाई 1871 ई० में रोम इटली के संयुक्त राज्य की राजधानी बनी। मेज़िनी और गैरीबाल्डी जैसे लोकतांत्रिक और क्रांतिकारी नेताओं द्वारा इटली की स्वाधीनता और एकीकरण के लिए किए गए संघर्ष के महत्त्वपूर्ण योगदान के बावजूद, जर्मनी की भांति इटली भी एक राजतंत्र बन गया।

जर्मनी और इटली के एकीकरण ने, इस तथ्य के बावजूद कि वहां लोकतंत्र पूरी तरह से विजित नहीं रह सका था, दोनों देशों के इतिहास को काफी आगे बढ़ाया है।

जिन क्रांतियों और आंदोलनों की ऊपर चर्चा की गई है, उन्होंने और औद्योगिक क्रांति ने मानव जाति के इतिहास को बड़ी गहराई से प्रभावित किया है। जिन कारकों ने इन क्रांतियों और आंदोलनों को उत्पन्न किया, वे ही कारक दूसरे देशों में भी काम कर रहे थे। इन क्रांतियों की एक स्थान में सफलता ने दूसरे स्थानों में क्रांति की ज्वाला को ईंधन प्रदान किया और फलस्वरूप शेष विश्व में परिवर्तन को प्रोत्साहन मिला। इनका प्रभाव आज भी महसूस किया जा सकता है। वे अब भी सब स्थानों की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जिंदगी को बदल रहे हैं।

इस अध्याय में वर्णित आंदोलनों के फलस्वरूप क्रमशः होने वाले परिवर्तनों में एक परिवर्तन राजनीतिक लोकतंत्र का विकास है। अर्थात् पहले से कहीं अधिक व्यक्तियों का देश के राजनीतिक जीवन में भाग लेना। ऐसा उन देशों में तो हुआ ही जहां सरकार का स्वरूप गणतंत्रीय हो गया था, साथ ही वहां भी हुआ जहां पुराने राजतंत्र कायम रहे, जैसे कि इंग्लैंड, जर्मनी और इटली में। धीरे-धीरे करके एक-तंत्रीय और विशिष्टता प्राप्त अभिजाततंत्रीय पद्धतियों की समाप्ति होने लगी। इसके साथ ही राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए भी आंदोलन हुए। इन आंदोलनों को इटली, जर्मनी और यूरोप के अन्य देशों तथा अमरीका में विजय हासिल हुई। कुछ ही दशकों में ऐसे आंदोलनों को शेष यूरोप में और अभी हाल के काल में विश्व के अधिकांश में भी सफलता मिली है।

यहां यह याद रखना जरूरी है कि उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में जो नई राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था उभर रही थी वह साथ-साथ साम्राज्यवाद को भी जन्म दे रही थी। यूरोप में लोकतंत्र और राष्ट्रीयता की विजय का जो काल रहा है वही काल यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा एशिया और अफ्रीका पर कब्जा करने का भी रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी में एशिया और अफ्रीका में साम्राज्यवाद के खिलाफ विद्रोह होने शुरू हो गए। दो बड़े विद्रोह हुए—एक तो भारत का सन् 1857 का विद्रोह और दूसरा चीन का ताइपिङ का विद्रोह। आगे चलकर एशिया और अफ्रीका के सभी देशों में आधुनिक अर्थों में राष्ट्रीय आंदोलन संगठित किए जाने लगे। उनके बारे में तुम आगामी अध्याय में पढ़ोगे

समाजवादी आंदोलन

अध्याय सात में तुमने एक नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था (जिसे पूँजीवाद कहा जाता है) के बारे में पढ़ा है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों, जैसे कारखानों और कारखानों में तैयार की गई वस्तुओं पर थोड़े से लोगों का ही स्वामित्व और नियंत्रण था। बहुसंख्यक जनता कारखानों में काम करती थी। उसके कोई अधिकार नहीं थे। उसको बहुत ही दयनीय अवस्था में काम करना पड़ता था तथा वह अत्यन्त दरिद्रता का जीवन जी रही थी। उसे बहुधा बेरोजगार रहना पड़ता था। अपने सामान्य अधिकारों की रक्षा के लिए मजदूरों ने अपने को धीरे-धीरे श्रमिक संघों (ट्रेड यूनियनों) के रूप में संगठित करना आरंभ कर दिया, यद्यपि काफी समय तक मजदूरों को श्रमिकसंघ

बनाने की कानूनी तौर पर मनाही थी। अन्ततः सरकारों को भी मजबूर होकर पूँजीवाद के सबसे बुरे पहलुओं के विरुद्ध कानून बनाने पड़े। उदाहरण के लिए, अनेक देशों में मजदूरों को असुरक्षित स्थितियों में काम न करने देने के लिए कानून बने। काम के घंटों को नियमित करने की दिशा में भी कुछ प्रगति हुई।

कुछ मजदूर सोचने लगे थे कि मशीनें ही उनकी दुरावस्था का कारण हैं। इंग्लैंड में लुड्डाइटों (Luddites) के नेतृत्व में मशीनों को तोड़ने का आंदोलन चला। लुड्डाइट नेड लुड्ड के अनुयायी थे। परन्तु उन्होंने जल्द ही महसूस किया कि मशीनों को नष्ट करने से उनकी विपन्नता खत्म नहीं होगी। इंग्लैंड में एक नया राजनीतिक आदोलन आरंभ हुआ जिसका लक्ष्य मज़दूरों को राजनीतिक अधिकार दिलाना था। यह चार्टिस्ट आंदोलन था जिसके संबंध में तुम पढ़ चुके हो।

आरंभिक समाजवादी

पूँजीवाद को सबसे बड़ी चुनौती समाजवाद के विचारों और उन पर आधारित आंदोलनों से मिली। यह विचार पनपा कि पूँजीवाद स्वयं ही एक बुरी चीज़ है और उसको हटाकर उसकी जगह एक नए प्रकार की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था लाने की आवश्यकता है जिसमें उत्पादन के साधनों पर चन्द व्यक्तियों के बदले सारे समाज का स्वामित्व हो।

भूतकाल में अनेक दार्शनिकों और सुधारकों ने समाज में व्याप्त असमानताओं पर क्षोभ प्रकट किया और ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की वकालत की जिसमें समानता हो। परन्तु ये विचार स्वप्नमात्र ही रहे। फ्रांस की क्रांति (1789) ने समानता लाने का आश्वासन दिया और इन विचारों को बढ़ावा दिया। फ्रांस की क्रांति ने फ्रांसीसी सम्राट के निरंकुश शासन को समाप्त कर दिया परन्तु वह आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समानता का युग नहीं ला सकी। फ्रांसीसी क्रांति के लक्ष्यों और फ्रांस की परवर्ती स्थितियों के बीच भारी खाई ने लोगों में भयंकर असंतोष पैदा कर दिया। परिणामस्वरूप समाजवादी विचारों पर आधारित समाज का निर्माण करने के लिए फ्रांस की तत्कालीन सरकार का तख्ता उलटने की कोशिश की गयी। यह प्रयास जो बाब्यूफ़ के षडयंत्र के नाम से जाना जाता है, समाजवाद के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

फ्रांस्वा-नोईल बाब्यूफ

षडयंत्र, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, बाब्यूफ़ का काम था। उसने एक गुप्त संगठन की स्थापना की जिसका नाम 'समान जनों का समाज" (Society of the Equals था। बाब्यूफ ने एक घोषणापत्र में कहा, "प्रकृति ने प्रत्येक को सभी वस्तुओं का भोग करने का अधिकार दिया... एक सच्चे समाज में धनी या गरीब के लिए कोई स्थान नहीं है।" उसने कहा कि "एक और क्रांति करने की आवश्यकता है जो धनी और गरीब, मालिक और नौकर के बीच व्याप्त भयंकर विषमता को खत्म कर दे। समान जनों का गणतंत्र स्थापित करने का समय आ गया है जिसके दरवाजे सम्पूर्ण मानव जाति के स्वागत के लिए खुले रहेंगे।" इस संगठन ने विद्रोह की योजना बनायी परन्तु सरकार को उसका पता लग गया। मई 1796 म बाब्यूफ़ सहित अनेक नेता गिरफ्तार कर लिए गए। बाब्यूफ़ को 1797 में मृत्युदंड दे दिया गया। सरकार को उलटने की बाब्यूफ़ की कोशिश असफल हो गयी मगर समाजवादी आंदोलन के विकास पर उसके विचारों ने महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला।

समाजवाद के इतिहास के आरंभिक दौर में समाजवादियों का एक और वर्ग था जिसमें सेंट-साइमन (1760-1825), चार्ल्स फूरियर (1772-1837) और रॉबर्ट ओवेन (1771-1958) का स्थान महत्वपूर्ण है। वे कल्पनावादी समाजवादी (Utopian Socialists) के नाम से जाने जाते हैं। उन्होंने संपत्ति को समाज के लिए उसकी उपयोगिता की दृष्टि से देखा। उन्होंने पूंजीवाद की बुराइयों को पहचाना और उसकी जगह एक नई और बेहतर समाज-व्यवस्था स्थापित करने का प्रस्ताव रखा। सेंट-साइमन ने नारा दिया: 'हरेक से उसकी क्षमता के अनुसार काम और हरेक को उसके काम के अनुसार भुगतान'। उन्होंने एक ऐसे समाज की कल्पना की जो हर प्रकार के शोषण से मुक्त हो और जिसमें सब लोग यथाशक्ति योगदान करें तथा अपनी मेहनत का फल पाएं। परन्तु इस तरह के समाज की स्थापना के लिए उन्होंने जिन तरीकों की हिमायत की वे अव्यावहारिक तथा प्रभावहीन थे। इसीलिए वे कल्पनावादी समाजवादी कहलाए।

अनेक अन्य दार्शनिकों और क्रांतिकारियों ने समाजवाद के विचारों के प्रसार में सहायता दी। उनमें एक प्रमुख व्यक्ति लुई-ऑगस्ट ब्लांकी (1805-1881) था। उसने 1830 से 1871 तक पेरिस में हुए हर विद्रोह में अग्रणी भूमिका अदा की। उसका विश्वास था कि क्रांतिकारी षडयंत्र के ज़रिए सत्ता पर अधिकार कर समाजवाद लाया जा सकता है। जब वह मरा तब पेरिस में दो लाख लोग उसकी शवयात्रा में शामिल हुए।

समाजवादी विचारों के प्रसार और मजदूरों को संगठित करने के लिए अनेक दल बने और अनेक संगठन बनाए गए। ऐसा ही एक संगठन था लीग ऑफ द जस्ट (League of the Just)। इसके सदस्य यूरोप के अनेक देशों में थे। इसका नारा था "सभी लोग भाई-भाई हैं"। अन्तर्राष्ट्रीयता इसकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। 1847 में इसका नाम बदल कर 'कम्युनिस्ट लीग' कर दिया गया। इसने घोषणा की कि इसके लक्ष्य हैं "पूंजीपति वर्ग का सत्तानाश मजदूर वर्ग का शासन, वर्ग-विभेद पर आधारित मध्यम वर्ग के पुराने समाज का नाश, और एक ऐसे नए समाज की स्थापना जिसमें वर्ग तथा निजी संपत्ति न हो"। इसकी पत्रिका में यह नारा लिखा होता था: "सभी देशों के मजदूर एक हों।" इसने कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स को एक घोषणापत्र तैयार करने का आदेश दिया।

मार्क्सवादी समाजवाद

कम्युनिस्ट घोषणापत्र (Communist Manifesto) सबसे पहले जर्मन भाषा में फरवरी 1848 में प्रकाशित हुआ। समाजवादी आंदोलन के इतिहास में इस दस्तावेज का जितना असर हुआ वह बेजोड़ है। **कम्युनिस्ट घोषणापत्र** कार्ल मार्क्स (1818-1883) और उनके आजीवन मित्र एंगेल्स (1820-1895) की कृति है। मार्क्स और एंगेल्स, दोनों का जन्म जर्मनी में हुआ था परन्तु उन्होंने अपना अधिकांश जीवन जर्मनी के बाहर, विशेषकर इंग्लैंड में बिताया। समाजवादी आंदोलन में अपने कार्य, तथा अपनी अनगिनत रचनाओं द्वारा उन्होंने समाजवादी विचारधारा और आंदोलन को एक नयी दिशा दी। उनका दर्शन मार्क्सवाद के नाम से विख्यात है। उसने ज्ञान के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। समाजवाद संबंधी उनके दृष्टिकोण को **वैज्ञानिक समाजवाद** कहते हैं।

फरवरी 1848 में लंदन में प्रकाशित जर्मन भाषा में "साम्यवादी घोषणा पत्र" के प्रथम संस्करण का आवरण पृष्ठ

कम्युनिस्ट घोषणापत्र ने बतलाया कि सारे संसार के मजदूरों का लक्ष्य पूँजीवाद को उखाड़ फेंकना और समाजवाद की स्थापना करना है। उसके अनुसार "वर्गों और वर्ग-विभेदों से युक्त पुराने पूँजीवादी समाज के स्थान पर एक नया संघ स्थापित होना है जिसमें हर व्यक्ति का स्वतंत्र विकास ही सबके स्वतंत्र विकास की शर्त होगा।" उसने बतलाया कि समाजवाद न केवल वांछनीय बल्कि अवश्यम्भावी भी है। उसने कहा कि पूँजीवाद मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता और इतिहास की अन्य सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं की तरह उसकी जगह मानवीय आवश्यकताओं की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त व्यवस्था स्थापित की जाएगी। मार्क्स ने पूँजीवाद की कार्यविधि का विश्लेषण अपनी प्रसिद्ध कृति पूंजी (Das Kapital) में किया तथा उन विशिष्टताओं की ओर संकेत किया जो उसे विनाश की दिशा में ले जाएंगी। उनके अनुसार मजदूर जितना 'मूल्य' उत्पन्न करते हैं उससे कम मज़दूरी के रूप में पाते हैं। दोनों के बीच का अंतर पूँजीपति मुनाफ़े के रूप में ले लेते हैं। मार्क्स के अनुसार यही पूँजीवादी समाज में झगड़े का आधार है। मुनाफा मज़दूरों की मजदूरी घटाकर ही बढ़ाया जा सकता है और इसलिए मज़दूरों और पूँजीपतियों के हित परस्पर-विरोधी हैं। उन्होंने बतलाया कि पूँजीवाद के अन्तर्गत आर्थिक संकट अवश्यम्भावी है क्योंकि मज़दूरों की क्रयशक्ति और कुल उत्पादन में साम्य नहीं होता। इन संकटों को तभी हल किया जा सकता है जब उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व समाप्त किया जाए तथा उत्पादन-व्यवस्था से मुनाफे की भावना को निकाल दिया जाए। ऐसा करने पर ही उत्पादन चन्द लोगों के मुनाफे के बदले सामाजिक हित की दृष्टि से होगा। शोषक वर्ग खत्म हो जाएंगे और एक वर्गहीन समाज का उदय होगा जिसमें व्यक्ति के हित और समाज के हित में कोई अन्तर नहीं होगा। मार्क्स और एंगेल्स का विश्वास था कि यह काम मजदूर वर्ग पूरा करेगा जो पूँजीवादी समाज में सबसे क्रांतिकारी वर्ग है। उनका विचार था कि मजदूर वर्ग की मुक्ति ही सम्पूर्ण मानव जाति को सामाजिक अन्याय से पूरी तरह मुक्त कर देगी।

1850 में लंदन की एक बैठक को संबोधित करते हुए कार्ल मार्क्स

जिस समय **कम्युनिस्ट घोषणापत्र** प्रकाशित हुआ उसके आसपास यूरोप के लगभग हर देश में क्रांतियां शुरू हो गईं। 1848 की इन क्रांतियों के बारे में तुम पढ़ चुके हो। इन क्रांतियों का लक्ष्य निरंकुश सरकारों का तख्ता उलटना, जनतंत्र की स्थापना और इटली तथा जर्मनी जैसे देशों में राष्ट्रीय एकीकरण भी था। इन क्रांतियों में एक प्रमुख शक्ति के रूप में मज़दूर थे जो समाजवाद के विचारों से प्रेरित थे। कम्युनिस्ट लीग ने अनेक देशों में इन क्रांतियों में भाग लिया। परन्तु इन सब क्रांतियों को कुचल दिया गया।

लगता है कि 1848 की क्रांतियों की विफलता के बाद समाजवादी आंदोलन थोड़ा ढीला पड़ गया। परन्तु वह जल्द ही शक्तिशाली बन कर सामने आया। विभिन्न समाजवादी समूहों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता थी उनका अन्तर्राष्ट्रीयवादी चरित्र। तुम कम्युनिस्ट लीग के बारे में पढ़ चुके हो। इंग्लैंड में सोसायटी ऑफ फ्रैटर्नल डेमोक्रैट्स (Society of Fraternal Democrats) नामक एक संस्था की स्थापना 1846 में हुई। यूरोप के अन्य समान संगठनों और ब्रिटेन में चार्टिस्टों के साथ उसके घनिष्ट संबंध थे। इन सब संगठनों ने इस विचार पर जोर दिया कि मज़दूर वर्ग का उद्देश्य सब देशों में एक ही है। उदाहरण के लिए सोसायटी ऑफ फ्रैटर्नल डेमोक्रैट्स के एक नेता ने 1848 में कहा: "मैं हर देश के उत्पीड़ित वर्गों से अपील करता हूँ कि वे अपने समान उद्देश्य के लिए एकजुट हो जाएं।" उसके अनुसार जनता मजदूर और किसान है

और जनता का हित "मजदूरों का, गुलाम बनाए गए और शोषित मज़दूरों का हित है... सभी देशों में ऐसे लोग हैं जो अनाज पैदा करते हैं पर आलू खाते हैं, कपड़ा बनाते हैं पर चिथड़े पहनते हैं, मकान बनाते हैं पर मनहूस झोंपड़ियों में रहते हैं... क्या सब राष्ट्रों के मजदूरों की शिकायत के समान आधार तथा दुर्गति के समान कारण नहीं हैं? इसलिए क्या उनका समान उचित उद्देश्य नहीं है?" अन्तर्राष्ट्रीय एकजुटता के ये विचार ही आने वाले वर्षों में समाजवादी आंदोलन की मूलभूत विशेषताएं बन गए।

प्रथम इंटरनेशनल

समाजवादी आंदोलन के इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना 1864 में **इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स असोसियेशन** (International Working Men's Association) या प्रथम इंटरनेशनल (First International) की स्थापना थी। कहा गया है कि इसके साथ ही "समाजवाद इतिहास के रंगमंच पर एक विश्व आंदोलन के रूप में आया"। इसकी स्थापना के लिए लंदन में बैठक हुई और उसमें ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जर्मनी, पोलैंड और स्विटजरलैंड के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मार्क्स ने 'मजदूर वर्गों के नाम एक भाषण' तैयार किया जो 'इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स असोसियेशन का उद्घाटन भाषण' के नाम से प्रसिद्ध है। उनके द्वारा बनाए गए सामान्य नियमों (General Rules) तथा इस "भाषण" ने इंटरनेशनल के सिद्धांतों और लक्ष्यों की रूपरेखा प्रस्तुत की। यह घोषणा की गई कि मजदूर वर्गों की मुक्ति स्वयं उन्हें ही हासिल करनी होगी। इंटरनेशनल का केन्द्रीय उद्देश्य पूरी तरह 'संपूर्ण वर्ग शासन का उन्मूलन' घोषित किया गया। मजदूर वर्ग के संघर्ष के विश्वव्यापी चरित्र पर जोर दिया गया। **कम्युनिस्ट घोषणापत्र** की तरह ही भाषण "सब देशों के मजदूर एक हों।" के नारे के साथ समाप्त हुआ।

इंटरनेशनल को उसकी स्थापना के समय से ही तत्कालीन सरकारों ने एक खतरा माना और उसे खत्म करने के लिए कोशिशें की गईं। अनेक देशों में उसे दबाया गया और अवैध घोषित कर दिया गया।

अपने अल्पकालीन जीवन के दौरान इंटरनेशनल ने यूरोप और उत्तरी अमरीका के मजदूर आंदोलनों पर गहरा प्रभाव डाला। जब भी किसी देश में मजदूर संघर्षरत् होते, तब उनके समर्थन में अन्य देशों के मजदूरों से इंटरनेशनल सहायता की व्यवस्था करवाता। इस प्रकार उसने अंतर्राष्ट्रीय एकजुटता के संबंधों को मजबूत बनाया। उदाहरण के लिए 1867 में पेरिस में कांसे का काम करने वाले 5000 उन मजदूरों को नौकरियों से निकाल देने की धमकी दी गयी जिन्होंने एक मजदूर संघ बनाया था। उस समय इंटरनेशनल ने अन्य देशों के मजदूरों से पैसे जमा कर उन्हें दिये और कारखाने के मालिकों को बरखास्तगी की धमकी वापस लेने के लिए मजबूर किया। उसकी सदस्य संख्या बहुत बड़ी नहीं थी फिर भी शासक उससे भयभीत रहते थे क्योंकि वह मजदूरों के बीच एकजुटता की भावना पैदा करने में सफल हो गया था।

मजदूरों की एकजुटता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण 1870 में प्रशा और फ्रांस के बीच लड़ाई के दौरान देखने में आया। तुम इस लड़ाई के बारे में जर्मनी के एकीकरण के संदर्भ में पढ़ चुके हो। दोनों जर्मन और फ्रांसीसी मजदूरों ने लड़ाई की निंदा की और उसे फ्रांसीसी और प्रशा के राजवंशों द्वारा दिया जाने वाला अपराध कहा। इंटरनेशनल की फ्रांसीसी और जर्मन शाखाओं ने एक दूसरे को शुभकामनाएं तथा एकजुटता के संदेश भेजे। जर्मनी की सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी ने फ्रांसीसी मजदूरों के नाम भेजे गए एक संदेश में कहा: "...हम कभी नहीं भूलेंगे कि सभी राष्ट्रों के निरंकुश शासक हमारे शत्रु हैं"। फ्रांसीसी फौज की हार के बाद जर्मन सरकार ने फ्रांस से अल्सेस-लोरेन (Alsace-Lorraine) हथियाने की इच्छा जाहिर की। जर्मन मजदूरों ने इसका विरोध किया और जर्मनी के विभिन्न शहरों में कई प्रदर्शन हुए। जर्मन मजदूरों के सभी नेताओं को देशद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया।

1871 का पेरिस कम्यून

फ्रांस और प्रशा के बीच लड़ाई का एक और **महत्त्वपूर्ण** परिणाम यह हुआ कि पेरिस के मजदूरों ने विद्रोह कर सत्ता पर कब्जा कर लिया। समाजवाद के इतिहास में यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना थी। लड़ाई आरंभ होने के कुछ सप्ताहों में ही फ्रांसीसी फौज की हार हो गयी और फ्रांस के सम्राट लुई बोनापार्ट को कैद कर लिया गया। एन नयी सरकार सत्तारूढ़ हो गई और उसने फ्रांस को एक गणतंत्र घोषित कर दिया। इस सरकार पर संपत्तिवान् वर्गों का दबदबा था। उसने युद्धविराम के लिए बिस्मार्क की शर्तों को मान लिया। शर्तों में पेरिस का समर्पण अल्सेस-लोरेन का अर्पण और लड़ाई के लिए क्षतिपूर्ति के रूप में भारी धन

दिया जाना शामिल थे। पेरिस के मजदूरों ने सरकार द्वारा समर्पण को विश्वासघात माना। उन्होंने समर्पण करने से इन्कार कर दिया। सरकार 18 जनवरी 1871 को पेरिस से हट गयी और पेरिस का दमन करने के लिए उसने जर्मन से सहायता मांगी। पेरिस के मजदूरों ने एक परिषद् चुनी जिसने 28 फरवरी 1871 को 'पेरिस कम्यून' (Paris Commune) नाम ग्रहण किया। उसका चुनाव व्यापक वयस्क मताधिकार से हुआ। वह संस्था पेरिस के मजदूरों और निम्न मध्यम वर्गों का प्रतिनिधित्व करती थी। उसने घोषणा की कि उसका लक्ष्य "शोषण, स्टॉक-एक्सचेंज की सट्टेबाजी, इजारेदारियों और विशेषाधिकारों जिन्हें मजदूर वर्ग अपनी गुलामी का कारण मानता है, और पितृभूमि की विपन्नता तथा विध्वंस... की समाप्ति" है। सभी सार्वजनिक पदों के लिए व्यक्तियों को व्यापक मताधिकार द्वारा चुना गया और जनता को उन्हें उनके पदों से हटाने का भी अधिकार दिया गया।

पेरिस कम्यून एक ऐसे विद्रोह का परिणाम था जिसमें मजदूरों की प्रमुख भूमिका थी। वह इतिहास में प्रथम मजदूर क्रांति का परिणाम था। फ्रांसीसी सरकार ने, जिसने अपना मुख्यालय वर्साय (Versailles) में बनाया था पेरिस पर एक बहुत बड़ी फौज द्वारा हमला किया। इस काम में उसे जर्मनी से भी सहायता मिली। पेरिस पर हमले अप्रैल में आरम्भ हुए और 21 मई को सेना पेरिस में घुस गई। पेरिस शहर में लड़ाई 28 मई तक चली और कम्यून को अन्ततः खत्म कर दिया गया। जिस सरकार ने जर्मन आक्रमणकारियों के सामने घुटने टेक दिए थे उसी ने पेरिस के मजदूरों पर बड़ी क्रूरता के साथ हमले किए। अनुमान है कि 14,000 से 30,000 के बीच कम्यून के रक्षक पेरिस की सड़कों पर कत्ल कर दिए गए या गोली चलाने वाली फौजी टुकड़ियों द्वारा मार दिए गए। हजारों को निर्वासित कर दिया गया या जेलों में ठूँस दिया गया। फ्रांसीसी सरकार ने इसे व्यवस्था, न्याय और सभ्यता की विजय कहा। अपने सदस्यों को संबोधित करते हुए इंटरनेशनल का कम्यून संबंधी भाषण, जिसे मार्क्स ने लिखा था, इन शब्दों के साथ समाप्त हुआ: "मेहनतकश लोगों का पेरिस और उसका कम्यून एक नए समाज के गौरवपूर्ण अग्रदूत के रूप में सदा याद किया जाएगा। उसके शहीद मजदूर वर्ग के महान् हृदय में प्रतिष्ठित हैं। उसके विध्वंसकों को इतिहास सदा के लिए टिकठी में कील द्वारा ठोक चुका है जिससे उन्हें उनके पुरोहितों की सब प्रार्थनाएं भी मुक्त नहीं करा पाएंगी।"

कम्यून के विध्वंस के बाद इंटरनेशनल को नष्ट करने के लिए यूरोप के लगभग हर देश में सुनियोजित प्रयास किए गए। इंटरनेशनल ने कम्यून के लिए समर्थन जुटाया और उसके विनाश के बाद पेरिस से आने वाले शरणार्थियों की सहायता में लग गया। पेरिस में क्रांति के कुचले जाने के बावजूद, ऐसा लगा कि इंटरनेशनल यूरोप के अनेक देशों में शक्ति प्राप्त कर रहा है। परन्तु, आन्तरिक मतभेदों के कारण वह तुरन्त ही धराशायी हो गया। इंटरनेशनल ऐसा संगठन नहीं था जिसमें समान विचारों और समान आदर्शों के लोग हों। वह मजदूर आंदोलन की अनेक विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता था। लक्ष्यों और कार्यविधियों के संबंध में मतभेद होने के कारण उसमें 1872 में फूट पड़ गई और 1876 में उसे औपचारिक तौर पर विघटित कर दिया गया। परन्तु इस बीच यूरोप के अनेक देशों में समाजवादी दल पनपने लगे थे और कुछ ही वर्षों में एकजुट होकर उन्होंने एक और इंटरनेशनल बनाया।

द्वितीय इंटरनेशनल

जिस समय प्रथम इंटरनेशनल की स्थापना की गई थी उस समय सुसंगठित समाजवादी दल नहीं थे बल्कि केवल कुछ समूह थे। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें और नौवें दशकों के दौरान यूरोप के लगभग हर देश में समाजवादी दल बने। उनमें कुछ काफी मजबूत थे और उनकी सदस्य-संख्या लाखों में थी। वे राष्ट्रीय चुनावों में भाग लेते थे और संसद में उनका अच्छा-खासा प्रतिनिधित्व हो गया था। इसी प्रकार मजदूर संघों की शक्ति और सदस्यता भी बढ़ गई थी और अनेक हड़तालें हुई थीं। उदाहरण के लिए 1887 में जर्मन समाजवादी दल को साढ़े सात लाख से अधिक वोट मिले थे। वह यूरोप का सबसे बड़ा समाजवादी दल था। ब्रिटेन में मजदूर संघों की सदस्य संख्या दस लाख से ऊपर थी। वहां सोशल डेमोक्रैटिक फेडरेशन, सोशलिस्ट लीग और फेबियन सोसायटी की स्थापना की गई थी। यूरोप के हरेक देश, संयुक्त राज्य अमरीका और अमरीकी महाद्वीप के अन्य देशों में समाजवादी दल थे जिनकी शक्ति एक समान नहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक के दौरान जपान में भी समाजवादी आंदोलन जड़ें पकड़ने लगा। इस प्रकार प्रथम इंटरनेशनल के विघटन के बावजूद समाजवादी आंदोलन जन आंदोलन बन गया।

विभिन्न देशों के समाजवादी दलों को एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के तहत सूत्रबद्ध करने के लिए 1789 की फ्रांसीसी क्रांति की शतवार्षिकी के दिन 14 जुलाई 1889 को पेरिस में एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप द्वितीय इंटरनेशनल की स्थापना हुई। द्वितीय इंटरनेशनल की स्थापना के साथ समाजवाद के इतिहास में एक नया चरण आरम्भ हुआ। सम्मेलन में एक महत्वपूर्ण निर्णय यह लिया गया कि हर साल 1 मई को मजदूर वर्ग की एकजुटता के दिवस के रूप में मनाया जाए। तय हुआ कि उस दिन महान् अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन इस तरह से किया जाए कि "सभी देशों और शहरों में मजदूर तत्कालीन सत्ताधिकारियों से एक साथ मांग करें कि कार्यदिवस की सीमा आठ घंटे निर्धारित की जाए।" 1 मई 1890 को सारे यूरोप और अमरीका में लाखों मजदूरों ने हड़ताल कर दी और विशाल प्रदर्शन किए। तब से 1 मई अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस के रूप में सारे संसार में मनाया जाता है।

द्वितीय इंटरनेशनल की स्थापना के बाद के काल में समाजवादी दलों और मजदूर संघों की शक्ति लगातार बढ़ी। जर्मनी के समाजवादी दल की सदस्य-संख्या 1914 में दस लाख से ऊपर थी और उसे 40 लाख से ऊपर वोट मिले थे। समाजवादियों को फ्रांस में 14 लाख और आस्ट्रिया में 10 लाख से ऊपर मत प्राप्त हुए थे। केवल जर्मनी, ब्रिटेन और फ्रांस में मजदूर संघों की कुल सदस्य संख्या लगभग 80 लाख थी। यूरोप के लगभग हर देश में समाजवादी और मजदूर आंदोलन एक प्रमुख शक्ति बन गया था।

द्वितीय इंटरनेशनल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी सैन्यवाद और युद्ध के विरुद्ध आंदोलन तथा सभी जनगणों की बुनियादी समानता तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के उनके अधिकार पर जोर। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक से यूरोप के हर देश में सैन्यीकरण तेजी से हुआ। इस दौरान युद्ध अवश्यम्भावी प्रतीत हो रहा था और हर देश लड़ाई की तैयारी पर अधिकाधिक रकम खर्च कर रहा था। यूरोप प्रतिद्वन्द्वी गुटों में विभाजित होता जा रहा था, उपनिवेशों के लिए संघर्ष ही उनके बीच टकराव का मुख्य कारण था। सैन्यवाद के विरुद्ध संघर्ष तथा युद्ध को रोकना द्वितीय इंटरनेशनल और उसमें शामिल समाजवादी दलों के मुख्य लक्ष्य बन गए थे। उनका विश्वास था कि पूंजीवाद ही युद्ध का मूल कारण है। उन्होंने यह भी तय किया कि यद्यपि युद्धों को पूँजीवाद के विनाश के साथ ही समाप्त किया जा सकता है तथापि यह समाजवादियों का कर्तव्य है कि वे युद्ध होने न दें और अगर शुरू हो जाएं तो उन्हें जल्द से जल्द समाप्त कराएं। द्वितीय इंटरनेशनल ने यह निर्णय भी लिया था कि समाजवादियों को "युद्ध द्वारा उत्पन्न किए गए आर्थिक और राजनीतिक संकटों" का इस्तेमाल "जनता को जाग्रत करने और पूँजीवादी शासन के पतन को नजदीक लाने के लिए" करना चाहिए। समाजवादी आंदोलन ने मजदूरों की अन्तर्राष्ट्रीय एकजुटता को एक आधारभूत सिद्धांत बना दिया था। जिस समय रूस और जापान परस्पर युद्धरत् थे उस समय जापानी समाजवादी दल के नेता और रूसी समाजवादियों के नेता द्वितीय इंटरनेशनल की 1904 की कांग्रेस में संयुक्त अध्यक्ष बनाए गए। अनेक देशों के समाजवादियों ने अपने देश को युद्ध में शामिल होने से रोकने के लिए आम हड़ताल करने का निर्णय किया। उन्हें युद्ध की तैयारी में लगी अपनी ही सरकारों के हाथों यातनाएँ सहनी पड़ीं। युद्ध के खिलाफ आंदोलन करने के लिए प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के समय फ्रांसीसी समाजवादियों के महान नेता ज्याँ जौर (Jean Jowres) की हत्या कर दी गई।

द्वितीय इंटरनेशनल ने उपनिवेशवाद की भी भर्त्सना की और समाजवादी दलों को उपनिवेशों के जनगण की लूट और गुलामी का विरोध करने के लिए प्रतिबद्ध किया। द्वितीय इंटरनेशनल की 1904 की कांग्रेस में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के 'भीष्मपितामह' दादाभाई नौरोजी शामिल हुए जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता के पक्ष की हिमायत की। कांग्रेस में ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने उनका समर्थन किया। अध्यक्ष ने कांग्रेस से कहा कि "वह अस्सी वर्षीय वृद्ध भारतीय प्रतिनिधि के वक्तव्य को आदरपूर्ण ढंग से देखें, जिन्होंने अपने जनगण की स्वतंत्रता और खुशहाली के लिए संघर्ष में अपने जीवन के पचपन वर्ष न्यौछावर किए हैं।" जब दादाभाई नौरोजी मंच पर गए तब जोरदार करतलध्वनि से उनका अभिनन्दन किया गया।

अपनी अनेक उपलब्धियों और दिनोंदिन बढ़ती हुई ताकत के बावजूद द्वितीय इंटरनेशनल की अनेक कमजोरियां थीं। प्रथम इंटरनेशनल के विपरीत वह राष्ट्रीय समाजवादी दलों का एक ढीलाढाला संघ था। अनेक देशों में समाजवादी दल आम जनता की पार्टियां बन गए थे फिर भी उनमें बुनियादी मतभेद उत्पन्न हो गए थे। उनके कुछ हिस्सों का विश्वास था कि पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने के लिए क्रांति आवश्यक है जब कि अन्य हिस्से धीरे-धीरे

विश्वास करने लगे थे कि समाजवाद क्रमिक सुधारों द्वारा लाया जा सकता है, इसलिए वे कतिपय परिस्थितियों में तत्कालीन सरकारों का समर्थन करने के लिए भी तैयार थे। समाजवादी दलों के कुछ हिस्से उपनिवेशवाद के भी पक्ष में थे। युद्ध के प्रश्न पर द्वितीय इंटरनेशनल का रुख स्पष्ट था परंतु अनेक समाजवादी दलों का उससे गम्भीर मतभेद था। उनमें से कुछ सोचते थे कि अगर उन्होंने युद्ध का विरोध किया तो उन्हें कुचल दिया जाएगा। वे युद्ध छिड़ने पर उसका इस्तेमाल क्रांति को बढ़ावा देने के लिए करने को तैयार नहीं थे। युद्ध के प्रश्न पर ही द्वितीय इंटरनेशनल को संघातिक धक्का लगा। प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने पर अधिकतर समाजवादी दलों ने अपनी-अपनी सरकार का समर्थन किया। समाजवादी आंदोलन के लिए इसके गम्भीर परिणाम हुए। द्वितीय इंटरनेशनल ठप्प हो गया और हर देश में समाजवादी आंदोलन में फूट पड़ गई। प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के साथ ही समाजवादी आंदोलन के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण दौर समाप्त हो गया।

यद्यपि 19वीं शताब्दी में समाजवादी आंदोलन किसी भी देश में समाजवादी क्रांति करने में सफल नहीं हो सका, लेकिन इसके चलते पूंजीवाद द्वारा उत्पन्न समस्याओं और राजनीतिक प्रजातंत्र की कमियों के प्रति लोगों में जागरूकता आई। अनेक देशों में शक्तिशाली राजनीतिक आंदोलन के रूप में यह उभरा। संपूर्ण विश्व में आगे चलकर इसको क्रमशः महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी थी और 20वीं शताब्दी के विश्व के इतिहास में प्रजातंत्र और राष्ट्रवाद के साथ समाजवाद एक प्रबल कारक बन गया।

अभ्यास

जानने योग्य तथ्य

1. निम्नलिखित की व्याख्या करो:
   तीसरा वर्ग (एस्टेट), बूर्जुआजी, सर्वहारा, जुंकर्स, पेरिस कम्यून, उत्पादन के साधन, समाजवाद, काल्पनिक समाजवादी।
2. नीचे लिखे व्यक्तियों का परिचय दो जिसमें इस बात का उल्लेख करो कि इस अध्याय में जिन आंदोलनों और क्रांतियों की चर्चा की गई है, उनमें उनकी क्या भूमिका थी?
   जैफर्सन, वाशिंगटन, टॉमस पेन, लूई सोलहवां, वाल्टेयर, रूसो, मांटेस्क्यू, नेपोलियन, साइमन बोलिवर, मेज़िनी, गैरीबाल्डी, केवूर, बिस्मार्ग, बाब्यूफ कार्ल मार्क्स।
3. संक्षेप में उन स्थितियों को स्पष्ट करो जिनकी वजह से फ्रांसीसी और अमरीकी क्रांतियां हुईं।
4. फ्रांसीसी क्रांति की पृष्ठभूमि में कौन से मुख्य विचार कार्य कर रहे थे?
5. निम्नलिखित दस्तावेज जब तैयार किए गए तो उन्हें क्यों क्रांतिकारी माना गया था?
   स्वतंत्रता की घोषणा, मनुष्य तथा नागरिक के अधिकारों की घोषणा, कम्यूनिस्ट घोषणापत्र।
6. अमरीका के स्पेनी उपनिवेशों पर फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव की व्याख्या करो।
7. जर्मनी तथा इटली के एकीकरण की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करो।
8. प्रथम इंटरनेशनल की स्थापना कब हुई थी? समाजवादी आंदोलन के विकास में इसका मुख्य योगदान क्या था?
9. द्वितीय इन्टरनेशनल की स्थापना कब हुई? यह वर्ष और किस बड़ी घटना के लिए महत्त्वपूर्ण है? द्वितीय इंटरनेशनल के मुख्य उद्देश्य क्या थे?

करने के लिए कार्य

1. 1774 से लेकर 1871 तक की घटनाओं को समय के क्रम में दर्शाने के लिए उचित पैमाना चुनो। इस अध्याय में जिन क्रांतियों और आंदोलनों का वर्णन किया गया है, इस पैमाने पर उनको दर्शाओ। साथ में इनसे संबंद्ध विभिन्न घटनाओं को भी दर्शाओ।
2. क्रांतियों को उदाहरण के रूप में लेकर निम्नलिखित शीर्षक से एक पर्चा तैयार करो, "जब हालात बर्दाशत के काबिल नहीं रह जाते तो लोग विद्रोह करते हैं।"
3. ऊपर संख्या 5 में दिए गए "क्रांतिकारी दस्तावेजों" को पढ़ो। बुलेटिन बोर्ड के ऊपर प्रदर्शित करने के लिए उनमें से कुछ वक्तव्य चुनो तथा निम्नांकित शीर्षक के अंतर्गत उनको प्रदर्शित करो: "वे विचार जिन्होंने क्रांतियों को जन्म दिया अथवा क्रांति को जन्म देने वाले विचार"।
4. अपने अध्यापक से अन्य पुस्तकों के नाम सुझाने के लिए कहो जिनमें तुम्हें अन्य क्रांतियों के विषय में पढ़ने को सामग्री मिले, जैसे 19वीं शताब्दी में लैटिन अमेरिका की क्रांतियों के बारे में।
5. उन व्यक्तियों के जीवन के बारे में पर्चे तैयार करो जिन्होंने अपने देश के अतिरिक्त अन्य देशों के क्रांतिकारी आंदोलन में हिस्सा लिया।
6. समाजवादी आंदोलन से संबंधित कुछ दस्तावेजों का अध्ययन करो और बुलेटिन बोर्ड पर प्रदर्शित करने के लिए उनमें से कुछ वक्तव्य छांटो। "समाजवाद के विचार" शीर्षक से उन्हें प्रदर्शित करो।

सोचने और विचार-विमर्श के लिए

1. सामाजिक-राजनीतिक क्रांति क्या होती है? क्रांतियां क्यों अक्सर रक्तरंजित होती हैं? किसी क्रांति को कब सफल कहा जाता है?
2. किस क्रांति से उस देश में सबसे बड़ा परिवर्तन हुआ जिस देश में वह क्रांति हुई? अपने उत्तर के प्रमाण में कारण दो।
3. इस अध्याय में जिन आंदोलनों और क्रांतियों का वर्णन किया गया है क्या तुम सोचते हो कि उनमें से हर एक मानव प्रगति में एक बढ़ता हुआ कदम था? क्यों था या क्यों नहीं?
4. अमरीकी क्रांति में फ्रांस ने क्रांतिकारी शक्तियों की क्यों मदद की?
5. जर्मनी और इटली में राष्ट्रीय एकता के बाद भी गणतंत्र की स्थापना क्यों नहीं हो पाई?
6. एकदम आरंभ से ही समाजवादी आंदोलनों के उद्देश्य का स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय क्यों था? स्पष्ट करो।
7. समाजवादी आंदोलन के इतिहास में कार्लमार्क्स की भूमिका का विवेचन करो।

जवाहरलाल नेहरू जन्मशती
JAWAHARLAL NEHRU CENTENARY
1889 1989

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING